इन्दिरा गांधी के दो चेहरे

उमा वासुदेव

हिन्दी रूपान्तर
मधुसूदन



राधाकृष्ण

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.,
5, Ansari Road, New Delhi-110002
in the English language under the title
TWO FACES OF INDIRA GANDHI

प्रथम हिन्दी संस्करण : सितम्बर, १९७७
द्वितीय आवृत्ति : सितम्बर, १९७७

मूल्य
पेपरबैक संस्करण : १८ रुपये
सजिल्द संस्करण : २४ रुपये

आवरण-सज्जा : सुकुमार शंकर

प्रकाशक
राधाकृष्ण
२ अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

मुद्रक
हरजीत आर्ट प्रेस
दिल्ली-११०००६

भूमिका

"हर आदमी सच बात कह रहा है, लेकिन गलत वक्त पर !" एक कांग्रेसी नेता ने यह बात अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी की उस मीटिंग में कही जो चुनाव में करारी हार के बाद शव-परीक्षा के लिए बुलायी गयी थी। यही सारी सच्चाई का कुल निचोड़ है।

इस सच्चाई पर मैं धक् से रह गयी थी। जो लोग शुरू से ही इन्दिरा गांधी के विरोधी थे उनके लिए बदतर-से-बदतर बात पर भी विश्वास कर लेना आसान था। जिन लोगों को उन पर भरोसा था उनके लिए इस सच्चाई का सामना करना कठिन था।

मैंने इन्दिरा गांधी पर जो पहली किताब लिखी थी उसमे १९७२ तक की घटनाओं पर चर्चा की गयी थी। इस किताब में उसके बाद के दौर की घटनाओं पर चर्चा की गयी है, जिस दौर मे वे प्रवृत्तियां शुरू हुईं जिनकी वजह से इमर्जेंसी लागू की गयी। इन दोनों किताबों के बीच, ठीक उसी तरह जैसे इन्दिरा गांधी के एक चेहरे और दूसरे चेहरे के बीच, कहीं एक टूटी हुई कड़ी है।

इन्दिरा गांधी कोई मामूली औरत नहीं है; और न ही वह पद मामूली था जिसे वह इतने दिन तक सँभाले रहीं। इस किताब को लिखने के दौरान जो समस्याएँ उभरकर सामने आयीं उनमे से हर एक अलग से छानबीन करने लायक है। मैंने उन सबको इन्दिरा गांधी की उस एक धुन के साथ जोड़ देने की कोशिश की है, जो उन सबको एक लड़ी मे पिरोये रख सकता है। राजनीति ? प्यार ? विचारधारा ? डर ? अहंकार ? माँ की ममता ? महत्वाकांक्षा ? इनमें से वह धुन कौन-सी है, यह इस पर निर्भर है कि पाठक उसे कहाँ पर खोजता है। मेरे लिए यह अनुभव एक ऐसे रहस्य की गुत्थियां सुलझाने के समान रहा है जिसने उनके निकटतम सहयोगियों और उनके कट्टर-से-कट्टर शत्रुओं दोनों ही को उलझाये रखा है।

मैंने उस सजीव परंतु ऐतिहासिक सामग्री को इस पुस्तक का आधार बनाया है जो मुझे कांग्रेस के सबसे बड़े नेताओं और उसके कार्यकर्त्ताओं से मिली है। इन्दिरा गांधी के बारे में जो कुछ भी सच बात है उसका पता शायद इन्हीं लोगों को है।

मैं इन सब लोगों की आभारी हूँ कि उन्होंने मुझसे विस्तार से और साथ ही अपनी निजी जानकारी के आधार पर बातचीत की, जिससे मुझे इस बात का

कुछ सुराग़ मिल सका कि श्रीमती गांधी को आखिर हुआ क्या। जैसाकि उनके पुराने साथी और राजनीति के क्षेत्र के पुराने अनुभवी नेता कमलापति त्रिपाठी ने कहा, "यह एक ऐसे व्यक्ति की मिसाल है जो अभी कल तक आसमान में उड़ रहा था और आज धूल में मिल चुका है...जिसकी कल तक दुनिया के देशों की राजधानियों मे भूरि-भूरि प्रशंसा होती थी, लेकिन आज वही लोग उसे गालियां देते फिर रहे हैं जो पहले कुछ भी नही थे और उसने उन्हें बहुत-कुछ बना दिया।" इन बातों की वजह से यह कहानी मानव-भावनाओ से भी ओत-प्रोत है और राजनीतिक भी है।

जून १९७६ मे विपक्ष की जो बड़ी-बड़ी हस्तियां जेल में बंद थी उनमे जयप्रकाश नारायण का नाम भी अगर शामिल रहने दिया गया है तो इसे केवल अवचेतन मन की भूल ही कहा जा सकता है। जयप्रकाश नारायण नवम्बर १९७५ मे पैरोल पर छोड दिये गये थे, और बाकी लोग थोड़े-थोड़े अरसे के बाद छोड दिये गये। शायद इस पूरे क्रम के दौरान अवचेतन मन अपना काम करता रहा क्योंकि विपक्ष की हस्तियों का उल्लेख करते समय यह नामुमकिन था कि उनमें उनका नाम शामिल न किया जाये।

मैं अपने माता-पिता और अपनी बहन की आभारी हूँ कि उन्हें मुझ पर इतना भरोसा रहा; मैं एल० के० की आभारी हूँ कि उन्होने तथ्य और सामग्री जुटाने मे बडी तत्परता से मेरी सहायता की; मैं नन्ही कमिया की आभारी हूँ कि उसने बड़े धैर्य का परिचय दिया—और सबसे बढ़कर राका की, जो अब नहीं रही, लेकिन जिसने मुझे यह दृढ़ संकल्प प्रदान किया।

सुदर्शन सेठ और नीलिमा गोपल ने घंटों समय खर्च करके उन विस्तृत टिप्पणियों के लिए सारा ब्यौरा जुटाया, जो इस पूरी पुस्तक मे एक समानांतर इतिहास की तरह चलती रहती हैं।

हरिराम जिंदल ने बड़ी लगन और आत्म-त्याग की भावना के साथ मूल अंग्रेज़ी पाडुलिपि को टाइप करने का काम किया, जिसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

और इसी तरह के न जाने कितने ही और लोग हैं।

—उमा वासुदेव

नई दिल्ली
अगस्त १९७७

क्रम

१. राजनीति के मोहरे ९
२. वामपंथियों से डर ५०
३. संजय के कारिंदे १०६
४. चाँद का अँधेरा चेहरा १५९
परिशिष्ट :
संजय गांधी की इंटरव्यू २०२

राका को
जिसको सदा-सदा याद रखूँगी

लगा हुआ था। अगर कोई बहस होती भी थी या कोई विरोध प्रकट करता भी था तो दबी जबान से, और अफवाहों की वजह से चारों ओर डर बढ़ता जा रहा था। राजनीतिज्ञ और बुद्धिजीवी घुटी-घुटी-सी तनातनी के वातावरण में किसी तरह जीवन व्यतीत कर रहे थे, प्रत्यक्ष जानकारी का क्षेत्र दिन-ब-दिन छोटा होता जा रहा था, और ऐसा लगता था कि सच्चाई में सतरंगे इंद्रधनुष से भी ज्यादा रंग है।

स्पष्ट है, द्वारकाप्रसाद मिश्र ने सोचा कि 'इन्दिराजी' घटनाओं को जरूरत से ज्यादा ढकेलने की कोशिश कर रही है।

लेकिन उस समय तक वह उनसे इतना दूर हो चुके थे कि अपनी विरोध की भावना या आशंकाएँ भी उन तक नहीं पहुँचा सकते थे। प्रधान मंत्री के साथ उनका मेल-जोल १९७२ में बिलकुल टूट चुका था जब उन्होंने देखा कि उन्हें बड़ी चालाकी के साथ विश्वास के क्षेत्रों से बाहर हटाने की कोशिश की जा रही है। यह एक बहुत जानी-पहचानी चाल थी, जिसमें इन्दिरा गांधी जो कुछ भी करवाना चाहती थीं वह अपने गुर्गों से करा लेती थीं। तब तक उनके विश्वासपात्रों की मंडली में से कभी भी इतने लोग अलग नहीं हुए थे। द्वारकाप्रसाद मिश्र के साथ जो कुछ हुआ वह आगे चलकर एक ढर्रा बन गया। ऐसा जिन कारणों से हुआ उनसे बाद में चलकर उनके अपने व्यक्तित्व के, और पूरी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के कायापलट के कारणों का कुछ सुराग मिलता है।

द्वारकाप्रसाद मिश्र १९६५ से १९६७ तक मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री थे। बाद में जब वह दिल्ली में रहते थे, उस समय १९६७ और १९७२ के बीच उनकी यह ख्याति हो गयी थी कि वह उन इने-गिने लोगों में से हैं जो प्रधान मंत्री के बहुत करीब है। प्रधान मंत्री की नजरों में यही बात उनका एक अवगुण बन गयी। उनका दूसरा अवगुण यह था कि राजधानी में यह भावना बढ़ती जा रही थी कि मिश्रजी के हौसले इतने बढ़ गये हैं कि वह केन्द्रीय कैबिनेट में गृह-मंत्री बनने के सपने देखने लगे हैं। उनको अपनी हैसियत पर ले आने के लिए यह वजह काफी थी। तीसरा अवगुण उनका यह था कि ऐसे समय पर जब श्रीमती गांधी बहुत जोश के साथ वामपंथी दौर से होकर गुजर रही थीं, द्वारकाप्रसाद मिश्र कम्युनिस्टों के साथ खुली टक्कर के लिए तैयार थे। इस मामले में जिसे भी श्रीमती गांधी से मतभेद होता उस पर वह शक करने लगतीं।

जिस समय केन्द्रीय चुनाव समिति १९७२ के विधान सभाओं के चुनावों के लिए उम्मीदवार चुन रही थी, उस समय द्वारकाप्रसाद मिश्र ने यह बात बिलकुल साफ कह दी थी कि वह इस बात के खिलाफ हैं कि कांग्रेस रायपुर से कम्युनिस्ट उम्मीदवार सुधीर मुखर्जी का समर्थन करे। उन्होंने यहाँ तक सुझाव दिया कि यह नियम बना दिया जाये कि जिन क्षेत्रों में बुनियादी महत्व के कारखाने हों वहाँ किसी कम्युनिस्ट उम्मीदवार को बढ़ावा न दिया जाये। मिसाल के लिए, रायपुर एक ऐसा जिला था जो दुर्ग से मिला हुआ था जहाँ भिलाई का इस्पात का कारखाना काम कर रहा था। द्वारकाप्रसाद मिश्र का दावा है, "उसी वक्त से इन लोगों को यह अन्दाजा हो गया कि मैं उनके खिलाफ हूँ। अपने पुराने साथियों से सलाह लेने के बजाय उन्होंने कुमारमंगलम' की बात सुनना शुरू कर दिया था। लेकिन वामपंथी ढंग से सोचने वालों को खोजने के लिए पार्टी से बाहर जाने की जरूरत ही क्या थी? हमारे पास सभी तरह के लोग थे—[illegible] शाहजादा' थे, और फिर अब चन्द्रशेखर' जैसे नौजवान ओजस्वी लोग थे।" द्वारकाप्रसाद मिश्र की राय थी कि उस समय कम्युनिस्टों का जो यह प्रचार फैल रहा था कि श्रीमती गांधी यदि

करती है जो वे उनसे कहते हैं, उससे उनकी साख गिरती जा रही थी।

लेकिन इसके अलावा एक चौथी बात भी थी। १९७२ तक द्वारकाप्रसाद मिश्र को हरियाणा के मुख्य मंत्री बंसीलाल[1] की करतूतों के बारे में कुछ शक होने लगा था। उन्होंने इन्दिरा गांधी को इस डर की चेतावनी भी दी थी कि इस अक्खड़ जाट ने अपने जासूसों का जाल खुद प्रधान मंत्री की कोठी के अन्दर भी फैलाना शुरू कर दिया है। मिश्रजी ने बताया, "राजनीति में हिस्सा लेने वाले किसी भी आदमी के लिए सच्चाई और हकीकतों की तरफ़ से आंख मूंद लेना नामुमकिन है। श्रीमती गांधी का और मेरा एक समझौता था। मैंने उनसे कह दिया था, 'मैं [illegible]

इन्दिरा गांधी के जीवन में और उनकी राजनीति में तीखा मोड़ न तो इलाहाबाद हाईकोर्ट का वह १२ जून १९७५ वाला फ़ैसला था जिसने उनके चुनाव को खतरे में डाल दिया[1], न वह २६ जून १९७५ वाली इमरजेंसी थी जिसकी वजह से लोगों को उनके लोकतान्त्रिक होने के बारे में भी शक होने लगा, और न ही इसके साथ ही संजय गांधी के राजनीतिक जीवन की शुरुआत थी जो एक तरह से प्रधान मंत्री का ही प्रतिरूप बन गया था। असली मोड़ आया १९७१ में, उस साल जब उनका अपना राजनीतिक जीवन शुरू हुआ था, जब वह नेहरू की छत्रछाया से बाहर निकल आयी थी, जब वह यह महसूस करने लगी कि जिन लोगों ने उनके बाप के नीचे काम किया था—जैसे द्वारकाप्रसाद मिश्र—उनसे वह स्वयं अपने बल पर, अपनी जरूरत को देखते हुए, और अपने ढंग से निबट सकती हैं। डी० पी० मिश्र ने कहा, "१९६९ में जब कांग्रेस दो टुकड़ों में बँट गयी उस वक़्त तक मैं उनकी हर बात का साथ देने को तैयार था। उससे पहले तो उनकी न कांग्रेस के संगठन में चलती थी और न लोकसभा में।" लेकिन इस समर्थन को और भी आगे तक ले जाया जा सकता है—१९७० में जब उन्होंने अपनी पार्टी को मजबूत किया, जब बांगला देश के सवाल पर उन्होंने पूरा हिसाब लगाकर योजना के अनुसार शानदार विजय प्राप्त की, और जब १९७१ के संसद के चुनाव में और १९७२ के विधान सभाओं के चुनावों में उन्होंने कल्पनातीत बहुमत प्राप्त किया।

लेकिन इस सफलता पर उनकी प्रतिक्रिया दो तरह की हो सकती थी। उनमें इतना आत्मविश्वास पैदा हो सकता था कि वह उदार हो जातीं, उनका दिल खुल जाता। इसके बजाय उनमें ईर्ष्या और भय पैदा हो गया।

बाद में एक बहस के दौरान मैंने कहा था, "मैं समझता हूं कि अगर उस वक़्त वह दूसरी तरफ मुड़ गयी होतीं तो वह नेहरू जैसी बन सकती थीं।"

इन्दिरा के मंत्रिमंडल में भूतपूर्व इस्पात-मंत्री चन्द्रजीत यादव[2] ने कहा, "नेहरू से भी बड़ी, लेकिन उनमें वह नेहरू का सिद्धांत पर दृढ़ रहने का और मानवीयता का रवैया कभी था ही नहीं।"

नेहरू में आत्मविश्वास की भावना पैदाइशी थी। इन्दिरा पर शुरू से ही असुरक्षा की भावना हावी थी। इसके अलावा कोई कारण समझ में नहीं आता कि अंतर्राष्ट्रीय मोर्चे पर बांगला देश जैसी ठोस राजनीतिक सफलता और स्वयं अपने देश में इतना खुला समर्थन मिलने के बाद के वर्षों में वह विचारधारा के सवाल पर भटकती क्यों रहीं। इन दोनों ही सफलताओं में भय का अंकुर छिपा

हुआ था। अचानक उनका बहुत-कुछ दाँव पर लग गया था, और उन्हें हर कीमत पर उसकी रक्षा करनी थी। १९६६ से १९७२ तक उनके पास खोने के लिए कुछ था ही नहीं, क्योंकि वह एक ध्येय के लिए लड रही थी। १९७२ से १९७७ तक उनके पास सब-कुछ खोने-ही-खोने को था क्योंकि वह अपने शासन-तंत्र की रक्षा कर रही थी।

इन्दिरा गाधी का काम करने का ढंग नही बदला था। बस अब जिन चीजों पर जोर दिया जाता था वे बदल गयी थी।

चन्द्रशेखर ने, जो उस समय प्रधान मंत्री में वामपंथी झुकाव पैदा करने की कोशिश में एक उभरते हुए युवा तुर्क थे और आज जनता पार्टी के अध्यक्ष हैं, परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा है, "श्रीमती गाधी केंद्रीय सत्ता की योजना तो बना रही थी पर उन्होंने डिक्टेटरशिप की दिशा मे कोई कदम नही उठाये थे। उनको एक अजीब-सा डर लगा रहता था कि चारों ओर से खतरों ने उन्हें घेर रखा है। इसके प्रथम संकेत बहुत पहले ही मिल चुके थे जब वह अशोक मेहता[1] से दूर हटने लगी थी। १९६७ के कुछ ही समय बाद से वह हर उस आदमी पर शक करने लगी थी जिसकी सार्वजनिक जीवन में कोई भी हैसियत होती थी। जब मंत्रिमंडल बनाया गया तो शुरू-शुरू मे अशोक मेहता इसमे शामिल होने को तैयार नही थे क्योंकि वह खुद अपने साथियो से भी सलाह-मशविरा नही करती थीं, उनके अपने मंत्रालयों के बारे मे भी नही। वह हमेशा एक ही वक्त मे तीन-चार विचारो को अपने मन मे मथती रहती हैं। फिर जब वह यह समझ लेती हैं कि उनमे से किस पर सबसे आसानी से अमल किया जा सकता है तो उसी को अपना लेती है। अगर उन्हें कोई ऐसा फैसला करना भी पडता है जो उन्हें पसंद न हो, तो वह भी वह नैतिकता के आधार पर नही करती है। १९६९ मे राष्ट्रपति के चुनाव मे मैं शुरू से ही श्री गिरि[2] का समर्थन करने के पक्ष मे था, लेकिन इन्दिरा जी ने अपने मन्तव्य को छिपाये रखना पसंद किया।"

दिनेशसिंह[3] ने भी, जो पहले इन्दिरा गाधी की कैबिनेट मे विदेश-मंत्री थे और जो अब जनता पार्टी के सदस्य हैं, कहा है, "यह सारा सिलसिला कांग्रेस के बँटवारे के वक्त[4] से शुरू हुआ। मेरी राय यह थी कि उन्हें संजीव रेड्डी[5] को स्वीकार नही करना चाहिए था। संजीव रेड्डी को अगर वह राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार स्वीकार न भी करती तब भी हम लोग यही फैसला कर सकते थे। मैं कांग्रेस के दो टुकड़े कर देने के खिलाफ था। फिर, मोरारजी[6] को निकाल बाहर करने में क्या तुक थी? वह उनके नीचे दूसरे नंबर के पद पर काम करने के लिए राजी हो गये थे। मोरारजी की तमन्ना कुछ भी रही हो पर वह अनुशासन को इतना मानते थे कि उनके साथ काम कर सकते थे। उस समय मैं अमरीका में था। जब मैं लौटकर आया तो मैंने उनको बताया कि मैं उनके इस फैसले को सही नही समझता। कांग्रेस (संगठन) को दक्षिणपंथी दल ठहरा दिया गया, लेकिन मोरारजी ने कब किसी भी कानून के बनाने में बाधा डाली थी? असली वजह यह थी कि वह अपना सिक्का जमाना चाहती थी।"

"फिर आप उनका साथ क्यों देते रहे?" मैंने दिनेशसिंह से पूछा।

"इन्दिराजी राजनीति मे नयी-नयी आयी थी, नयी पीढ़ी ने बड़े उत्साह से साथ उनका स्वागत किया था। आदमी कभी कोई गलत फैसला भी कर सकता है—बहरहाल उन्हें यह रास्ता चुनने का अधिकार था—लेकिन जब उन्होंने आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया, देश में परिवर्तन लाने की पैरवी की

और समाजवाद की ओर आगे बढने की बात की, तो उनका समर्थन करना ही पडा।"

आखिरकार दिनेशसिंह का भी पत्ता काट दिया गया, बहुत-कुछ उन्ही कारणों से। १९६९-७० मे, जब उनके पीछे कोई ऐसा खास राजनीतिक समर्थन भी नहीं था, श्रीमती गांधी ने उन्हे विदेश-मंत्री के ऊँचे पद पर बिठा दिया था। लेकिन बाद में जब वह दूसरे राजपूत विधायकों की मदद से उत्तर प्रदेश मे अपनी बुनियाद मजबूत करने की कोशिश करने लगे तो वह उन पर भी शक करने लगी। उन दिनों दिनेशसिंह भी श्रीमती गांधी की 'घरेलू कैबिनेट के' एक सदस्य थे, उस दरबार के जिसने बाद मे चलकर चाडाल चौकड़ी का रूप धारण कर लिया। उस समय भी श्रीमती गांधी की तरफ से एक अकेला आदमी सत्ता के केंद्र के रूप में काम करता था, और वह थे उनके प्राइवेट सेक्रेटरी यशपाल कपूर," जिनमें मुत्सदी, धांधली और वफादारी के गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। मंत्रियों से लेकर कांग्रेस सगठन के सबसे निचले स्तरों तक सभी पर वह असर डाल सकते थे। उन्ही से दिनेशसिंह की टक्कर हो गयी। यशपाल कपूर का कहना है कि बहुत पहले १९६३ में ही श्रीमती गांधी के सबसे निकट के समर्थकों के बीच गलतफहमियाँ पैदा करने की कोशिशें की गयी थी। मिसाल के लिए, एक दिन दिनेशसिंह ने कपूर को टेलीफोन किया :

"कपूर, तुम और मैं ऐसी स्थिति में है कि हमें बहुत सावधान रहना चाहिए कि हम कहाँ जाते हैं, किससे मिलते हैं," कालाकांकर के भूतपूर्व राजा साहब ने चेतावनी दी।

"आपका मतलब ?"

"सुना है कि एक दिन तुम अशोका होटल में नशे में धुत्त पाये गये थे।"

कपूर का कहना है कि तब तक वह कभी अशोका होटल गये ही नहीं थे। १९६७ के चुनाव के बाद जब इन्दिरा गांधी फिर प्रधान मंत्री बनी तो दिनेशसिंह और इंदर कुमार गुजराल," जो उस समय संचार और संसदीय मामलात के राज्य-मंत्री थे, मिलकर यशपाल कपूर को नीचा दिखाने की कोशिशें करने लगे। "उसके बाद से उन्होंने मुझे काटने की कोशिश की। अगर प्रधान मंत्री सुझाव देती कि किसी से बातचीत करने के लिए मुझे भेज दिया जाये, जैसा कि मैं पहले भी करता था, तो ये दोनों कहते,'नहीं, नहीं, वह तो महज प्राइवेट सेक्रेटरी है, किसी और को क्यों न भेज दीजिये ?'" तीनो इसी तरह उखड़े-उखड़े सहयोग के साथ काम करते रहे जब तक कि एक दिन यशपाल कपूर को जवाबी वार करने का मौका मिल गया। कहा जाता है कि दिनेशसिंह के बढते हुए हौसलों के बारे मे कोई सबूत उनके हाथ लग गया था। एक दिन प्रधान मंत्री के किसी काम से यशपाल कपूर दिनेशसिंह को खोजने के लिए दिन भर दौड़-धूप करते रहे। आखिरकार बहुत रात गये टेलीफोन पर उनसे मुलाकात हुई।

"महाराज," कपूर ने कहा, "आप कहाँ गायब रहते है ? आज दिन-भर आपका कहीं पता-ठिकाना ही नही था। हम यहाँ से कितनी ही बार आपको टेलीफ़ोन कर चुके है।"

"अरे, जिसकी बुनियाद मजबूत न हो उसे भला कौन टेलीफोन करता है," दिनेशसिंह ने जलकर जवाब दिया और फिर कहा, "मुझे तो अब उत्तर प्रदेश में अपने लिए कुछ ठिकाना बनाना पडेगा।"

मशहूर यह था कि दिनेशसिंह श्रीमती गांधी के उस तरह निकट नही थे

जिस तरह द्वारकाप्रसाद मिश्र थे, लेकिन सत्ता का जो लोभ उनमें पैदा हो गया था उसकी वजह से उन्हें भी शुबहे की नजर से देखा जाने लगा था। ऐसा लगता है कि यशपाल कपूर ने इस मौके का फायदा उठाकर श्रीमती गांधी को दिनेशसिंह के खिलाफ चेतावनी दी कि वह सबसे अधिक आबादी वाले बुनियादी महत्त्व के उत्तर प्रदेश को हथिया लेना चाहते हैं। उस समय तक सभी प्रधान मंत्री वहीं से आये थे। शायद उनका एक औरत होने का आभास कम-से-कम एक मामले में उनके सोचने के ढंग को बहुत प्रभावित करता था, हालांकि वह बार-बार यह दावा कर चुकी थीं कि उन्हें हमेशा 'एक व्यक्ति की हैसियत से' देखा जाये औरत की हैसियत से नहीं, उनके जीवन में जो राजनीतिक पुरुष आये उनको उन्होंने बिना किसी झिझक के अपने रास्ते से हटा दिया।

दिनेशसिंह और द्वारकाप्रसाद मिश्र में एक तीसरी समानता यह थी कि मोरारजी देसाई को मंत्रिमंडल में बनाये रखने की पैरवी करके उन्होंने इस बात का मौका दिया कि उन्हें फौरन वामपंथ-विरोधी ठहरा दिया जाये। उस समय तक उनको इस बात का तो कोई मौका नहीं मिला था कि वह श्रीमती गांधी को संजय की भूमिका के बारे में कोई चेतावनी देकर नाराज करते। लेकिन १६७० में उन्हें औद्योगिक विकास तथा आतंरिक व्यापार के कम महत्त्वपूर्ण मंत्रालय का भार सौंपकर उनकी हैसियत घटा दी गयी, और १६७१ में उन्हें मंत्रिमंडल से बिलकुल ही हटा दिया गया। सच तो यह है कि दिनेशसिंह की तरफ उनका रवया इतनी रुखाई का था और दोनों के बीच तनातनी इतनी बढ़ चुकी थी कि उन्हें संसदीय पार्टी से निकाल दिया गया और एक ऐसे सवाल पर, जिसके लिए उन्हें लगभग माफी मांगनी पड़ी, उन्हें कांग्रेस से भी निकाल दिया जानेवाला था।

इंदर कुमार गुजराल को भी इन्दिरा गांधी ने इसीलिए चुना था कि राजनीति में उनका कोई आधार नहीं था। वह नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी के वाइस-प्रेसीडेंट थे। जब वह लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में सूचना तथा प्रसारण मंत्री थीं उस समय और फिर बाद में जब मोरारजी देसाई से सत्ता के लिए उनकी नाटकीय टक्कर हुई थी उस समय, उन्होंने उनके प्रति निजी वफादारी का सबूत दिया था। गुजराल उदार विचारों के लेकिन धीमी गति के कल्पनाशील व्यक्ति हैं और वह मूलभूत धारणाओं के आधार पर सोचते हैं। प्रचार का माध्यम उनका खास मैदान है। १६६५-६६ में वह और सेमिनार के संपादक रमेश थापर एक व्यापक नीति के रूप में प्रचार के माध्यमों की चेतना जागृत करने की योजनाएं तैयार किया करते थे और अपने विचार इन्दिरा गांधी के मन में बिठाने की कोशिश करते थे। यही समय था जब सूचना और प्रसारण-मंत्री की हैसियत से श्रीमती गांधी ने देश में टेलीविजन लगाने की सौ करोड़ रुपये की योजना बनायी थी। उन्हें पैसे की मंजूरी के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था क्योंकि शास्त्रीजी नहीं चाहते थे कि उनकी हैसियत बहुत बढ़ जाये। फिर भी इन्दिराजी ने ऑल-इंडिया रेडियो को एक स्वतंत्र कारपोरेशन बना देने की संभावना पर विचार करने के लिए चंदा कमेटी नियुक्त की; यह कदम बार-बार किये गये उनके इस दावे का ही एक हिस्सा था कि वह अभिव्यक्ति में विविधता चाहती हैं। इंदर कुमार गुजराल पुरानी बातों को याद करते हुए कहते हैं, "जैसे ही वह प्रधान मंत्री बनीं उन्होंने यह बात बिलकुल साफ कर दी कि ऑल इंडिया रेडियो को एक सरकारी माध्यम की तरह काम करना होगा।"

उस समय तक श्रीमती गांधी ने खुद गुजराल को सूचना और प्रसारण-मंत्री

बना दिया था। उन्होंने १९६९ में राष्ट्रपति के कांटे के चुनाव में रेडियो को प्रचार का इतना सशक्त साधन बना दिया कि गिरि के—और इसलिए श्रीमती गांधी के पक्ष मे फ़ैसले का दारोमदार लगभग पूरी तरह रेडियो पर ही था। बिलकुल पश्चिमी देशों के तरीके अपनाकर बड़ी बेरहमी और मुस्तैदी के साथ लोगो की आत्मा को इच्छानुसार ढालकर धाक जमाने की कोशिश की गयी थी। जैसाकि एक राजनीतिज्ञ ने कहा, "ऐसा लगता था जैसे पूरे समाज को मंत्रमुग्ध कर दिया गया हो।" जिन लोगो ने नारा लगाने में साथ नही दिया वे या तो पीछे रह गये या उन्हे चुपचाप हटा दिया गया। कई वर्ष बाद १९७५ में विद्याचरण शुक्ल" को यह सम्मान मिलने से पहले ही गुजराल को भारत का गोबेल्स कहा जाने लगा था और ऑल-इंडिया रेडियो को कांग्रेस के अंदर तथा बाहर के विरोधी लोग ऑलइंदिरा रेडियो कहने लगे थे।

लेकिन भारत की आम जनता के विशाल बहुमत के लिए इंदिरा गांधी लोकतांत्रिक वामपंथ का साकार रूप बनकर उभरीं।

गुजराल के एक पुराने साथी का (जो अब मोर्चे के दूसरी तरफ है) कहना है, 'इस दौर का कोई भी इतिहास लिखा जाये तो उसमे गुजराल के बारे मे यह कहा जा सकता है कि वह एक आदमी था जिसने इन्दिरा गांधी को बना दिया। लेकिन गुजराल को भी गिरा दिया गया।'"

इन्दिरा गांधी को गुजराल से डरने का कोई कारण नही था। लेकिन उनके बारे मे इस तरह की शिकायतें थी कि टेलीविजन के परदे पर वह खुद बहुत ज्यादा आते रहते हैं, और वह अपनी छाप लोगों के मन पर बिठाना चाहते है। इसके अलावा उन्होंने दिनेशसिंह के साथ अपना मेल-जोल बनाये रखा था, जो १९७१ तक न केवल मन्त्रिमंडल से बाहर हो चुके थे, बल्कि प्रधान मंत्री की नजरों से भी उतर चुके थे। आखिरी बात यह थी कि १९६९ के बाद से राजनीतिक दृष्टि से इस संचार माध्यम के उपयोग के बारे मे गुजराल का जोश ठंडा पड़ता गया था और जो कुछ वह चाहती थीं उसे वह वफादारी के साथ पूरा नही करते थे। शायद इसकी वजह यह थी कि १९६९ में प्रचार के माध्यमो के सहारे इन्दिरा गांधी को उनकी लड़ाई जिता देने के बाद वह इसे कम कर देना चाहते थे और ग़ैर-राजनीतिक सृजनात्मक प्रयासो को स्वाभाविक रूप से पनपने के लिए बढ़ावा देना चाहते थे। नतीजा यह हुआ कि वह रेडियो मे हटाकर आवास के राज्य-मंत्री बना दिये गये।

उनके लिए यह मंत्रालय चुनने के पीछे भी एक कहानी थी, जिससे पता चलता है कि इन्दिरा गांधी कुछ भी भूलती नहीं। १९६७ में जब वह पहले-पहल गुजराल को मन्त्रिमंडल में लाना चाहती थीं तब उन्होंने उनसे पूछा था कि वह किस मंत्रालय का भार सँभालना चाहेंगे। गुजराल ने जवाब दिया था, "आवास छोड़कर कोई भी मंत्रालय।" गुजराल ऐसे किसी भी पद से अपना संबंध नहीं रखना चाहते थे जिसमे उन पर अपने प्रसिद्ध कलाकार भाई सतीश गुजराल के साथ पक्षपात करने का आरोप लगाया जा सके, क्योंकि अगर उन्हे सरकारी इमारतों की सजावट के लिए भित्ति-चित्र बनाने का काम दिया जाता उसमें उनके मंत्रालय का हाथ जरूर होता। श्रीमती गांधी ने इसकी वजह तो नही पूछी थी, लेकिन जाहिर है कि उन्होंने यह नतीजा निकाल लिया था कि गुजराल को आवास मंत्रालय पसंद नही है। जब उन्हे दंड देने का समय आया तो उन्होंने उनके लिए वही मंत्रालय चुना। इसलिए उन्हें १९७१ मे निर्माण तथा आवास-

मंत्री का पद संभालना पड़ा। लेकिन एक ही साल मे २४ जुलाई १९७२ को गुजराल की नैया फिर भँवर में फँस गयी।

छः फुट से भी लंबा, सुडौल, सौम्य योगी गेहुँए रंग का अपना नंगा सीना ताने और दूध जैसी सफेद धोती पहने एक दिन गुजराल के दफ्तर आया।

"मैंने अपने योगाश्रम के लिए कुछ और जमीन के लिए प्रार्थना की थी। वह फाइल आपके दफ्तर मे पड़ी है," स्वामी ने सहज भाव मे कहा।

"जी हां, है तो, लेकिन मुझे अफसोस है कि इस मामले में हम कुछ कर नही सकते," गुजराल ने जवाब दिया।

"मुझे जमीन दिलवा दीजिये वरना मैं भी देख लूंगा कि आप कल के बाद इस मंत्रालय मे कैसे रहते है!" स्वामी ने चेतावनी देते हुए कहा।

"बहुत मुश्किल है," गुजराल ने कहा, "कानून ही ऐसे है।"

अगले दिन गुजराल को अपना मंत्रालय छोड़कर फिर सूचना और प्रसारण मंत्रालय मे वापस चले जाने का हुक्म मिल गया। इसके बाद उनके और श्रीमती गांधी के संबंध फिर कभी पहले जैसे नही हो सके।

श्रीमती गांधी के काम करने के ढंग की विशेषता यह थी कि वह राजनीति मे ऐसे लोगों का सहारा लेती थी जो परंपरागत ढंग के न हो। अगर उनका अपना कोई आधार न हो और इसलिए वे राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह उन पर आश्रित रहे तो और भी अच्छा था। इसके अलावा वह अपना सारा राजनीतिक काम-काज बिलकुल निजी स्तर पर करती थी जिसके लिए वह किसी एक आदमी को अपना खास विश्वासपात्र बनाकर उसके माध्यम से काम करती थी। बहुत बाद मे चलकर यही बातें इमर्जेंसी के दौरान संकट का कारण बन गयी। यशपाल कपूर इमर्जेंसी से पहले का नमूना थे; बाद मे उनका काम उनकी बुआ के बेटे राजेंद्र कुमार धवन[11] ने संभाल लिया। लेकिन दोनों की भूमिकाएँ बिलकुल एक ही थी।

सच तो यह है कि यह ढर्रा बहुत पहले नेहरू के जमाने से चला आ रहा था, जब १९४६ मे एक दिन एम० ओ० मथाई इलाहाबाद मे आनन्द भवन[12] में एक झोला और एक बक्स मे बहुत-से कागज़ लिये हुए जा पहुँचे थे। मथाई ने बिना कोई वेतन लिये जवाहरलाल नेहरू को अपनी सेवाएँ अर्पित कर दी थी। उस जमाने में तो नेहरू केवल एक साधारण नागरिक थे। केरल से आये हुए इस आदमी ने कहा था, "मेरे पास खाने-पीने भर को बहुत है, मुझे पैसा नहीं चाहिए।" स्टेनोग्राफर की हैसियत से वह अपने काम मे इतना होशियार था कि नेहरू पूरी तरह उस पर भरोसा करने लगे, और जब वह भारत के प्रधान मंत्री बने उस समय भी उसने इतनी लगन से उनकी सेवा की कि उसके हाथो में सत्ता की ताकत भी आ गयी। तीन-चार मंत्रियों को छोड़कर, जो बिना किसी रोक-टोक के नेहरू के कमरे में चले जाते थे, बाकी सभी मंत्रियो को अपना काम कराने के लिए मथाई के पास होकर जाना पड़ता था और कभी-कभी तो वह उससे आगे जा भी नही पाते थे। मथाई तीन मूर्ति भवन[13] के अपने कमरे में सुबह आठ बजे आकर बैठ जाता था; वह नेहरू के साथ ही उनकी मोटर पर दफ्तर जाता, उन्हीं के साथ लौटकर आता और रात के साढ़े बारह-एक बजे तक जब तक नेहरू खुद न सो जाते जब भी घंटी बजती वह काम के लिए मुस्तैदी से हाज़िर रहता। अगर नेहरू वक्त के पाबंद थे तो मथाई भी उनसे कम नही था; मथाई इतना निडर भी था कि अगर नेहरू के साथी या उनके रिश्तेदार कोई बेजा बात करते—या स्वयं प्रधान मंत्री

भी कोई भूल करते—तो वह मुँह पर साफ-साफ कह देता। एक बार उसने नेहरू को लिखकर भेज दिया कि उनकी अपनी बहन विजयलक्ष्मी पंडित[१८] अपने निजी काम से जब लंदन से (जहाँ वह भारत की हाई कमिश्नर थी) स्वदेश वापस आ रही थीं तो उन्होंने एयरलाइंस वालों से एक साथ तीन सीटें अपने लिए खाली रखने को कहा था, हालाँकि वह किफायती टिकट पर सफर कर रही थी। मथाई ने प्रधान मंत्री को बड़े उच्च नैतिक स्वर में लिखा, "यह बहुत गलत बात है।" इसी तरह एक बार और जब नेहरू ने कृष्ण मेनन को बिना विभाग का मंत्री नियुक्त किया तो मथाई ने प्रधान मंत्री के नाम अपने एक नोट में इसे बहुत अनुचित बताया और कहा कि इस नियुक्ति से कृष्ण मेनन को बहुत निराशा हुई है। एक बार किसी दावत में जब प्रधान मंत्री किसी महिला से बड़ी देर तक बातें करते रहे तो मथाई ने उन्हें समझाया कि "ऐसा करना मुनासिब नहीं है" कि प्रधान मंत्री किसी एक ही व्यक्ति को इतना अधिक महत्त्व दें।

लेकिन मथाई संदेश पहुँचाने, दूत की हैसियत से काम करने, सुलह-समझौते की बात करने और झगड़े निपटाने की अपनी जिम्मेदारियाँ अपने परिवेश से अलग रहकर नहीं करते थे जैसा कि श्रीमती गांधी के नीचे काम करते हुए यशपाल कपूर और धवन करते थे। हालाँकि मथाई के महत्त्व के बारे में राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं और सरकारी अफसरों के बीच कुछ शिकवे-शिकायत होते रहते थे, लेकिन कोई कटुता नहीं होती थी क्योंकि कभी किसी की राजनीतिक या सरकारी हैसियत पर कभी कोई आँच नहीं आने दी जाती थी।

जब किसी जमी हुई व्यवस्था पर या पद-सोपान के बँधे हुए क्रम पर कोई आघात होता है तभी शासन-तंत्र में अन्दर ही अन्दर विध्वंसक तनाव पैदा होने लगते हैं और तंत्र कमजोर होने लगता है। श्रीमती गांधी को यशपाल कपूर पर इतना भरोसा था कि एक वक्त तो ऐसा आया कि उसकी धाक राज्यों के मुख्य मंत्रियों से भी ज्यादा थी; कम-से-कम वह इतना तो कर ही सकता था कि राजनीति के मैदान में जिसे चाहे प्रधान मंत्री की नजरों में चढ़ा दे और जिसे चाहे उनकी नजरों से गिरा दे। लेकिन वह खुद इतनी आसानी से बचकर नहीं निकल सकता था; जैसा कि गुजराल और दिनेशसिंह के मामले में हुआ, जब उन्हें इस बात का मौका था कि वे हर बात के बारे में अपनी व्याख्या सीधे प्रधान मंत्री तक पहुँचा सकें, तो उस वक्त यशपाल कपूर का पलड़ा हल्का पड़ गया था। लेकिन दिनेशसिंह को मुसीबत में फँसाने में उसका भी हाथ था और धीरे-धीरे गुजराल की लहर भी उतरती गयी।

लेकिन वह स्वामी कौन था? वह कहाँ से आया था? प्रधान मंत्री पर उसने ऐसा कौन-सा वशीकरण मंत्र फूँक दिया था कि वह उनसे मंत्रियों का विभाग बदलवा सकता था—या नये मंत्रियों को लाकर गद्दी पर बिठा सकता था, जैसा कि उसने एक बार ललितनारायण मिश्र[१६] के मामले में किया भी, और वह भी इतने रौब-दाब के साथ?

बात सन् १६५७ की है। इन्दिरा उन्हीं दिनों केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की सदस्य बनी थीं और उन्हें जम्मू-कश्मीर से लेकर हिमाचल प्रदेश और कुल्लू घाटी तक के पहाड़ी इलाके के काम की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। वह दौरे पर गयी हुई थीं और उन्होंने पहलगाम के पास शिकारगाह नामक एक स्थान में एक हफ्ते तक आराम करने का फैसला किया। उनके दोनों बेटे राजीव और संजय उनके साथ थे। यशपाल कपूर भी साथ गये थे। बड़ा सुहावना दिन था;

चारो ओर शाति थी; बिलकुल एकान्त था। वह दोनों लडकों के साथ खेल रही थी। यशपाल कपूर थोडी ही दूर एक चट्टान पर बैठे हुए थे। खट-खट-खट, उन्हें अपने पीछे से किसी की खडाउओ की आवाज सुनायी दी। उन्होंने मुडकर देखा कि एक लंबी दाढी वाला स्वामी मलमल के वस्त्र पहले सीधे तनकर चलता हुआ उस सुन्दर रम्य स्थान मे चला जा रहा है। थोडी देर बाद उन्होंने देखा कि वह घोडे पर बैठा उनके पीछे-पीछे आ रहा है। यशपाल कपूर ने सोचा, यह तो बिलकुल ईसा मसीह जैसा लगता है।

स्वामी ने यशपाल कपूर को रोककर कहा, "मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

यशपाल कपूर ने सीधा-सा जवाब दे दिया, "नही वह किसी से नही मिलेंगी। वह यहाँ आराम करने आयी हैं।"

"क्या चाहता था ?" इन्दिरा ने यशपाल कपूर से पूछा। यशपाल कपूर ने बता दिया।

"क्यो, हर्ज ही क्या है ?" इन्दिरा ने कहा, "वह मुझसे कोई राजनीति पर बहस थोडे ही करेगा।"

यशपाल कपूर ने उसे मिलने का समय दे दिया।

यही स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी थे। अचानक न जाने कहाँ से, उन पहाड़ों के बीच से, जिनमे इन्दिरा को प्यार था, वहाँ प्रकट हो गये थे। स्वामी ने जिन विषयों पर बातें की उनका दिल्ली के उस राजनीतिक चक्कर से कोई संबध नही था, जिससे इन्दिरा प्रधान मत्री के घर की देखभाल करने वाली की हैसियत से भली-भाँति परिचित थी। स्वामी ने उनके बेटो को शिकारगाह मे ही योग के छोटे-मोटे अभ्यास सिखाना शुरू कर दिया। दिल्ली मे तीन मूर्ति भवन मे अकसर उनका आना-जाना होने लगा और बाद मे वह पडित नेहरू को और स्वय इन्दिरा को योगाभ्यास कराने लगे।

स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी उस समय जगजीवनराम[११] के भी मित्र थे, लेकिन बाद मे उनके सबध बिगड गये। स्वामीजी को १, जंतर-मंतर रोड पर सरकारी जगह दिला दी गयी। जब उन्हें वह जगह छोडने पर मजबूर होना पडा तो उन्होंने डिफेंस कॉलोनी के एक मकान मे अपना योगाश्रम खोला। दिल्ली मे एक अंतर-राष्ट्रीय सम्मेलन मे भाग लेने के लिए आयी हुई रूसी डॉक्टरों की एक टोली डिफेंस कॉलोनी मे उनका आश्रम देखने गयी और वहाँ उनका काम देखकर बहुत प्रभावित हुई। स्वामी ने अपने योगाश्रम के लिए ट्रस्ट बना दिया। यशपाल कपूर ने जैसा बताया, जयप्रकाश नारायण, जगजीवनराम, नवल टाटा[११] वगैरह इसके ट्रस्टी थे और सरक्षक थे मोरारजी। १९६८ मे मोरारजी देसाई उप-प्रधानमत्री और वित्त-मंत्री थे, लेकिन उन्होने योगाश्रम की जो लंबी-चौडी योजना स्वामी ने बनायी थी उसके लिए नयी दिल्ली के बीचोंबीच डेढ एकड जमीन की मजूरी देने से इकार कर दिया। १९६९ मे इन्दिरा ने मोरारजी को बर्खास्त कर दिया और साल भर तक खुद वित्त-मत्री रही और स्वामी को जमीन मिल गयी। १९७१ के चुनाव के दौरान आश्रम के अहाते मे जीपों का एक पूरा काफिला ठहरा हुआ पाया गया और जब किसी अखबार का फोटोग्राफर उनकी तसवीरें लेने की कोशिश कर रहा था तो सजय गाधी ने उसका कैमरा छीन लिया।

स्वामी के तत्र-मत्र के विधान के चारों ओर अब राजनीति की एक गोट लग गयी थी और यही हाल उनके सार्वजनिक रूप का भी था।

स्वामी के कारण गुजराल निकाल तो दिये गये पर वह अपने मनचाहे

मंत्रालय में पहुँच गये थे; पर वह अब कुछ डरे-डरे, सहमे-सहमे-से रहते थे। लेकिन कुमारमंगलम के लाए हुए कुछ ऐसे पुराने कम्युनिस्ट, जो अब कांग्रेसी बन गये थे, जिनमें नंदिनी सतपथी[11] भी शामिल थी, प्रचार जैसे बुनियादी महत्त्व के क्षेत्र पर अपना कब्ज़ा जमाना चाहते थे और इसलिए उन्होंने गुजराल पर डोरे डालना शुरू किया। गुजराल का वह हाल था कि जैसे डूबते को तिनके के सहारे की तलाश हो। स्वामी टेलीविजन पर हर हफ्ते आधे घंटे योगाभ्यास की शिक्षा देने लगे। लेकिन श्रीमती गांधी एक बार किसी से नाराज हो जायें तो उनकी हालत बहती हुई जल-धारा जैसी हो जाती है, जिसके बहाव में ऊपर-ऊपर तो लहरें दिखायी देती हैं पर अन्दर गहराई में ऐसा ठहराव रहता है जिस पर किसी चीज का असर नहीं होता।

श्रीमती गांधी का जो नया अंतरंग दरबार था उसमें गुजराल का टकराव चल ही रहा था; २० जून १९७५ को वह संजय गांधी की उस खास नाराजगी की लपेट में आ गये जिसका भरपूर सबूत इमर्जेंसी के दौरान मिला और जिसके खिलाफ़ कुछ लोगों के लिए फरियाद करने को भी कोई गुंजाइश नहीं थी। संजय गांधी की योजना के अनुसार बड़ी-बड़ी मीटिंगों का सिलसिला शुरू हुआ, पोस्टरों की भरमार कर दी गयी और प्रचार की एक ऐसी जबर्दस्त मुहिम छेड़ दी गयी कि कांग्रेस के नेता भी ऐसे मन्त्रमुग्ध हो गये कि उन्होंने इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के खिलाफ जेहाद का नारा लगाना शुरू कर दिया।

गुजराल ने १९६६ में इस सिलसिले को जहाँ पर छोड़ा था वहीं से संजय ने सिरा पकड़ लिया। लेकिन १९७५ में गुजराल को लेने के देने पड़ रहे थे। जनता पर प्रधान मंत्री के असर को साबित करने के लिए नयी दिल्ली के बोट क्लब में जो विशाल रैली[12] संगठित की गयी थी, जिसमें प्रधान मंत्री ने स्वयं भाषण दिया था, उसके दूसरे ही दिन संजय ने अपनी माँ के मंत्री गुजराल को बहुत गुस्से में आकर टेलीफोन किया। बड़ी सख्त आवाज में उनसे जवाब तलब किया गया कि आखिर वह रैली ज्यों की त्यों टेलीविजन पर क्यों नहीं दिखायी गयी थी? गुजराल अपने स्वाभिमान को दबाकर रह गये और बड़े शांत भाव से उन्होंने छानबीन करने का वादा किया।

नियम यह था कि राजनीतिक पार्टियों की मीटिंगें टेलीविजन पर नहीं दिखायी जाती थीं, हालांकि १९७१ के बाद से उस समय के डायरेक्टर-जनरल के सीधे आदेश पर कुछ मौकों पर यह नियम तोड़ा भी गया था। गुजराल को पता चला कि इस बार टेलीविजन केन्द्र से इस तरह की कोई प्रार्थना या माँग नहीं की गयी थी। बहरहाल इस तरह के सारे फैसले मंत्रालय में उन मीटिंगों में किये जाते थे जिनमें प्रधान मंत्री के सलाहकार शारदाप्रसाद भी मौजूद रहते थे। लेकिन उसके बाद में प्रधान मंत्री की कोठी के बाहर वाले चौराहे पर अगले पंद्रह दिन तक रोज जो मीटिंगें होती थीं उनमें प्रधान मंत्री के सारे भाषण टेलीविजन पर दिखाये जाने लगे। श्रीमती गांधी की नाराजगी फिर भी दूर नहीं हुई। उनका खयाल था कि उनकी जो तसवीरें ली जाती थीं उनमें कैमरे को जान-बूझकर ऐसी जगह रखा जाता था कि उनका चेहरा अच्छा न आये, और उसके बारे में कोई कार्रवाई भी नहीं की जा रही थी।

अपने ही नियम को इस तरह खुलेआम तोड़कर सूचना मंत्रालय अजीब धर्म-संकट में फँस गया। विपक्ष के लोग २५ जून को अपनी मीटिंग कर रहे थे और उसमें जयप्रकाश नारायण[13] भाषण देने वाले थे। डायरेक्टर-जनरल पी० सी०

चटर्जी ने फैसला किया कि इस मीटिंग को टेलीविजन पर पेश किया जाना चाहिए। मंत्री महोदय ने एक मीटिंग बुलायी, जिसमे दूसरे लोगों के अलावा प्रधान मंत्री के मुख्य प्राइवेट सेक्रेटरी प्रोफेसर पी० एन० धर और गृह मंत्रालय के सेक्रेटरी एन० के० मुखर्जी भी मौजूद थे। गुजराल ने सारी समस्या समझायी और फिर मुखर्जी की तरफ मुडकर देखा तो उन्होने बड़े नीरस भाव से कह दिया, "मैं समझता हूँ कि इस मामले मे प्रोफेसर धर कुछ सलाह दे सकते है।" धर ने एक मिनट तक सोचा और फिर बोले, "यह प्रचार माध्यम की समस्या है। प्रचार माध्यम को ही इसे हल करना चाहिए।" "तो हमें क्या करना चाहिए?" गुजराल ने डायरेक्टर-जनरल से पूछा। उन्होंने जवाब दिया, "मैं समझता हूँ कि हमें इसे अपने कार्यक्रम मे शामिल करना चाहिए।"

उन्होने सुझाव दिया कि मीटिंग मे भाषण देते हुए जयप्रकाश नारायण की और अलग-अलग कुछ जगहो पर जुलूस की तसवीरें ले ली जायें, लेकिन उन्हें इस तरह बढा-चढाकर न पेश किया जाये कि देखने वाले किसी तरह गुमराह हों।

यह तो अभी गुजराल की मुसीबतों की शुरुआत थी। २३ जून को सुप्रीम कोर्ट ने श्रीमती गांधी के पक्ष मे स्टे-ऑर्डर दे दिया, लेकिन उसके साथ कुछ शर्तें जुडी हुई थी। सुप्रीम कोर्ट का आखिरी फैसला आने तक वह प्रधान मंत्री की हैसियत से काम कर सकती थी लेकिन वह संसद में वोट नहीं दे सकती थीं। वहां पर ऑल-इंडिया रेडियो का जो संवाददाता तैनात था उसने फौरन अंग्रेजी मे रेडियो पर ब्रॉडकास्ट के लिए खबर तैयार कर दी, जिसमे यह कहकर कि "श्रीमती गांधी प्रधान मंत्री बनी रहेंगी" एक आशावादी पुट दे दिया गया था। चार बजे जब हिंदी में खबरें पढी गयी तो उसमे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया की भेजी हुई खबर सुनायी गयी जिसमें फैसले के साथ लगायी गयी शर्तें भी शामिल थी और उससे बिलकुल ही दूसरा असर पडता था। इस पर प्रधान मंत्री की कोठी मे एक बहुत गुस्से से भरा हुआ फरमान आया। संजय ने कहा था कि रेडियो पर जो खबरें पढी जायें वह पहले उन्हें दिखा ली जायें। प्रधान मंत्री के पास एक और खबर पहुँची, जिसमें कहा गया था कि गुजराल का विदेशी प्रचार माध्यमों पर कोई भी असर नही है और यह कि बी० बी० सी० ने इस खबर को बहुत ही जहर भरे ढंग से ब्रॉडकास्ट किया था।

धवन ने गुजराल को बडी रुखाई मे टेलीफोन किया, "प्रधान मंत्री आपसे मिलना चाहती है।"

जाने मे पहले गुजराल ने सारी बातो की छानबीन कर ली और उन्हें पता चला कि जिस खबर के लिए बी० बी० सी० को दोषी ठहराया जा रहा था वह असल मे पाकिस्तान से ब्रॉडकास्ट की गयी थी। उन्होंने श्रीमती गांधी को टेली-फोन करके समझाया कि किसी से वहां तो कोई असर डालने की उम्मीद नहीं की जा सकती। उनका पारा कुछ नीचे उतरा। लेकिन जब गुजराल उनकी कोठी पर पहुँचे तो संजय गांधी बिलकुल आपे से बाहर बगलवाले कमरे मे से निकले।

संजय ने गरजकर कहा, "ऐसा लगता है कि आपको अपना मंत्रालय संभालना नही आता। क्या आप उनको इतना भी नही बता सकते कि खबरें किस तरह पेश की जायें?"

गुजराल ने पूरी तरह अपने ऊपर काबू रखा। "देखिये, मैं भी उतना ही परेशान हूँ, मुझे भी उतनी ही फिक्र है। लेकिन इसकी सफाई मैं आपको नही देना चाहता।" उन्होंने बडी नरमी मे संजय को झिड़क दिया और श्रीमती गांधी

से मिलने अंदर चले गये।

उन्होंने प्रधान मंत्री को पूरी तरह समझाया कि जो खबरें ऐन वक़्त पर आती हैं उनके बारे में पहले से कुछ जान सकना नामुमकिन है, क्योंकि इन्हें एक पर्चे पर लिखकर खबरें पढनेवाले के पास उस वक़्त भेजा जाता है जब बाकी खबरें पढी जा रही होती है। जब खबर पहली बार पढी गयी थी उस वक़्त सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बारे में बस एक छोटा-सा ऐलान आया था। दुबारा जब हिंदी में खबर सुनायी गयी उस वक़्त तक और बहुत-सा ब्यौरा आ चुका था, इसलिए खबरें ज्यादा विस्तार के साथ पढी गयी थी। सच तो यह है कि उस खबर को नये ढंग से लिखकर साढे चार बजे फिर रेडियो पर सुनाया गया था। श्रीमती गांधी चुपचाप सुनती रही।

लेकिन जिस दिन इमर्जेंसी की घोषणा की गयी उस दिन प्रधान मंत्री की सेक्रेटेरियट के ज्वाइंट सेक्रेटरी पी० एन० बहल ऑल-इंडिया रेडियो के न्यूज-रूम में सुबह छ: बजे ही पहुँच गये और वहाँ का सारा बंदोबस्त अपने हाथों में सँभाल लिया। सुबह छ: बजे ही डायरेक्टर-जनरल चटर्जी के पास गुजराल का टेलीफोन आया, जिसमें उन्होंने हिदायत दी, "प्रधान मंत्री का एक संदेश रिकार्ड करने के लिए एक टीम तैयार रखी जाये। लेकिन जब तक मैं न कहूँ तब तक भेजी न जाये।"

चटर्जी ने स्टेशन-डायरेक्टर बरुआ से संपर्क स्थापित किया और उनसे फौरन दफ़्तर पहुँच जाने को कहा।

सात बजे गुजराल ने फिर टेलीफोन किया।

"रिकार्डिंग के लिए टीम को प्रधान मंत्री की कोठी पर भेज दो। उनका संदेश आठ बजे वाली खबरो की बुलेटिन की जगह पढा जायेगा।"

खबरों की बुलेटिन की जगह?

तब जाकर चटर्जी का माथा ठनका कि कोई बहुत बड़ी बात होने वाली है। लेकिन वह दुविधा मे फँसे हुए थे कि राष्ट्र के नाम प्रधान मंत्री के संदेश के ब्रॉडकास्ट के बारे में पहले से कोई ऐलान किया जाये या नही। वह सोच में पड़ गये कि अगर लोग रिकार्डिंग करके आठ बजे वाले बुलेटिन के वक़्त तक न आये तो क्या होगा। फिर भी उन्होंने यह आदेश जारी कर दिये कि सभी सेवाओ में यह संदेश प्रसारित किया जाये और सभी स्टेशन एक साथ अपने यहाँ से उसे रिले करें। आठ बजने में दो मिनट रह गये थे जब हिंदी वाली टीम ने अपना काम पूरा कर दिया, उसके बाद अंग्रेजी मे ब्रॉडकास्ट हुआ। ऐन वक़्त पर सब-कुछ ठीक-ठाक हो गया। लेकिन इस बात पर ऐतराज किया गया कि इस रेडियो-भाषण के बारे मे पहले से कोई ऐलान नही किया गया था। शारदाप्रसाद का डायरेक्टर-जनरल से संपर्क था लेकिन उन्होने उनको कुछ बताया नही था। उन्होने न्यूज-रूमवालों को कुछ बताया था, इसलिए डायरेक्टर-जनरल ने अपनी समझ के हिसाब से फैसला किया।

लेकिन मंत्रालय तो गुजराल का था और गुजराल के बारे मे यह देखा गया था कि वह प्रचार के माध्यमो को काबू मे रखने के मामले में 'बेहद ढीले' है, ख़ास तौर पर अख़बारों के मामले मे और उससे भी ज्यादा ख़ास तौर पर उस रात जब इमर्जेंसी लागू की गयी थी। सभी अख़बारो के प्रेसो की बिजली काट देने का फैसला किया गया था ताकि सुबह तड़के राष्ट्रीय नेताओ की जो गिरफ़्तारियाँ हुई थी उनकी ख़बर किसी अख़बार मे न छपने पाये; यह फैसला

दिल्ली तक में पूरी तरह नहीं लागू हो सका। दिल्ली को अखबारों वाली सड़क बहादुरशाह ज़फर मार्ग मे, जहां इंडियन एक्सप्रेस टाइम्स ऑफ़ इंडिया, पेट्रियट और नेशनल हेराल्ड के दफ्तर हैं, बिलकुल अँधेरा था, लेकिन स्टेट्समैन और हिंदुस्तान टाइम्स को सुबह अपने सप्लीमेंट निकालने से नहीं रोका जा सका और उनमें गिरफ्तारियों का पूरा ब्यौरा छपा। जनमथ के दैनिक मदरलैंड ने, जिसको सबसे पहला निशाना बनाया जाना चाहिए था, झंडेवालान में अपने प्रेस से पूरा अखबार निकाला, क्योंकि वह इलाका 'बिजली फेल होने' के क्षेत्र से बाहर था।

गुजराल के घर पर २६ जून की शाम को उनके कुछ दोस्त बैठे हुए थे कि इतने में प्रधानमंत्री की कोठी से टेलीफोन आया कि उनको फौरन बुलाया गया है। गुजराल का रंग फीका पड़ गया। रात को साढ़े नौ बजे उनकी छुट्टी कर दी गयी।

अगले दिन सुबह वह सोच रहे थे, "अब किसी भी समय वे चंद्रशेखर की तरह मुझे भी पकड़ने आ सकते हैं।"

वह जानते थे कि इन्दिरा गांधी को उनकी वफादारी के बारे में शक हो गया था। इसकी एक वजह यह भी थी कि यह कहा जाता था कि वह १२ जून से २५ जून के बीच वाले पखवाड़े में केन्द्रीय कृषि तथा सिंचाई मंत्री बाबू जगजीवन राम से कई बार और चुपके-चुपके मिलने गये थे। यह वह वक़्त था जब इस सवाल पर बहस हो रही थी कि अगर सुप्रीम कोर्ट के आख़िरी फैसले के इंतजार में श्रीमती गांधी कुछ दिन के लिए अपने पद से हट जायें तो उनकी जगह नेता किसको बनाया जाये। हर तरफ़ इस सिलसिले में जगजीवनराम के ही नाम की चर्चा हो रही थी। लेकिन उस वक्त श्रीमती गांधी लोगों की वफादारी को बड़ी सख्ती से परखने लगी थीं। गुजराल की दलील यह थी कि "अगर मैं उनसे मिला भी तो इसमें हर्ज ही क्या था? वह उनकी अपनी कैबिनेट के सदस्य थे, उनके अपने मंत्री थे।"

पहले भी उन्हें इस बात पर ऐतराज हुआ था कि वह सामाजिक मेल-जोल के नाते भी दिनेशसिंह से क्यों मिलते थे, लेकिन यह मामला ज्यादा संगीन था। इस बात से श्रीमती गांधी के साथियों के राजनीतिक सलूक-व्यवहार में भी एक बनावटीपन आ गया जिसकी वजह से उनके निजी रिश्ते भी बिगड़ गये। प्रधान मंत्री की हैसियत से उनके स्वभाव में जो यह नयी प्रवृत्ति पैदा हो गयी थी उसपर कांग्रेस के दूसरे नेताओं की तरह दिनेशसिंह भी उतना ही परेशान थे। उन्होंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि उनका सोचने का यह क्या ढंग हो गया है कि वह अपने पुराने मिलनेवालों की तनिक भी परवाह नहीं करतीं। उन्होंने राजनीति में कभी कोई निजी संबंध बनाकर नहीं रखे, लेकिन मैंने तो रखे हैं। पंडितजी की जयप्रकाश से कभी नहीं निभी, लेकिन उन्होंने फिर भी संबंध बनाये रखा। हमारा समाज बहुत उदार है। उसमें टकराव कराना कभी भी आसान नहीं होता।"

इन्दिरा गांधी ने बहुत कड़ी सीमाओं में जकड़ी हुई वफादारी की कुछ ऐसी कसौटियों को बढ़ावा दिया, कि दूसरी सभी चीजों की तरह उन्होंने भी इमर्जेंसी के दौरान और भी उग्र रूप धारण कर लिया। सिर्फ कांग्रेस के प्रति वफादारी ही काफी नहीं थी; उस वफादारी का सबूत निजी तौर पर उनके प्रति खुली वफादारी के रूप में भी देना जरूरी था। अगर एक बार उनके मन में अपने किसी साथी के बारे में अविश्वास पैदा हो जाता तो अगर वह, मिसाल के लिए, किसी ऐसी दावत में जाने का निमंत्रण भी स्वीकार कर लेता जिसमें जगजीवनराम

मुख्य अतिथि होते, तो इसका मतलब भी यही लगाया जाता था कि वह आदमी वफादार नहीं रह गया। गुजराल इमर्जेंसी के संकट से बाल-बाल बचकर निकल आये थे, लेकिन सिर्फ इसलिए कि राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद[१७] ने श्रीमती गांधी से उनकी तरफ से पैरवी की थी। इमर्जेंसी का ऐलान होने के दो दिन बाद २८ जून को सुबह साढ़े नौ बजे गुजराल से योजना मंत्रालय में राज्य-मंत्री का भार सँभालने को कहा गया। उनको ऐसी जगह ढकेल दिया गया था जहाँ लगभग उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया था। गुजराल ने भी इस्तीफ़ा नहीं दिया और श्रीमती गांधी भी अपनी ज़िद पर अड़ी रहीं। मार्च १९७६ में गुजराल को भारत का राजदूत बनाकर मास्को भेज दिया गया। कूटनीति के क्षेत्र में इसे एक सबसे ऊँचा पद समझा जाता था, लेकिन जहाँ तक श्रीमती गांधी का सवाल था, यह गुजराल को राजनीति से हटाने का काफी कारगर हथियार था। 813

जो समस्याएँ कांग्रेस के संगठन को अंदर ही अंदर खोखला किये दे रही थीं उनमें सबसे उलझा हुआ अंदरूनी झगड़ा वह था जिसमें इन्दिरा गांधी, बहुगुणा,[१८] यशपाल कपूर और संजय अपनी-अपनी शतरंज की चालें चल रहे थे। एक भी कांग्रेसी ऐसा नहीं है, वह चाहे पार्टी के अंदर इन्दिरा-समर्थक गुट का हो या इन्दिरा-विरोधी गुट का, जो इस बात की मिसाल के तौर पर 'बहुगुणा के मामले' का हवाला न देता हो कि किस तरह श्रीमती गांधी हर उस आदमी पर बड़ी बेरहमी से दबाव डालती रहती हैं जो "होनहार हो, गुणी हो और जिसका भविष्य उज्ज्वल हो", भले ही वह आदमी उनके प्रति सोलह आने वफादारी की क़सम क्यों न खाता हो। गुजराल ने यह बात कितनी ही बार कही है कि जिस बात से उनको सबसे ज़्यादा तकलीफ पहुँचती है वह यह है कि श्रीमती गांधी उनकी वफादारी पर शक करती हैं; अगर वह कोई दूसरा इल्ज़ाम लगातीं तो समझ में आ सकता था।

श्रीमती गांधी की शिकायत यह रही है कि जिस किसी को भी उन्होंने सहारा दिया और आगे बढ़ाया उसने उनके साथ विश्वासघात किया। उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति समझदार और उत्साही लोगों को चुनने की ओर रही है। लेकिन इस डर से कि वे उन पर हावी न हो जायें, उन पर से उनका भरोसा उठ जाता है।

इस सिलसिले में चन्द्रशेखर ने कहा, "शायद उनका यह सोचना बहुत ग़लत भी नहीं है। देखिये, उन सभी लोगों ने किस तरह उनका साथ छोड़ दिया है—ख़ास तौर पर उनके वामपंथी साथियों ने जो उनके पक्ष में सबसे बढ़कर बातें करते थे। अगर किसी को सज़ा देनी हो तो सबसे पहले इन्हीं लोगों को जेल भिजवाया जाना चाहिए।" [938]

ज़ाहिर है, चन्द्रशेखर का इशारा बरुआ[१९], सिद्धार्थशंकर रे[२०] और चन्द्रजीत यादव की तरफ था, लेकिन श्रीमती गांधी ने भी इन लोगों को उतना ही इस्तेमाल किया था जितना कि इन लोगों ने श्रीमती गांधी का फायदा उठाया था। बहुगुणा के साथ जो कुछ हुआ वैसा ही इससे पहले भी होता आया था। बहुगुणा में तड़क-भड़क बहुत थी, लेकिन संगठन बनाने में उन्हें कमाल हासिल था। १९६९ में वह इन्दिरा गांधी की तरफ से कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी की हैसियत से काम कर चुके थे, और इसी के बदले में उन्हें केन्द्रीय सरकार में संचार का राज्य-मंत्री बना दिया गया था। बाद में उन्हें केन्द्र ने इस शर्त पर उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री भी बना दिया था कि हर बात की आख़िरी मंज़ूरी दिल्ली से ही लेनी पड़ेगी। साधारी

हेमवतीनंदन बहुगुणा बहुत चतुर आदमी थे—इतने चतुर कि उन्होंने हर बात मान ली, और साथ ही इतने चतुर कि उचित अवसर की ताक में रहे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र नेता की हैसियत से स्वतंत्रता से पहले की राजनीति मे (१९४२ मे वह जेल गये थे) उन्नति करते-करते वह एक अत्यन्त सशक्त तथा गतिवान व्यक्तित्व के मालिक बन गये थे और उनमें एक ऐसा गुण था कि वह हमेशा जीतने वाले पक्ष के साथ होते थे। इन्दिरा का पक्ष जीतने वाला पक्ष था, लेकिन उत्तर प्रदेश की राजनीति का मैदान इतना विस्तृत था कि उसे जीतने का लोभ भी कुछ कम आकर्षक नही था। बहुगुणा समझते थे कि इन दोनो बातों के बीच टकराव होना कोई जरूरी नही है। उन्होने तो श्रीमती गांधी को जहाँ तक उन्होने चाहा ऊपर चढने दिया, पर श्रीमती गांधी इस बात के लिए तयार नही थी कि बहुगुणा का हौसला बहुत बढने पाये। वह बहुगुणा के बारे में भी बहुत-कुछ वैसा ही अनुभव करती थी जैसा कि कामराज'' उस समय श्रीमती गांधी के बारे मे अनुभव करते थे जब उन्होने उनको प्रधान मंत्री बनने मे सहायता दी थी—यानी आज्ञाकारिता के भी रूप बदलते रहते हैं।

१९६९ मे जब बाबू जगजीवनराम कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे उस समय बहुगुणा जनरल सेक्रेटरी थे। कांग्रेस के बँटवारे के बाद श्रीमती गांधी चाहती थी कि वह उत्तर प्रदेश वापस चले जायें। इससे पहले कि वह कोई फैसला कर पाती बहुगुणा ने जगजीवनराम से यह ऐलान करवा दिया कि वह बहुगुणा को केन्द्रीय सगठन मे उसी पद पर बरकरार रखेंगे। इन्दिरा गांधी ने झल्लाकर कहा, "अब इनको देखिये, वहाँ से जाकर ऐलान करवा दिया।" वह एक बार फिर चिढ गयी जब उन्होंने देखा कि १९७१ के लोकसभा के चुनावो मे बहुगुणा बीस उम्मीदवारो को उससे ज्यादा पैसा दे रहे थे जितना कि ऑल-इंडिया कांग्रेस कमेटी ने मंजूर किया था; शायद वह ऐसा उन्हें 'अपना आदमी' बनाने के लिए कर रहे थे। चुनाव के बाद एक बार बहुगुणा ने भी उसी हवाई जहाज पर, जिसमें प्रधान मंत्री रायबरेली जा रही थी, अपने लिए भी एक सीट का बंदोबस्त करवा लिया। जब श्रीमती गांधी ने यह सुझाव रखा कि वह केन्द्रीय सरकार मे संचार के राज्य-मंत्री बन जायें तो बहुगुणा ने इन्कार कर दिया। श्रीमती गांधी ने अनुरोध किया, "पहले कुछ काम कर लो, तरक्की बाद मे हो जायेगी।" बहुगुणा फिर भी नही माने।

जब श्रीमती गांधी ने रायबरेली मे यह बात उमाशंकर दीक्षित'' और दूसरे लोगो को बतायी तो यशपाल कपूर ने एक ऐसी बात कह दी जिसने उनके मन मे अविश्वास का गहरा बीज बो दिया। यशपाल कपूर ने कहा, "उन्होंने आपकी मर्जी के खिलाफ काम किया है।"

महीने भर तक बहुगुणा चुप्पी साधे रहे।

इसी बीच श्रीमती गांधी को बताया गया कि बहुगुणा ने राजनारायण'' से उनके खिलाफ वह चुनाव याचिका दायर करवा दी है जिसकी अब इतनी चर्चा है। यह हो सकता है कि राजनारायण के साथ उनका सम्बन्ध वैसा ही रहा हो जैसा चन्द्रभानु गुप्त का था, जिन्होंने मुख्य मंत्री की हैसियत से उत्तर प्रदेश मे सोशलिस्ट पार्टी को हमेशा अपनी जेब मे रखने की कोशिश की थी। सच तो यह है कि जिस दिन यह याचिका दायर की गयी थी उसी दिन सवेरे बहुगुणा ने बहुत घबराकर लखनऊ मे दिल्ली टेलीफोन किया था।

यह सुनकर श्रीमती गांधी के एक और घनिष्ठ विश्वासपात्र एन० के० शेषन्

ने यशपाल कपूर से सम्पर्क किया और कहा, "बहुगुणा ने अभी प्रधान मंत्री को टेलीफ़ोन किया था और उन्हें बताया कि राजनारायण ने याचिका दायर कर दी है। उन्होंने यह भी जानना चाहा कि हमारी तरफ़ से कोई वकील किया गया है या नहीं।"

"जब तक अदालत सम्मन न भेजे तब तक हम कुछ नहीं कर सकते," यशपाल कपूर ने जवाब दिया और साथ ही यह भी कहा, "शेषन्, उन्होंने टेलीफ़ोन चुनाव याचिका के बारे में नहीं किया था। वह अपना कोई काम निकालना चाहते हैं।"

जब शेषन् ने प्रधान मंत्री को यशपाल कपूर की प्रतिक्रिया के बारे में बताया तो वह हँस दीं। बहुगुणा को दिल्ली बुलवाने का फैसला किया गया।

उसी दिन सुबह तीन सौ मील दूर टेलीफोन पर बहुगुणा को यशपाल कपूर की भारी आवाज़ सुनायी दी, "गुरुदेव, बुलावा है, आ जाइये।"

अगले दिन बहुगुणा आ गये। इतवार का दिन था। उस दिन इन्दिरा गांधी कोशिश करती थीं कि जहाँ तक हो सके किसी से न मिलें। लेकिन इस मामले में जिस तरह तिकड़मबाज़ी हो रही थी और जिस तरह दोनों तरफ से अहंकार का टकराव हो रहा था, वह केवल इस बात का नमूना था कि आगे चलकर यही चीज़ विकृत होकर इमर्जेंसी के दौरान क्या रूप धारण कर लेने वाली थी।

बहुगुणा ने प्रधान मंत्री की कोठी पर टेलीफोन किया। ड्यूटी पर जो पी० ए० था उसने यशपाल कपूर को बताया। यशपाल कपूर ने उससे कह दिया कि बहुगुणा को टेलीफ़ोन करते रहने दो। हर आधे घंटे बाद बहुगुणा का टेलीफोन आता रहा, यहाँ तक कि शाम के साढ़े सात बज गये। आख़िरकार बहुगुणा को गुस्सा आ गया। उन्होंने डपटकर कहा, "प्रधान मंत्री ने मुझे यहाँ बुलाया है। अगर आप उन्हें बतायेंगे नहीं तो वह यही समझेंगी कि मैं आया ही नहीं।"

यशपाल कपूर ने पी० ए० से कहा कि टेलीफोन उन्हें दें और पूछा, "आपको किसने टेलीफ़ोन किया था?"

बहुगुणा ने झल्लाकर कहा, "तुमने किया था।"

"तो फिर आपने मुझे टेलीफ़ोन क्यों नहीं किया?"

इसके बाद यशपाल कपूर ने प्रधान मंत्री को सूचना दी। उन्होंने कह दिया कि बहुगुणा पहले उमाशंकर दीक्षित से मिल लें।

यशपाल कपूर ने संदेश बहुगुणा तक पहुँचा दिया, "जाइये, जाकर भीष्म पितामह" से मिल लीजिये।"

महाभारत के इस प्रसंग का संकेत दीक्षित जी की ओर था। ऐसा लगता है कि सत्ता की इस खींचातानी में भी लोग आपस में हँसी-मज़ाक करने से बाज़ नहीं आते थे।

जब आख़िरकार बहुगुणा की श्रीमती गांधी से मुलाकात हुई तो उन्होंने फिर उनके सामने संचार मंत्रालय के राज्य-मंत्री बनने का सुझाव रखा। इस बार बहुगुणा मान गये।

१९७२ का साल ख़त्म होते-होते उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री की हैसियत से कमलापति त्रिपाठी" की लहर बिलकुल उतर चुकी थी। उनके बेटे के ख़िलाफ़ तरह-तरह की शिकायतें थीं और लोगों में आम असंतोष था। वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। नये चुनाव होने थे। प्रधान मंत्री की कोठी पर लगातार मीटिंगें चल रही थीं। सुझाव तो बहुत-से रखे गये, लेकिन यशपाल कपूर के सुझाव अमली थे।

उन्होंने प्रधान मंत्री से कहा, "अगर आप त्रिपाठीजी को वहाँ रखेंगी तो हम जीत नहीं सकते।"

"फिर किसे रखा जाये ?" उन्होंने पूछा।

"बहुगुणा को मुख्य मंत्री बना दीजिये।"

"तुम तो जानते हो, वह किस तरह के आदमी हैं," श्रीमती गांधी ने कहा।

"मैं जानता हूँ कि वह तिकड़मी हैं," यशपाल कपूर ने हामी भरी।

"कोई नहीं कह सकता कि आगे चलकर वह क्या कर बैठें," श्रीमती गांधी ने फिर कहा।

"वह आपकी मुट्ठी में होंगे," यशपाल कपूर बोले, "आप जो चाहेंगी कर सकेंगी।"

बहुगुणा अब बताते हैं कि उस समय तक संजय ने मन्त्रियों के बीच अपनी धाक [illegible]

[illegible]

और भेज दिया जाये। इस बार की चोट संजय के एक इंजीनियर दोस्त पर भी पड़ती थी; प्रधान मंत्री का बेटा चाहता था कि वह दिल्ली में ही रहे। बहुगुणा ने कहा कि वह ऐसा खुला पक्षपात नहीं कर सकते, और उस इंजीनियर को यहाँ से जाना पड़ा। बहुगुणा बताते हैं, "जैसे ही मैंने मंत्रालय छोड़ा, वह फिर यहाँ वापस आ गया। मैं उत्तर प्रदेश कभी जाना ही नहीं चाहता था, मुख्य मंत्री की हैसियत से भी नहीं।"

असल में, उन्हें उप-मुख्य मंत्री बनाने की बात कही गयी थी, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया था। आखिरकार जब उन्हें समझा-बुझाकर राज़ी किया गया तो कमलापति त्रिपाठी ने उन्हें लेने से इंकार कर दिया। परिस्थिति का विकास जिस ढंग से हुआ उससे तो ऐसा लगता है कि बात यह नहीं थी कि पहले से सोची-समझी किसी योजना के अनुसार श्रीमती गांधी की ओर से केन्द्रीय नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से जान-बूझकर कुछ चालें चली जा रही थीं, बल्कि इससे ज्यादा सच बात यह थी कि घटनाओं का क्रम संयोगवश एक दिशा में आगे बढ़ रहा था। लेकिन असली कसौटी निश्चित रूप से यही थी कि जो कुछ भी हो वह उनकी मर्ज़ी से हो। उत्तर प्रदेश के विधायक दल का बीच में कोई दख़ल ही नहीं था। मुख्य मंत्री किसे बनाया जाये, इस सिलसिले में जो भी क़दम उठाया जाता था उसका फ़ैसला दिल्ली में कुछ गिने-चुने लोग आपस में बैठकर कर लेते थे। जिन लोगों को दिल्ली में चुन लिया जाता था उनसे उम्मीद यह की जाती थी कि वे अपने राज्य के विधायकों की रस्मी मंज़ूरी ले लेंगे, क्योंकि वे तो हमेशा हर फ़ैसले पर अपनी मुहर लगा देने को तैयार ही बैठे रहते थे। कायदे-कानून के हिसाब से दिखावे के लिए कार्रवाइयाँ सभी पूरी की जाती थीं, लेकिन असल में फ़ैसला करने का सारा काम केन्द्र ने अपने हाथों में ले लिया था।

फ़ैसला यह किया गया कि नारायणदत्त तिवारी[1], जो उन दिनों उत्तर प्रदेश कांग्रेस विधायक दल के चीफ़ ह्विप थे, उत्तर प्रदेश के गवर्नर के पास यह माँग करते हुए एक नोट लेकर जायेंगे कि चुने हुए प्रतिनिधियों की सरकार फिर से स्थापित की जाये। त्रिपाठीजी को ही दुबारा मुख्य मंत्री बनाया जाना था और अगले दिन सुबह वह उमाशंकर दीक्षित और शंकरदयाल शर्मा[2] की सलाह से

यह फ़ैसला करने वाले थे कि उनके मंत्रिमंडल में किसे-किसे रखा जाये। लेकिन उसी दिन रात को यशपाल कपूर ने प्रधान मंत्री के दिमाग़ में एक और संशय का बीज बो दिया, जिसकी वजह से पूरा नक़्शा ही बुनियादी तौर पर बदल गया। उनके लिए ज़रूरी नहीं था कि वह यशपाल कपूर की बात पर ध्यान देती, लेकिन इस बात से कि उन्होंने यशपाल कपूर के सुझावों को मान लिया यही पता चलता है कि ख़ुद उनके मन में क्या-क्या संदेह थे। यशपाल कपूर ने श्रीमती गांधी को एक छोटा-सा पर्चा लिखा: "त्रिपाठी जी मुख्य मंत्री तो बन जायेंगे, लेकिन जब वह अभी आपकी बात नहीं मानते तो आगे चलकर तो न जाने क्या करेंगे ?"

प्रधान मंत्री ने नारायणदत्त तिवारी को मना कर दिया कि जब तक उन्हें नया आदेश न मिले तब तक वह गवर्नर के पास पत्र लेकर न जायें। अगले दिन वह हवाई जहाज़ से केरल चली गयी। नारायणदत्त तिवारी ने लखनऊ से त्रिपाठीजी को टेलीफ़ोन करके उन्हें बताया कि उस समय स्थिति क्या थी। उसी दिन सुबह शंकरदयाल शर्मा और दीक्षितजी ने त्रिपाठी से पूछा कि वे कब आ जायें। त्रिपाठीजी जले-भुने बैठे थे। उन्होंने कहा, "मिनिस्ट्री-विनिस्ट्री नहीं बनेगी। मैं बनारस जा रहा हूँ। अगर उन्हें मेरी ज़रूरत हो तो मुझे बुलवा लें।"

शर्मा और दीक्षित ने प्रधान मंत्री को केरल टेलीफ़ोन किया। "अगर वह नाराज़ हैं तो नाराज़ रहें, मैं यहाँ से क्या कर सकती हूँ ?" बस इतना कहकर उन्होंने टेलीफ़ोन रख दिया।

बहुगुणा मुख्य मंत्री बन गये।

इसके फ़ौरन ही बाद १९७४ के विधानसभा के चुनावों के समय ही बहुगुणा पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने जान-बूझकर उन उम्मीदवारों को हरवा दिया था "जिनके बारे में यह समझा जाता था कि उनकी वफ़ादारी सीधे दिल्ली के साथ है।" यह एक अनोखा विचार था; आख़िर 'दिल्ली के साथ वफ़ादारी' का मतलब क्या था ?

एक वफ़ादार कांग्रेसी ने पूरे दावे के साथ इसका मतलब समझाते हुए कहा, "इन्दिरा गांधी के लिए वफ़ादारी। आप तो जानती ही हैं, उस तरह के लोग जो कहते हैं कि 'हम तो कांग्रेस में इन्दिराजी की वजह से हैं।'"

"और पार्टी के साथ वफ़ादारी ?" मैंने उनसे पूछा।

"हाँ, वह तो है ही, लेकिन एक निजी लगाव भी होता है, आप किस नेता को पसन्द करते हैं। यह राजनीति का, इस दलबंदी का एक हिस्सा है। इसे मानना ही पड़ता है। सच पूछिये तो आख़िर सी० बी० गुप्ता-ग्रुप क्यों था, त्रिपाठी-ग्रुप क्यों है ?"

सचमुच, क्यों है ? जो लोग नेहरू को चाहते थे और जो पटेल[१६] को चाहते थे, वे दोनों ही कांग्रेस के अन्दर क्यों थे ? लेकिन वह एक ऐसा ज़माना था जब कांग्रेस को इस बात की ज़रूरत थी कि उसके अन्दर अलग-अलग विचार, अलग-अलग विचारधाराएँ अलग-अलग ध्रुवों पर केन्द्रित हो जायें, इसलिए अलग-अलग दिशाओं में बहने वाली धाराओं का होना अनिवार्य था। १९६९ के बाद जब इन्दिरा गांधी ने वामपंथ की ओर झुकाव को सिद्धांत का सवाल बना लिया और उन्हें इतना ज़बर्दस्त समर्थन मिला तब पार्टी को केवल एक कार्यक्रम के आधार पर एकताबद्ध रखा जा सकता था। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि बांगला देश के युद्ध और उसके बाद की घटनाओं[१७] में दो साल निकल गये। लेकिन १९७३ के महीने सचमुच परीक्षा की घड़ी थे। लेकिन १९७४ में ही जोड़-

तोड की राजनीति का खेल शुरू हो गया था; लोग उसमें ज्यादा उग्रता के साथ जूझ रहे थे और तनाव बढता जा रहा था जिसकी वजह से आगे चलकर पार्टी के काम करने के ढंग की ऐसी दुर्गति हुई।

उत्तर प्रदेश मे जो कुछ हो रहा था उसका बहुगुणा शिकार भी बन रहे थे और कांग्रेस के बाकी नेताओ की तरह उसमे खुद उनका हाथ भी था। 'दिल्ली' को विधानसभा के चुनाव मे २८० सीटें जीतने की उम्मीद थी; बहुगुणा के बारे मे कहा जाता है कि वह जान-बूझकर चाहते थे कि कांग्रेस २१६ से ज्यादा सीट न जीते, ताकि पार्टी कमजोर रहे और सत्ता की बागडोर बहुगुणा के हाथों मे बनी रहे। अगर उसके बाद उन्हें हटाने की कोशिशें की गयी तो 'उनका गुट' विद्रोह कर देगा और कांग्रेस का मंत्रिमंडल टूट जायेगा। 'दिल्ली' के लिए इस तरह की बात महसूस करना और बहुगुणा के लिए ऐसी योजना को पूरा करने की बात सोचना—दोनों ही इस बात के संकेत थे कि दो ही वर्ष बाद पार्टी का क्या अंजाम होने वाला है।

१६७४ मे बिड़ला के सवाल पर जो टक्कर हुई उसमे अलबत्ता सिद्धांत की लडाई का कुछ रंग था। (उत्तर प्रदेश से राज्यसभा के चुनाव के लिए) 'दिल्ली' राजनारायण के खिलाफ एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में के० के० बिड़ला" का समर्थन करना चाहती थी, जो १६७२ में एक और उद्योगपति वी० आर० मोहन के खिलाफ चुनाव हार चुके थे। पहले उन्होंने प्रकाश मेहरोत्रा नामक किसी आदमी का सुझाव रखा था, लेकिन इस पर बहुगुणा ने बड़ी सख्ती से जवाब दिया था, "क्या, शक्कर-सेठो का आदमी ? मैं उसे नही चाहता।" उन्होंने दूसरी पसंद के बारे मे प्रधान मंत्री को अस्पताल से संदेश भेजा, जहाँ वह बीमा पड़े थे।

"के० के० बिड़ला जीत नही सकते।"

"कोशिश कर देखने मे क्या हर्ज है ?" यशपाल कपूर ने कहा जो इस पूरे मामले मे प्रमुख भूमिका निभा रहे थे।

यशपाल कपूर प्रधान मंत्री की मंजूरी लेकर लखनऊ गये और वहाँ उन्होंने विपक्ष के इतने विधायको को तोड़ लिया कि अगर गुप्त मतदान होता तो बिड़ला जीत जाते। लेकिन ऐन वक़्त पर बहुगुणा लौट आये और उन्होंने अपने पहरेदार तैनात कर दिये और मतदान खुला करना पडा। जब बहुगुणा खुद वोट देने गये तो उन्होने सबके सामने राजनारायण को गले लगाकर बड़े तपाक से कहा, "आप तो हमारे दोस्त हैं ही !" बिड़ला हार गये और अगले दिन बहुगुणा ने विधान-सभा मे एक भाषण दिया जिसमें उन्होने कहा कि मैं जो कुछ करना चाहता हूँ उसमें पूँजीपतियों के लिए कोई जगह नही है। यही से उस प्रवृत्ति के साथ टकराव शुरू हुआ जिसका प्रतीक संजय थे और जो समाजवाद-विरोधी, व्यापार तथा कारोबार की खुली छूट और मल्टीनेशनल कपनियो का पक्ष लेने वाली प्रवृत्ति का रूप धारण करती जा रही थी। बहुगुणा ने न केवल इस बात का सबूत दिया था कि वह वामपंथी गुट को ज्यादा पसंद करते हैं, बल्कि 'दिल्ली' के मुकाबले मे अपनी ताकत का भी सबूत दे दिया था। यही आखिरकार उनके पतन की शुरुआत थी, और शायद आगे चलकर कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी की स्थापना की दिशा मे पहला कदम भी यही था।

बहुगुणा का आरोप है, "वह नहीं चाहती थी कि मेरे पाँव वहाँ जमने पायें। गवर्नर अकबर अली खाँ को इसीलिए हटाया गया कि उनके साथ मेरी अच्छी

निभती थी। बी० एन० कुरील[11] को प्रदेश कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन उन्हें भी इसलिए हटा दिया गया कि वह मुझसे झगड़ा करने को तैयार नहीं थे। फिर लक्ष्मीशंकर यादव[12] प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बनाकर भेजे गये; चुनाव के बजाय अब लोग ऊपर से तैनात किये जाने लगे। फिर मोहसिना किदवई[13] आयीं। ठीक है, लेकिन उन्हें चुनवाया क्यों नही जा सकता था? इन्दिराजी धीरे-धीरे 'हम' की जगह 'मैं' का इस्तेमाल करने लगी थीं।"

मैंने बहुगुणा को बताया, "आपके खिलाफ एक शिकायत यह थी कि आप अधिकृत उम्मीदवारों के खिलाफ काम करते थे।"

"तो उन्होंने जाँच कमेटी क्यों नहीं बिठा दी? अजीब बात है। जिसे कहते हैं 'अजीब राज है, न गवाह है, न दलील है, न वकील।'"

बाद में चलकर सत्ता की खींचातानी के इस खेल में तांत्रिक कर्मकांड का भी दखल होने लगा। स्वामी पूर्णानन्द इलाहाबाद के किसी मंदिर के पुजारी थे। वह और उनके दो भाई तांत्रिक हैं, और चौथा भाई आयुर्वेदिक चिकित्सा करता है।

बहुगुणा स्वामी पूर्णानन्द को इलाहाबाद से जानते थे। जब वह मध्य प्रदेश में सतना में जाकर बस गये तो बहुगुणा अकसर वहाँ जाते थे। यशपाल कपूर का कहना है, "हमें उनके वहाँ जाते रहने की खबर तो मिलती रहती थी लेकिन हमने उसको कोई खास अहमियत नही दी। वह निजी तौर पर वहाँ जाते थे और मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री तक को इसकी सूचना नही दी जाती थी। बाद में जाकर तरह-तरह की अफवाहें हमारे कानों तक पहुँचने लगी कि वह श्रीमती गांधी को गिराने के लिए तांत्रिक पूजा करा रहे हैं, ताकि वह खुद प्रधान मंत्री बन सकें।" राजनीति के अखाड़े में जो कुछ हो रहा था उसका यह एक ऐसा पहलू था जिस पर आसानी से यक़ीन नही होता था। यशपाल कपूर का कहना है कि उन्होंने सच्चाई का पता लगाने के लिए खुद अपने एक आदमी चन्द्र स्वामी को पूर्णानन्द से भेद लेने के लिए भेजा। इस तरह उन लोगों को मालूम हुआ कि पूर्णानन्द का छोटा भाई मैहर के एक मशहूर मन्दिर के पास कोई तांत्रिक यज्ञ करा रहा है। बहुगुणा, उनके बेटे विजय और उनके एक दोस्त रामाधार पांडे ने क्रमशः श्रीमती गांधी, संजय और आर० के० धवन पर दुर्भाग्य के प्रकोप का माध्यम बनने का संकल्प लिया था।

बहुगुणा बड़े तिरस्कार के साथ इसकी रत्ती-रत्ती बात से इंकार करते हैं। "एक ही स्वामी है जिसके पास मैं कभी गया हूँ, और वह मेरे परिवार का मित्र है जिसने १९६५ मे मेरी दिल की बीमारी का इलाज किया था। मैंने सतना वाली इस घटना के बारे मे श्रीमती गाधी को लिखा, लेकिन जाहिर है कि उन्होंने कोई जवाब नही दिया।"

यह उस संदेह की एक धुंधली-सी भूमिका थी जो प्रधान मंत्री की कोठी में धीरे-धीरे पनप रहा था कि जस्टिस सिन्हा[14] के साथ मिलकर बहुगुणा श्रीमती गांधी के खिलाफ कोई साजिश कर रहे हैं। कहा जाता है कि बहुगुणा ने जून १९७५ के महत्त्वपूर्ण महीने के पहले हफ्ते में सतना मे किसी पार्टी मे कहा था, "अरे, अब तो वह छः साल के लिए जा रही हैं। कपूर मेरे ऊपर इल्जाम लगाता है कि मैं जज की मिलीभगत से इन्दिरा जी को मिटा देना चाहता हूँ—मैं तो कपूर को मिटा दूंगा।"

और फिर १२ जून १९७५ को फ़ैसला आ गया। उसके बाद बहुगुणा ने जो

कुछ भी कहा या जो कुछ भी किया उसका श्रीमती गांधी पर कोई असर नहीं पड़ा। उनके मन में बहुगुणा के बारे में जो एक गाँठ पड़ गयी थी वह एक ऐसी दीवार की तरह थी जिस पर वह अपना सिर पटकते रहे, पर कुछ नहीं हुआ। उसी साल अगस्त में संजय ने अपने एक साथी को बताया कि बहुगुणा का पत्ता जल्दी ही साफ हो जायेगा और उसके बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति क़ाबू में आ जायेगी। उस वक्त तक संजय अपनी माँ की राय को काफी दावे के साथ ज़ाहिर करने लगा था।

उन दिनों हरचरणसिंह जोश युवक कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वह ५ अगस्त को उत्तर प्रदेश के दौरे पर गये। वहाँ से लौटकर उन्होंने संजय को बताया कि लोग इमर्जेंसी के ख़िलाफ और श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ बातें करते हैं। संजय ने कहा कि बहुगुणा हम लोगों की पीठ में छुरा भोंक रहे हैं। संजय ने जोश से उत्तर प्रदेश के मामलात के बारे में यशपाल कपूर से बात करने को कहा।

जोश ने बहुगुणा को संजय से मिल लेने के लिए राज़ी करने की कोशिश की। बहुगुणा ने जवाब दिया, "मैं पंडितजी और इन्दिराजी के साथ काम कर चुका हूँ। मैं उस लड़के के पास नहीं जा सकता जो मेरे बेटे के बराबर है।" लेकिन किसी तरह जोश उन्हें मारुति के कारख़ाने में ले जाने में कामयाब हो गये। उन्होंने कारख़ाने में टेलीफोन किया और संजय वहाँ मिल गया। टेलीफोन पर बहुगुणा ने अभी इतना ही कहा था कि "संजयजी, मैं मिलना..." कि टेली-फ़ोन कट गया।

जोश का कहना है, "मालूम नहीं ऐसा जान-बूझकर किया गया था या नहीं, लेकिन मैं आधे घंटे तक टेलीफोन मिलाने की कोशिश करता रहा, और उधर से यही जवाब मिलता रहा कि संजय कारख़ाने के अन्दर हैं और वहाँ टेलीफोन नहीं जा सकता।"

२७ नवम्बर को बहुत सुबह मारुति के दफ्तर में बहुगुणा की आखिरकार संजय से मुलाकात हुई। जब वह वहाँ से बाहर निकले तो उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। उसके बाद वह बनावटी जोश दिखाते हुए मुहम्मद यूनुस* को प्रधान मंत्री के विशेष दूत नियुक्त होने की बधाई देने के लिए फूलों का एक बड़ा-सा गुलदस्ता लेकर उनकी कोठी पर गये। लेकिन इसके साथ ही वह एक फ़रियाद लेकर भी गये थे—"यूनुस भाई, आप कुछ नहीं कर सकते?" यूनुस ने लाचारी ज़ाहिर कर दी, और बाद में एक दोस्त से, जो वहाँ पर मौजूद थे, चुपके से कहा, "बहुगुणा को मैं बहुत पसंद करता हूँ, लेकिन अब उनका चलचलाव है, मैं कर ही क्या सकता हूँ? उन्हें यशपाल कपूर को इतना सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए था।"

उसी दिन शाम को बहुगुणा से इस्तीफ़ा दे देने को कह दिया गया।

सबके सामने वह अपने माथे पर शिकन भी नहीं आने देते थे। वह कहते थे, "हाई कमांड ने मुझे उत्तर प्रदेश भेजा था; वह चाहे तो मुझे वापस बुला सकता है। मुझे कोई शिकायत नहीं है।"

लेकिन सेंसर को फ़ौरन हिदायत जारी कर दी गयी थी—"लखनऊ से बहुगुणा के बारे में जो भी खबर आये उसे पहले सेंसर करा लिया जाये। सिर्फ़ घटनाओं के बारे में जानकारी छापी जाये।" मंशा यह थी उनके बारे में कोई भी खबर न छापी जाये। बहुगुणा ने बहुत गुस्से में आकर अपने एक दोस्त से कहा,

"जब चुनाव का वक़्त आयेगा तब देखेंगे कि ये लोग क्या करते हैं। तब मैं इन्हें बता दूंगा।"

बहुगुणा का कहना है कि २६ नवम्बर १९७५ से १८ जनवरी १९७७ तक, जिस दिन श्रीमती गांधी ने चुनाव कराने का ऐलान किया था, उन्होंने उनके पास सात ख़त भेजे जिनमे उन्होंने यह कोशिश की कि अगर श्रीमती गांधी के दिमाग़ मे कोई गलतफहमियाँ हों तो वे दूर कर दी जायें। उन्हें एक भी ख़त का जवाब नहीं मिला। उन्होंने अड़तीस बार श्रीमती गांधी से मिलने की कोशिश की। १८ जनवरी को उन्होने श्रीमती गांधी को एक तार भेजकर चुनावो के दौरान हर तरह की मदद और सहयोग देने की बात कही। इसका भी कोई जवाब नही आया। जब कभी बहुगुणा की उनसे मुलाकात हुई भी और उन्होंने कोई सफाई देने की कोशिश की तो श्रीमती गांधी ने उनसे यही कहा कि दूसरे लोग तो इसकी उल्टी ही बात कहते हैं। बहुगुणा की तरफ़ से सब-कुछ दांव पर लगाकर उस संगठन में बने रहने की यह आखिरी कोशिश थी जिसमे बढ़कर वह यहां तक पहुँचे थे, और श्रीमती गांधी मे अब भी जो चमत्कार बाकी था उसके साथ वह नाता जोड़े रखना चाहते थे। बहुगुणा की हालत संगठन में डूबते हुए, आखिरी सांसें लेते आदमी जैसी थी, या वह राजनीति के उन महारथियो जैसी हठधर्मी थी जो कभी हार नहीं मानना चाहते। बहरहाल, सभी लोग यह महसूस करने लगे थे कि संगठन को श्रीमती गांधी के हाथों में उनकी निजी जागीर की तरहन हीं छोड़ा जा सकता। बहुगुणा ने यहां तक किया कि १४ जनवरी को जब वह कुम मेले मे गयी तो इलाहाबाद के हवाई अड्डे पर वह अपनी पत्नी कमला के साथ लाइन में खड़े रहे। लेकिन जब श्रीमती गांधी ने उन्हें देखा तो अपना मुंह फेर लिया।

दिल्ली में आर० के० धवन की साख यह बनती जा रही थी कि वह इमर्जेंसी का एक खंभा हैं। उन्होंने इस मामले को सुलझाने की बहुत कोशिश की। एक बार जब कमला बहुगुणा ने श्रीमती गांधी से मिलने के लिए समय माँगा तो धवन ने उनके प्राइवेट सेक्रेटरी को टेलीफोन पर ही बता दिया, "मैं जानता हूँ कि प्रधान मंत्री उनसे मिलना नहीं चाहतीं, लेकिन उनसे कह दीजिये कि आ जायें, मैं उन्हें प्रधान मंत्री के पास ले जाऊँगा।" धवन का कहना है कि हाई कमांड के बारे मे इस तरह के किस्से फैलाये जाने के बावजूद कि वहां तक किसी की पहुँच नही थी, उन्होंने अपनी तरफ से उन लोगों को जो प्रधान मंत्री से मिलना चाहते थे इसका पूरा मौका देने की कोशिश की थी।

वहाँ की व्यवस्था कुछ इस तरह काम करती थी—प्रधान मंत्री से मुलाकात एन० के० शेषन् तय करते थे, जो बोलते बहुत नरमी से थे लेकिन अपनी बात से आसानी से टलते नहीं थे। धवन की तरह वह भी श्रीमती गांधी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे पर उनसे सीनियर थे। नेहरू के जमाने से ही वह प्रधान मंत्री के साथ काम करते आये थे। शेषन् सुबह ८ बजे १ सफदरजंग रोड पहुँच जाते और ९ बजे तक प्रधान मंत्री के दफ्तर के लिए रवाना हो जाते। शाम को वह फिर कोठी पर लौट आते। दिन-भर जितने लोगों की ओर से मुलाकात की प्रार्थना आती उनकी सूची प्रधान मंत्री को शाम को दिखायी जाती और उसी बुनियाद पर शेषन् लोगों को मिलने का समय दे देते। श्रीमती गांधी जिनसे मिलना चाहती थीं उनके नाम पर निशान लगा देती थीं। जो अफ़सर मिलना चाहते थे वे पी० एन० धर की मारफत जाते थे, जो प्रधान मंत्री के मुख्य प्राइवेट सेक्रेटरी थे; उनका पद भारत सरकार के सेक्रेटरी के पद के बराबर था। लेकिन तरीक़ा उनके सिलसिले में भी

यही था। उनके नाम भी शेषन् के जरिए ही औपचारिक तौर पर मुलाकात का वक़्त तय करने के लिए भेजे जाते थे। धवन के जिम्मे प्रधान मंत्री की कोठी थी। धवन का कहना है कि मुख्य मंत्री और मंत्री वहाँ पहले से टेलीफोन किये बिना ही आ धमकते थे।

''जब भी प्रधान मंत्री कहीं यात्रा पर जाती थीं तो मैं कभी उनके साथ नहीं गया। जब वह संसद जाती थीं तो संसद-सदस्य उनसे वहीं मिल लेते थे। मैं कभी संसद भवन नहीं गया था। वहाँ मेरी कोई मेज तक नहीं थी। फिर मेरा मुख्य मंत्रियों को उनसे मिलने से रोकने का सवाल ही कहाँ उठता है? सच तो यह है कि उनमें से कुछ लोग मुझसे कहते थे कि मैं शेषन् से कहकर मुलाकात तय करा दूँ। सेक्रेटेरियट के कुछ अफसरों को मुझसे यह शिकायत थी कि मैं जरूरत से ज्यादा लोगों को प्रधान मंत्री से मिला देता हूँ। उनका कहना था कि हर ऐरा-गैरा जाकर मिल आता है। अखबार वालों के आने की बिलकुल मनाही थी। उन्होंने कभी किसी अखबार वाले को यहाँ नहीं आने दिया। सुबह जब वह लोगों से मिलती थीं उस वक़्त अलबत्ता यह मेरे हाथ में होता था कि मैं किसी को लाकर उनसे मिलवा दूँ।''

चुनाव में हार के बाद भी श्रीमती गांधी १ सफ़दरजंग रोड के लॉन पर लोगों से मिलती रहीं; एक बार ऐसा हुआ कि एक आदमी उनके पास पहुँच गया और अपना दुखड़ा रोने लगा कि इमर्जेंसी के दौरान जो धाँधलियाँ हो रही थीं उनके बारे में वह उन्हें चेतावनी देना चाहता था पर वह कभी धवन से आगे तक पहुँच ही नहीं पाया। धवन श्रीमती गांधी के ठीक पीछे खड़े थे, लेकिन वह आदमी उन्हें पहचानता तक नहीं था। शायद उसने प्रधान मंत्री को जो पत्र लिखा था उसका जवाब धवन ने दिया था और जाहिर है, वहीं से उसे धवन का नाम मालूम हुआ होगा।

यह घटना बयान करते हुए धवन ने कहा, ''यह तो रही मेरे रुकावट डालने की बात। मेरी नौकरी यहाँ ऐसी थी कि हर वक़्त मेरे सिर पर तलवार लटकती रहती थी।''

बँधा हुआ तरीक़ा कुछ भी रहा हो, लेकिन इन लोगों की हैसियत ही कुछ ऐसी थी कि उनमें से हर एक के हाथ में कायदे-कानून से कुछ ज्यादा ही ताकत थी। अगर वे किसी पर मेहरबान होना चाहते, या अगर किसी से उनके सम्बन्ध खासतौर पर बहुत अच्छे होते, या अगर कोई लगातार कोशिश करता ही रहता—जैसे बहुगुणा और उनकी पत्नी—तो वे प्रधान मंत्री से उसकी मुलाकात करा सकते थे। लेकिन इसका घटनाओं के क्रम पर नाममात्र को ही असर पड़ता था। इन लोगों को भी यह देखकर चलना पड़ता था कि प्रधान मंत्री का रवैया क्या है। ये लोग ऐसी स्थिति में थे कि यह जान सकते थे कि वह किससे मिलना चाहती हैं और किसे टाले रखना चाहती हैं। इसलिए इसी के अनुसार लोगों की तरफ इनका रवैया भी अलग-अलग रहता था—किसी से बड़े तपाक से मिलते, किसी की बात ध्यान से सुन लेते और किसी को बिलकुल ही नजरअंदाज कर देते, किसी के साथ हर तरह का सहयोग करते। मैं तो नहीं समझती कि कोई भी एक मिसाल ऐसी बता सकता है जब किसी आदमी से, या किसी नेता से श्रीमती गांधी का नाता टूट जाने के बाद उनके निजी दफ़्तर में या सरकारी दफ्तर में काम करने वाले किसी आदमी, उनके किसी दोस्त या उनके किसी साथी ने उनकी राय बदलने में कोई कामयाबी हासिल की हो। असल में हुआ यह कि उनके करीब जो

लोग थे उन्हें जैसे ही यह मालूम होता था कि कोई आदमी उनकी नज़रों से उतर गया है, तो उनमें से हर एक उस आदमी के साथ अपने निजी सम्बन्धों के अनुसार उनके अविश्वास को और ज्यादा भड़काने की या उस अविश्वास को दूर करने की कोशिश करता था। जो लोग अविश्वास को दूर करने के लिए दाँव-पेंच करने की कोशिश करते थे उनका कोई खास असर नहीं होता था क्योंकि आख़िरी फ़ैसला तो श्रीमती गांधी के हाथ में होता था कि वह जिधर चाहें पलड़ा झुका दें।

भारतीय राजनीति के मंच पर सम्बन्धों के उतार-चढ़ाव की दृष्टि से देखा जाये तो एक जमाने में प्रधान मंत्री की कोठी में गुजराल के लिए थोड़ी-बहुत सद्भावना थी। लेकिन उससे भी उन्हें इसके अलावा और कोई फ़ायदा नहीं हुआ कि वह बस इतना मालूम कर लें कि वह कितनी नाराज हैं, या उनका रुख कैसा है। जब किसी आदमी से उनकी नाराजगी या किसी आदमी पर उनका गुस्सा लगातार या खुल्लमखुल्ला जाहिर होता रहता था, तो जो लोग थोड़ा-बहुत असर डाल भी सकते थे वे भी उनकी मर्जी के ख़िलाफ़ रत्ती-भर भी आवाज उठाने से डरते थे। सच तो यह है कि इस डर से कि कहीं वे ख़ुद उनके गुस्से का शिकार न हो जायें या ख़ुद उनकी वफ़ादारी पर शुबहा न किया जाने लगे, वे लोग उसी बात को इस तरह से समझाने की कोशिश करते थे—कभी-कभी जान-बूझकर उसमें नये-नये रंग भरकर—ताकि यह साबित हो जाये कि श्रीमती गांधी जिस नतीजे पर पहुँची हैं वह बिलकुल ठीक है।

अगर श्रीमती गांधी ने पी० एन० हकसर[12] की तरफ़ अपना बदला हुआ रवैया इतने साफ़ तौर पर जाहिर न कर दिया होता, तो उनके एक निकटतम विश्वासपात्र की भी यह मजाल नहीं थी कि वह उनकी गर्दन पकड़कर उन्हें यह चेतावनी दे सके कि वह "फिर कभी संजय, मारुति या परिवार के किसी भी आदमी के ख़िलाफ़ कोई ऐसी-वैसी बात कहने की हिम्मत न करें!"

लेकिन हकसर का जो क़सूर बताया गया वह यह था कि एक सरकारी अफ़सर की हैसियत से वह अपनी ताक़त बढ़ा रहे थे, मंत्रियों तक की कोई परवाह नहीं करते थे, और प्रधान मंत्री के सेक्रेटेरियट को वह राजनीतिक और प्रशासन-सम्बन्धी सभी फ़ैसले लेने का केन्द्र बना देना चाहते थे। लेकिन उनकी चढ़ी कमान उतरी उस वक़्त जब संजय और मारुति के सवाल पर प्रधान मंत्री से उनका झगड़ा हो गया। वह समझते थे कि वह प्रधान मंत्री के इतने करीब हैं कि वह उन्हें सलाह दे सकते हैं कि संजय पर अंकुश लगाना होगा और मारुति का कारोबार बंद कर देना होगा। जाहिर है, हकसर ने यह नहीं समझा था कि वह आग से खेल रहे हैं। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने अपने हाथ बुरी तरह जला लिये। उस वक़्त मुझे बताया गया था कि हकसर मारुति के ख़िलाफ़ इसलिए थे कि बंसीलाल ने कारख़ाने के लिए जो जमीन लेकर दी थी उसमें हकसर की जमीन भी आती थी।

इस तरह हकसर को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

एक कांग्रेसी, जो हकसर की इज़्ज़त अब भी एक ईमानदार, सुलझे हुए और वफ़ादार आदमी की हैसियत से करते हैं, का कहना है, "जो भी ज़रा भी उनकी मर्जी के ख़िलाफ़ कोई बात कहता था उसे उठाकर ताक पर रख दिया जाता था।" सबसे ताज्जुब का बयान तो बिहार में कांग्रेस संगठन के कर्त्ता-धर्त्ता सीताराम केसरी[13] ने, जिनका संजय को राजनीति के मैदान में सबसे पहले ऊँचा उठाने में बहुत बड़ा हाथ है, ठेठ अपनी भाषा में बहुत कमाल की राय दी: "मैं

हकसर के बहुत खिलाफ हूँ लेकिन साहब अव्वल दर्जे का दिमाग़ पाया है उस आदमी ने। अक्लवाला आदमी है। वामपंथी होने के बावजूद अगर जरूरत पड़े तो वह दक्षिणपंथी रास्ता भी दिखा सकता है।" मुझे यकीन नहीं कि हकसर इसे अपनी तारीफ समझेंगे। लेकिन हकसर उन लोगों में से थे—जिनकी मिसाल कांग्रेस वाले देते थे—जो इस बात को साबित करते हैं कि इन्दिरा गांधी किस तरह अपनी राय रखने वाले लोगों को अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करके फेंक देती थीं, और उन्हें रत्ती-भर भी मलाल नहीं होता था।

महाराष्ट्र के राज्यसभा के सदस्य और कांग्रेस में वामपंथी विचारों के पक्ष में बढ़कर बोलने वाले वी० पी० साठे[4] बताते हैं, "हकसर की तरफ उनका रवैया नरम करने में मेरा भी थोड़ा-बहुत हाथ था। लेकिन वह कहती थीं, 'वह नाराज हैं, वह मुझसे जरूर नाराज होंगे।' हकसर कहते, 'जब उन्हें मुझ पर भरोसा ही नहीं तो फायदा क्या!' बाद में वह हकसर को फिर वापस ले आयीं लेकिन एक बार जो रिश्ता टूट गया तो फिर टूट ही गया।" दोनों के बीच निजी स्तर पर सुलह-सफाई कराने की कोशिशों का नतीजा इस बार भी कुछ खास नहीं निकला।

१९७४ तक आते-आते जिन सवालों पर झगड़ा था वे बहुत बड़े थे; समाजवादी विचारों और पूँजीवादी इरादों के बीच तनाव साफ दिखायी देता था। जिस तरह एक-एक करके उनके साथी हटाये जाते रहे उसमें उनके काम करने के निजी ढंग का कुछ दखल जरूर था, लेकिन जिस तरह लोगों को हटाने के लिए चुना जाता था वह एक बहुत बड़ी योजना का हिस्सा बनता जा रहा था।

संविधान की सीमाओं से बाहर सत्ता के केन्द्र की ही तरह नयी चांडाल चौकड़ी की नस्ल भी बहुत पुरानी थी। वह कुछ लोगों की तात्कालिक महत्त्वाकांक्षाओं और इमर्जेंसी की जारज संतान नहीं थी। उसके पूर्वज बहुत माने हुए और नामी थे—'जिंजर ग्रुप', 'सिंडीकेट', 'मिश्रा कंबाइन', 'किचेन कैबिनेट', 'युवा तुर्क', 'हकसर के लोग' और 'कांग्रेस में कम्युनिस्टों का गुट'। फर्क बस इतना है कि इनमें से कुछ, जैसे 'जिंजर ग्रुप' या 'युवा तुर्क' निश्चित विचारधाराओं की बुनियाद पर दबाव डालने वाले गरोह थे जबकि दूसरे लोग ताकत हासिल करने के फेर में थे। इमर्जेंसी के बाद शासन-प्रणाली ने खुद इतना बढ़ावा दिया कि नयी चांडाल चौकड़ी ने, जो सत्ता को मनचाहे ढंग से अपने पक्ष में इस्तेमाल करने की घात में रहती थी, अपना कार्य-क्षेत्र इतना बढ़ा लिया कि जितना उसके लिए मार्ग तैयार करने वालों का कभी नहीं रहा था। इमर्जेंसी मेले में लगे हुए उन आईनों जैसी थी जिनमें आपकी शक्ल या तो भयानक रूप से बड़ी हो जाती है या चौड़ी होकर बिलकुल बौनों जैसी रह जाती है या इतनी टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है कि आप हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। हर संस्था में, हर आदमी में, जो सामान्य परिस्थितियों में ठीक-ठाक काम कर रहा था, अचानक एक विकार पैदा हो गया। लेकिन इस स्थिति पर हँसी नहीं बल्कि रोना आता था। जो पहले देवता लगते थे वे पिशाच दिखायी देने लगे थे. लेकिन श्रीमती गांधी में अपनी बात को ही सही मानने की भावना इतनी प्रबल थी कि जो मुखौटा उन्होंने लगा रखा था वह उन्होंने अपने चेहरे से एक बार भी खिसकने नहीं दिया।

लेकिन इमर्जेंसी के दौरान भी इन्दिरा गांधी अपने मंत्रिमंडल के दो दिग्गजों चह्वाण और जगजीवनराम का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। जब उन्होंने इसकी कोशिश की तो खुद उन्हीं के हाथ जल गये, क्योंकि जगजीवनराम के विद्रोह की

वजह से ही उनका सारा बना-बनाया खेल बिगड़ गया। राजनीति के जिन मोहरों को उन्होंने खुद बनाया था—दिनेशसिंह, गुजराल, बहुगुणा और दूसरे बहुत-से लोग —उनको उन्होंने जब चाहा दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया। दूसरे लोगों को, जिनका सहारा लिये बिना उनका काम नहीं चल सकता था, उन्होंने ज्यादा चालाकी के साथ शक्तिहीन कर देने की कोशिश की। उनका सबसे बड़ा जुआ, जिसकी हर चाल का हिसाब उन्होंने बहुत बारीकी से लगाया था, वह था जो उन्होंने सिंडीकेट के सिलसिले में खेला। जिस समय गिरि के राष्ट्रपति चुने जाने के सवाल ने लगभग एक राष्ट्रीय मतदान का रूप धारण कर लिया था, उन्होंने पार्टी के दो टुकड़े कर देने का जोखिम मोल लिया और मोरारजी देसाई, कामराज, एस० निजलिंगप्पा, अतुल्य घोष और एस० के० पाटिल जैसे दिग्गज नेताओं को मात दे दी। लेकिन उनका समर्थन करने वाले दल के अन्दर जो लड़ाई चल रही थी वह दूसरी ही तरह की थी। जिस समय उनकी ताकत का सभी लोहा मानते थे और वह बिना किसी डर के ऐसा कर सकती थीं, उस वक्त उन्होंने चह्वाण तक के पर ऐसे कतर दिये कि वह उनसे टक्कर लेने की बात सोच भी न सकें। उन्होंने गृह-मंत्रालय से खुफ़िया जानकारी के सारे संगठन निकाल लिये और वित्त-मंत्रालय से राजस्व से सम्बन्धित खुफ़िया जानकारी और बैंकिंग के विभाग अलग कर दिये। जैसाकि बहुगुणा ने इन्दिरा गांधी द्वारा चुनाव कराने के ऐलान और जगजीवनराम के कांग्रेस छोड़ देने के कुछ ही दिन बाद कहा था, "वित्त-मंत्रालय में वित्त-मंत्री के अलावा रह ही क्या गया है? अब बाबूजी (जगजीवनराम) ने जो कदम उठाया है उसकी वजह से ब्रह्मानन्द रेड्डी" को कुछ काम मिल गया है। श्रीमती गांधी ने अपने चारों ओर बौने जमा कर रखे हैं जिनमें से कोई भी सूरमाओं जैसे काम नहीं कर सकता।"

"इन्दिरा जी बहुत घटिया किस्म के सलाहकारों से घिरी हुई थीं," यह बात उनके पक्के वफ़ादार सीताराम केसरी ने भी मानी, जिनका इसके साथ ही दूसरी तरफ़ यह भी कहना है कि "ऐसी कठिन घड़ी में कोई भी चीज मुझे इन्दिराजी का साथ छोड़ने पर मजबूर नहीं कर सकती। मुख्य मंत्री तक बहुत घटिया दर्जे के लोग थे।"

"यह भी तो हो सकता है कि वह जान-बूझकर घटिया लोगों को चुनती हैं ताकि उन्हें ज्यादा अच्छी तरह काबू में रख सकें?" मैंने पूछा।

"लेकिन क्या वे काबू में रहते हैं? मजबूत आदमी से बहुत फायदा होता है, वह कमजोरी का कारण नहीं बनता। अपनी बात का पक्का आदमी जो अपनी पार्टी को जानता हो, वह आखिर वक्त तक आपका साथ देगा, कमजोर आदमी नहीं।"

इन्दिरा गांधी का खयाल था कि चह्वाण ने १९६९ में गिरि के सवाल पर बंगलौर में शुरू ही से उनका पूरा साथ न देकर उनके साथ विश्वासघात किया था। इसके बाद से उन्होंने महाराष्ट्र में चह्वाण की जड़ें काट देने की पूरी कोशिश की, क्योंकि वहीं उनकी ताकत की सारी बुनियाद थी। लेकिन जगजीवनराम?

१९६६ में जब इन्दिरा गांधी और मोरारजी देसाई के बीच टक्कर हो रही थी कि नेता कौन बने, उस समय द्वारकाप्रसाद मिश्र ने जगजीवनराम को सलाह दी थी, "जब तक मुझे यह मालूम न हो जाये कि कौन जीतने जा रहा है तब तक कुछ बोलो नहीं।" लेकिन जब वह जीत गयीं और मंत्रिमंडल बनने लगा तो जगजीवनराम फरियाद लेकर मिश्रा के पास पहुँचे।

उन्होंने बहुत दुःखी होकर कहा, "उस्ताद," वह मिश्राजी को इसी तरह सम्बोधित करते थे, "मुझे जलील किया जा रहा है। वह मुझे श्रम-मंत्री बना रही हैं और मेरा दर्जा भी बहुत नीचा रखा जा रहा है।"

"गुरू," मिश्राजी ने भी जगजीवनराम को हमेशा की तरह ही सम्बोधित किया और तसल्ली देते हुए कहा, "अब हालत बदल गयी है। चलने दो।"

"क्या मैं आपकी नजरों में भी इतना गिर गया हूँ?" जगजीवनराम इतने परेशान थे कि द्वारकाप्रसाद मिश्र ने श्रीमती गांधी को टेलीफोन किया और उन्हें इस बात के लिए राजी कर लिया कि उनका मंत्रालय बदल दें और मंत्रियों को ऊँचा या नीचा दर्जा देने की पद्धति खत्म करके सबके नाम वर्णानुक्रम के अनुसार दिये जायें।

द्वारकाप्रसाद मिश्र ने बताया, "उनकी असली अनबन तब शुरू हुई जब जगजीवनराम कांग्रेस के अध्यक्ष भी बन गये और वह दोनों पदों पर बने रहना चाहते थे। यहीं से उन पर से श्रीमती गांधी का भरोसा उठने लगा।"

तारकेश्वरी सिन्हा ने, जो नेहरू के मंत्रिमंडल में नौजवान खूबसूरत वित्त उप-मंत्री थीं और कई वर्ष तक पार्टी के अन्दर श्रीमती गांधी का खुलकर विरोध करती रही थीं, बताया : "पंडित नेहरू के जमाने में केन्द्र में कांग्रेस पार्टी में भावनात्मक एकता थी। लेकिन राज्यों में बहुत मजबूत दलबंदियाँ थीं। नेहरू की जगह मोरारजी के प्रधान मंत्री बनाने का सवाल कभी उठा ही नहीं और सभी लोग शास्त्रीजी के पक्ष में सहमत थे। जब श्रीमती गांधी आयीं उस वक्त तक हम लोग मोरारजी देसाई के पक्के समर्थक बन चुके थे। जब वह हार गये, उसके बाद भी हमने उनका साथ नहीं छोड़ा। मुझे यह बात सबके सामने मानने में तनिक भी संकोच नहीं है कि केन्द्र में दलबंदी हम लोग लाये। लेकिन श्रीमती गांधी में बहुत रवादारी थी। मैं उनका इतना खुल्लमखुल्ला विरोध करती थी, लेकिन उन्होंने कांग्रेस संसदीय दल के चुनाव में कभी दखल नहीं दिया—मेरा इतने बड़े बहुमत से जीतना ही इस बात का सबूत है कि उन्होंने कोई दखल नहीं दिया। लेकिन सितम्बर में उनको हटाने के लिए दाँव-पेंच शुरू हो गये थे। उन्हें इस बात की भनक मिल गयी कि कांग्रेस संसदीय बोर्ड की मीटिंग में यह प्रस्ताव पास किया जाने वाला है कि उनमें लोगों के विश्वास का अंदाज लगाने के लिए वोट लिया जाये, लेकिन ऐन वक्त पर कामराज नहीं आये। उसी वक्त से श्रीमती गांधी के दिल में डर बैठ गया। इसी के बाद से उन्होंने सत्ता के हथियार इस्तेमाल करना शुरू किये और पार्टी के पूरे तंत्र पर भी कब्जा जमाने की कोशिशें शुरू कीं।"

१९६९ में जब कांग्रेस के बाकी सभी नेताओं ने मिलकर सिंडीकेट बना लिया और पार्टी के दो टुकड़े कर दिये, उस वक्त जगजीवनराम ने डटकर इन्दिरा गांधी का साथ दिया। बंगला देश की लड़ाई के वक्त वह उनके रक्षा-मंत्री थे और उनकी कुछ सबसे अधिक गौरवशाली घड़ियों में वह उनके साथ थे। लेकिन उन दोनों का सहयोग कुछ उखड़ा-उखड़ा रहा। सच तो यह है कि लोग यहाँ तक सोचने लगे थे कि १९७१ के चुनाव में अपनी शानदार जीत से इन्दिरा गांधी को जो ताकत मिली थी उसका फायदा उठाकर वह जगजीवनराम को मंत्रिमंडल से हटा देंगी। लेकिन वह बहुत चालाक और सतर्क थीं। जगजीवनराम को संसद के लगभग अस्सी सदस्यों का समर्थन प्राप्त था; अगर वह अपना हाथ खींच लेने का फ़ैसला करते तो संसद में उनका विशाल बहुमत बहुत घट जाता—५२४ सदस्यों के सदन में ३६१ से घटकर केवल २८१ सदस्य उनके साथ रह जाते। श्रीमती

गांधी ने जगजीवनराम को अलग तो नहीं किया लेकिन बिहार में उनकी जड़ काटने की लगातार कोशिशें करती रहीं—उन्होंने उनकी टक्कर पर ऐसे दूसरे नेताओं को सहारा दिया जिनका हरिजनों में कुछ असर हो सकता था। धीरे-धीरे हालत यह हो गयी कि जगजीवनराम का हर जाना-पहचाना मित्र या समर्थक यह जान गया कि उसे चुनाव लड़ने का टिकट, या कोई पद, या कोई फ़ायदे का काम तभी मिल सकता है जब वह जगजीवनराम से मुंह मोड़कर श्रीमती गांधी का साथ देने लगे।

जगजीवनराम ने कोशिश तो बहुत की लेकिन जोड़-तोड़ के मामले में श्रीमती गांधी की जो निपुणता थी उसका मुकाबला वह नहीं कर सके। ऐसा भी नहीं है कि वह चुपचाप बैठे अपने सिर पर तलवार गिरने का इन्तज़ार करते रहे हों। लेकिन जैसा कि वह कहते हैं, "मैं कोई संत-महात्मा नहीं हूँ, मैं राजनीति का आदमी हूँ और मुझे चुप रहना पड़ा।"

लेकिन जब १२ जून १९७५ का फ़ैसला आया तो सवाल उभरकर सामने आ गया। शायद जगजीवनराम ने सोचा कि वह श्रीमती गांधी को उन्हीं की चाल से मात दे देंगे। जब १ सफ़दरजंग रोड पर कांग्रेस के सारे नेता जमा हुए और किसी ने भय प्रकट किया, किसी ने सन्देह प्रकट किया, किसी ने कायरता का सबूत दिया और किसी ने भरपूर उत्साह दिखाया, उस वक़्त जगजीवनराम चुप नहीं बैठे रहे। वह लगातार सबको सुनाकर बार-बार यही दोहराते रहे, "अदालत का फ़ैसला हो या न हो, वह हमारी नेता हैं।" श्रीमती गांधी भी जानती थीं कि जगजीवनराम के रवैये से पासा पलट सकता है। दोपहर को साढ़े बारह बजे जब सब लोग जाने लगे तो उन्होंने जगजीवनराम को अलग बुलाकर कहा, "आप ज़रा रुक जाइये।" जगजीवनराम ने पूरी तरह उनका समर्थन करने का वचन दिया।

पी० एन० सिंह, जो दिल्ली मेट्रोपोलिटन कौंसिल के सदस्य हैं और दिल्ली की राजनीति में चन्द्रशेखर के ग्रुप के आदमी समझे जाते हैं, १६ जून को जगजीवनराम से मिलने गये। कांग्रेस संसदीय दल की मीटिंग १८ जून को यह फ़ैसला करने के लिए होने वाली थी कि अब क्या किया जाये। पी० एन० सिंह ने उनसे कहा, "आप लोग कुछ कीजिये, नहीं तो पार्टी ख़त्म हो जायेगी।"

जगजीवनराम ने जवाब दिया, "अब न मेरी उम्र इस लायक है और न मेरी सेहत ही ऐसी है कि मैं कुछ कर सकूं, लेकिन अगर चन्द्रशेखर पहल करें तो मैं उनका साथ दूंगा।"

पी० एन० सिंह का कहना है, "तब तक हम लोग सत्तर संसद-सदस्यों से बात कर चुके थे। अगर बाबूजी अपने अस्सी आदमी लेकर आ जाते तो हम लोग और भी कई लोगों को साथ ले आते और श्रीमती गांधी के इस्तीफ़े की मांग करते।"

चन्द्रशेखर को भी कुछ संकोच था। पहली बात तो यह कि उन्हें जगजीवन-राम पर भरोसा नहीं था। वह कई बार कई सवालों पर साथ देने का वादा कर चुके थे, लेकिन जब वक़्त आता था तो पीछे हट जाते थे। लेकिन इसके अलावा नैतिकता की भी एक बहुत बारीक बात थी जिसका चन्द्रशेखर को बहुत ध्यान था। "मैं अदालत के फ़ैसले के सवाल पर श्रीमती गांधी से टक्कर नहीं लेना चाहता। मैं तो नीति के और आर्थिक सवालों की बुनियाद पर उनसे लड़ना चाहता हूँ।"

इन्दिरा गांधी के प्रधान मंत्री बने रहने के पक्ष में पार्टी के फ़ैसले

जगजीवनराम ने भी साथ दिया और संसद में भी वह उनका समर्थन करने वाले बहुमत के साथ रहे। लेकिन एक बात के बारे में उनके विचार बिलकुल साफ थे कि अगर कोई अंतरिम प्रधान मंत्री चुना जाये तो वह स्वर्णसिंह या कमलापति त्रिपाठी न हों (जिनके बारे मे श्रीमती गांधी समझती थी कि उनसे कोई खतरा नही है), बल्कि मन्त्रिमंडल मे सबसे पुराने मंत्री होने के नाते वह खुद, यानी जगजीवनराम, चुने जायें। बहरहाल यह सवाल कभी उठा ही नही, लेकिन श्रीमती गांधी इस बात को भूली नही; उनकी राय में यह उनके साथ जगजीवनराम का एक और विश्वासघात था।

फिर २६ जून १९७५ को इमर्जेंसी आयी।

जब सुबह ६ बजे उन्हे प्रधान मंत्री की कोठी पर कैबिनेट की मीटिंग के लिए बुलाया गया तो मंत्रिमंडल के दूसरे लोगों की तरह उन्हें भी बताया गया कि इमर्जेंसी लागू कर दी गयी है; विपक्ष के नेता और चन्द्रशेखर भी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। जब वह ६ कृष्ण मेनन मार्ग पर अपनी कोठी पर लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि सीमा सुरक्षा दल के सिपाहियों की टोपियो मे लगी हुई लाल कलगियाँ सुबह की धूप में हर तरफ चमक रही हैं और घर के बाहर सी० आई० डी० के लोग तैनात है। ये लोग घर के अन्दर भी दनदना रहे थे और जगजीवन-राम के साथ काम करने वाले निजी तथा सरकारी सभी कर्मचारी सहमे हुए थे। जगजीवनराम को अपनी कोठी मे नजरबंद तो नही किया गया था लेकिन उनके हर कदम पर निगरानी जरूर रखी जा रही थी। उनसे मिलने सबसे पहले बहुगुणा आये। चन्द्रशेखर की गिरफ्तारी की खबर सुनकर पी० एन० सिंह ने सबसे पहला काम यह किया कि बाबूजी को टेलीफोन किया : "मैं समझता था कि वह भी गिरफ्तार कर लिये गये होगे।"

जब वह जगजीवनराम से मिले तो बाबूजी की आँखें डबडबा आयी। उन्होंने भोजपुरी मे कहा, "जिस लोकतंत्र के लिए हम लडते आये थे वह खत्म हो गया। अब सारी जिम्मेदारी तुम नौजवानों के कंधों पर है।"

इस डर से उनकी बातें टेप-रेकार्ड पर दर्ज न कर ली जायें उन्होंने टेलीफोन का चोगा उतारकर नीचे रख दिया था।

जगजीवनराम दाँव हार चुके थे। वह समझ गये थे कि अगर उन्होने इस वक्त इस्तीफ़ा दिया तो इसे सरकशी समझा जायेगा और उन्हें भी पकडकर जेल में बंद कर दिया जायेगा। वह बहुत बूढे हो चुके थे, और राजनीति के सारे दाँव-पेंच जानते हुए यह खतरा मोल लेने को तैयार नही थे।

लेकिन उस दिन रात को उन्होंने अपनी डायरी मे लिखा : आज का दिन बड़ा मनहूस दिन है।

टिप्पणियाँ

१. द्वारकाप्रसाद मिश्र मध्य प्रदेश की राजनीति की एक विवादग्रस्त हस्ती रहे हैं। मुख्य मंत्री की हैसियत से उनके उत्थान और पतन से उस राज्य में राज-नीतिक दलबंदियो का फ़ैसला होता रहा है। इस समय वह छिहत्तर वर्ष के हैं और इन्दिरा गांधी की हार के बाद उन्हें बचाने की लडाई में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए वह दिल्ली वापस आ गये हैं।

२. लंबे क़द, छरहरे बदन और विनीत स्वभाव के सौम्य मोहन कुमारमंगलम भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्डधारी सदस्य थे; बाद में वह कांग्रेस मे चले आये और श्रीमती गांधी के मंत्रिमंडल में इस्पात तथा खान-मंत्री बने। वह बहुत चतुर राजनीतिक सिद्धांतवेत्ता थे। १९७३ मे अट्ठावन वर्ष की आयु मे एक विमान-दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी।

३. यशवंतराव बलवंतराव चह्वाण ६५ वर्ष के हैं और महाराष्ट्र की राजनीति मे बहुत ताक़तवर माने जाते हैं। केन्द्र मे नेहरू, शास्त्री और इन्दिरा गाधी के मन्त्रिमंडलों मे सत्ता का भार सँभालते हुए भी अपने राज्य मे उन्होने अपना असर बनाये रखा है। उनके भारी-भरकम शरीर को देखकर ऐसा लगता नही पर वह समस्याओं का बडी गहरी सूझ-बूझ के साथ विश्लेषण करने की योग्यता रखते हैं, और जब वह बोलना शुरू करते हैं तो उनके विषयों का विस्तार बहुत व्यापक होता है। २० मार्च १९७७ को कांग्रेस का पतन होने के समय तक वह विदेश-मंत्री थे।

४. चन्द्रशेखर का जन्म १९२७ मे हुआ था। दुबला-पतला शरीर, चेहरे पर घनी दाढ़ी, धधकती ज्वाला जैसा जोश। १९६६ में कांग्रेस के अंदर उन्होंने इन्दिरा गाधी के समर्थन में उन मूलगामी परिवर्तन चाहने वालों का दल बनाया जिन्हें युवा तुर्क कहा जाता है। वह पूर्वी उत्तर प्रदेश के रहने वाले हैं और **यंग इंडियन** नामक पाक्षिक पत्रिका के संपादक हैं। २५ जून को जयप्रकाश नारायण के साथ वह एक कांग्रेसी की हैसियत से गिरफ़्तार किये गये थे। हाल ही मे जब जनता पार्टी बनी तो वह उसके अध्यक्ष चुने गये।

५. बंसीलाल हरियाणा के एक अक्खड़ जाट हैं। उनके नाक-नक़्शे की कठोर सुन्दरता उनके चश्मे से भी छुप नही पाती। मुख्य मंत्री की हैसियत से उनका राजनीति चलाने का जो ढंग था उसके दो उद्देश्य थे—हरियाणा के लिए और स्वयं अपने लिए देश में एक स्थान बनाना। अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए वह बिना किसी संकोच के हर संभव साधन इस्तेमाल करने को तैयार रहते हैं; उन्हें सिद्धांतों से चिढ़ है और उनके रास्ते में जो भी आदमी या जो भी विचार बाधा बनता है उसे वह जबर्दस्ती कुचलकर खत्म कर देना बेहतर समझते हैं। उनकी अंधी वफ़ादारी भी उतनी ही ख़तरनाक हो सकती है जितनी कि उनकी पूरी दुश्मनी। बंसीलाल २० मार्च १९७७ तक केन्द्रीय सरकार मे रक्षा-मंत्री थे।

६. इलाहाबाद हाई कोर्ट के जस्टिस जगमोहनलाल सिन्हा ने १९७१ मे रायबरेली से लोकसभा के चुनाव के दौरान इन्दिरा गांधी को भ्रष्ट आचरण का दोषी ठहराया था। (यह फ़ैसला उन्होंने उनके विरोधी राजनारायण की उस याचिका पर दिया था जिसकी सुनवाई में चार साल का समय लगा।) सिन्हा ने जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा १२३ (७) के अन्तर्गत "उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार के गज़ेटेड अफ़सरों" को इस्तेमाल करने को और उसी अधिनियम की उसी धारा १२३ (७) के अन्तर्गत "चुनाव मे अपनी जीत की संभावनाओ को बढाने के लिए प्रधान मंत्री की सेक्रेटेरियट में ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी के पद पर काम करने वाले भारत-सरकार के गज़ेटेड अफ़सर श्री यशपाल कपूर की सहायता प्राप्त करने" को भ्रष्ट आचरण ठहराया, और इन्हीं दो कारणों से उन्हें छः वर्ष तक कोई भी निर्वाचित पद ग्रहण करने के अधिकार से वंचित कर दिया। बाद में जस्टिस

सिन्हा ने उन्हें सुप्रीम कोर्ट में अपील करने का मौका देने के लिए अपने फ़ैसले की तामील बीस दिन के लिए स्थगित कर दी।

उस चुनाव में इन्दिरा गांधी ने राजनारायण को एक लाख से ज्यादा वोटों से हराया था और कांग्रेस ने उनके नेतृत्व में शानदार विजय प्राप्त की थी। कांग्रेस ने लोकसभा की कुल ५२४ सीटों में से ३६१ सीटें जीती थीं।

७. सैंतालीस-वर्षीय चन्द्रजीत यादव बहुत मुखर राजनीतिज्ञ हैं। वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख सदस्य थे, जिसे छोड़कर वह कांग्रेस में आये और कांग्रेस के अन्दर वामपंथी दल की एक प्रमुख हस्ती और उसके साथ ही कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी बन गये। २० मार्च १९७७ तक वह केन्द्रीय सरकार में इस्पात तथा खान-मंत्री थे।

८. अशोक मेहता अपनी मोटे शीशे वाली ऐनक और बे-तरतीब बढ़ी हुई दाढ़ी में सचमुच बुद्धिजीवी लगते हैं। वह सोशलिस्ट पार्टी से कांग्रेस में आये और उसके प्रमुख आर्थिक सिद्धांतवेत्ता बन गये। शुरू में चह्वाण और इन्दिरा गांधी के साथ उनका बहुत घनिष्ठ राजनीतिक गँठजोड़ था। धीरे-धीरे उनका मोह भंग होता गया और अन्त में वह संगठन कांग्रेस के साथ चले गये।

९. मजदूर नेता वाराहगिरि वेंकटगिरि केन्द्रीय मंत्री और उप-राष्ट्रपति के पदों पर रहे और १९६९ में भारत के राष्ट्रपति चुने गये। वह इन्दिरा गांधी के गुप्त समर्थन से एक निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार संजीव रेड्डी के खिलाफ खड़े हुए थे, जिनका समर्थन पार्टी के पुराने नेता कर रहे थे। श्रीमती गांधी ने मतदाताओं को नारा दिया, "अपने अन्तःकरण के अनुसार वोट दीजिये!" और गिरि की जीत ने साबित कर दिया कि श्रीमती गांधी को कितना भरपूर समर्थन प्राप्त था।

१०. उत्तर प्रदेश की ताल्लुकेदारी कालाकांकर के बावन-वर्षीय राजा दिनेशसिंह से भी भारत के दूसरे सामंतों की तरह १९६९ में उनका गुजारा-भत्ता और दूसरे विशेषाधिकार छीन लिये गये। इस उद्देश्य से संसद में जो कानून बनाया गया था उसने और बैंकों के राष्ट्रीयकरण ने आम जनता के नेता की हैसियत से श्रीमती गांधी की ख्याति में बहुत योगदान किया। १९६९ में उन्होंने दिनेशसिंह को विदेश मंत्री के उच्च पद पर नियुक्त किया, लेकिन बाद में उन्हें इस पद से हटा दिया। मई १९७७ में वह जनता पार्टी में चले गये।

११. कांग्रेस पार्टी में फूट गिरि के चुनाव के सवाल पर पड़ी थी। लेकिन जिन सवालों पर असली झगड़ा था वे थे: श्रीमती गांधी की पूरी तरह अपना नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश, दक्षिणपंथियों और वामपंथियों का टकराव और कांग्रेस को एक नया रूप देने का घोषित उद्देश्य। बड़े-बड़े नेताओं का दल, जिसे सिंडीकेट कहा जाता था, टूटकर अलग हो गया और उसने अपनी संगठन कांग्रेस अलग बना ली, जिसके बारे में वे दावा करते रहे कि वही असली कांग्रेस है। लेकिन पार्टी के अन्दर, और पूरे देश में, बहुमत ने इन्दिरा गांधी का साथ दिया।

१२. संजीव रेड्डी, जो इस समय ६४ वर्ष के हैं, कांग्रेस के अध्यक्ष और लोकसभा के अध्यक्ष रह चुके हैं; १९६९ में वह राष्ट्रपति का चुनाव लड़े थे। पूरा चक्र घूम जाने के बाद अब वह भारत के राष्ट्रपति चुने गये हैं।

१३. मोरारजी देसाई गुजरात के रहने वाले हैं और सादे जीवन तथा शुद्ध अति-नैतिक आचरण में विश्वास रखते हैं। उन्होंने नेहरू के साथ काम किया और

उनके मंत्रिमंडल में वित्त-मंत्री रहे और इन्दिरा गांधी के मंत्रिमंडल में १९६७ में उप-प्रधान मंत्री बने। उनके और इन्दिरा गांधी के बीच लगातार बहुत पुरानी और गहरी अदावत चली आ रही थी। इन्दिरा गांधी ने १९६९ में उन्हें अपने मंत्रिमंडल से निकाल दिया। वह संसद में संगठन कांग्रेस के नेता रहे और १९७४ में विधानसभाएँ भंग कराने और 'सम्पूर्ण क्रांति' के आंदोलन के सवालों पर जयप्रकाश नारायण के साथ हो गये। वह २५ जून १९७५ को गिरफ्तार किये गये और उन्नीस महीने बाद जब वह बाहर आये तो उन्होंने अपना वह उद्देश्य पूरा कर लिया, जिसकी साध उन्होंने कभी नहीं छोड़ी थी। आखिरकार १९७७ के चुनाव में इन्दिरा गांधी तथा उनकी पार्टी को बुरी तरह पराजित होते देखकर और जनता पार्टी की सहमति से प्रधान मंत्री के रूप में अपनी स्थिति मजबूत पाकर उनके मन को सन्तोष हुआ। मोरारजी देसाई इस समय इक्यासी वर्ष के हैं और हमेशा की तरह अब भी सादा जीवन बिताते हैं, बस उन्हें स्विट्जरलैंड की चाकलेट खाने का बड़ा चाव है। जेल में वह सिर्फ मेवा खाते थे और दूध पीते थे।

उनके अब तक के शासनकाल में अभी तक अतिनैतिक आचरण की प्रवृत्तियाँ दिखायी नहीं दी हैं, जैसी कि आशा की जाती थी; ऐसा लगता है कि उम्र के साथ उनमें कुछ नरमी आ गयी है।

१४ यशपाल कपूर का जन्म १९२९ में हुआ था। वह उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में पेशावर के रहने वाले हैं, जो अब पाकिस्तान में है। वह १९४५ में दिल्ली आये थे। यहाँ अखबार बेचा करते थे और सुबह-शाम सब्जी मंडी की एक दुकान पर तरकारियाँ बेचते थे। दिन में वह एक विशेष पुलिस अधिकारी की हैसियत से काम करते थे। बीते दिनों को याद करके वह कहते हैं, "१९४६ में मैं सेवादल का सक्रिय सदस्य बन गया। मैं एक झंडा और बिगुल लेकर चलता था और बिगुल बजाकर लोगों से कांग्रेस के लिए चार-चार आना चंदा जमा करता था।" अपनी बेहद मुस्तैदी और काम करने के उत्साह की बदौलत आखिरकार यशपाल कपूर स्टेनोग्राफर और टाइपिस्ट की हैसियत से नेहरू के पास तक पहुँच गये जिनको वह अपना हीरो मानकर पूजते थे। १९५९ से उन्होंने श्रीमती गांधी के साथ काम किया और जब वह प्रधान मंत्री बन गयीं तो कांग्रेस के काम-काज के सिलसिले में उनके ग़ैर-सरकारी दूत की हैसियत से वह बड़ी तेजी से शिखर पर पहुँच गये। उनका पद अंडर-सेक्रेटरी का था। जब से वह राज्यसभा के सदस्य बने उसके बाद से उनका असर घटता गया और उनकी जगह उनके रिश्ते के भाई आर० के० धवन ने ले ली।

१५. सत्तावन-वर्षीय इन्दरकुमार गुजराल के परिवार में राजनीति की परम्परा रही है। उनके पिता पाकिस्तान की संसद के सदस्य थे और देश के बँटवारे के बाद इसके बदले में उन्हें पंजाब की विधानसभा में सीट दी गयी। वह लाहौर में कम्युनिस्टों के छात्र-संगठन ऑल-इंडिया स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन के सदस्य थे। फिर वह कांग्रेस में भरती हुए और 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान जेल गये। दिल्ली में वह नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी के वाइस-प्रेसिडेंट के पद का सहारा लेकर उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ते गये, और कला-जगत् के माध्यम से उन्होंने नेहरू तथा इन्दिरा गांधी के साथ सम्पर्क स्थापित किया। उनके प्रसिद्ध कलाकार भाई सतीश गुजराल पहले कलाकार

थे जिनसे १९५६-५७ में नेहरू और इन्दिरा ने बैठकर अपने चित्र बनवाये। जब सतीश ने इन्दिरा का चित्र बनाकर पूरा किया तो उन्होंने पंडित नेहरू से यह आशंका भी प्रकट की कि शायद वह उसे अपने घर की किसी दीवार पर लगाना पसन्द न करें क्योंकि उनके कई मित्रों ने यह टीका की थी कि उस चित्र में सतीश ने इन्दिरा को बहुत कठोर और निर्मम दिखाया था। नेहरू ने कहा था, "कलाकार का काम सच्चाई पर परदा डालना नहीं बल्कि उसे उजागर करना है। मैं समझता हूँ कि तुमने जो भी किया है ठीक किया है।"

१६. विद्याचरण शुक्ल—उम्र पचास साल, कद लंबा, स्वभाव में अहंकार। वह राजनीतिक वातावरण के बीच ही पले-बढ़े हैं। उनके पिता रविशंकर शुक्ल नेहरू के जमाने में मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री थे, और उनके बड़े भाई श्यामाचरण शुक्ल इन्दिरा गांधी के शासनकाल में अपने पिता की तरह ही मध्य प्रदेश के मुख्य-मंत्री बने। विद्याचरण शुक्ल श्रीमती गांधी की सरकार में रक्षा-उत्पादन के राज्य-मंत्री बने। राज्य में और केन्द्र में दोनों भाइयों ने अपने बीच सत्ता का बंटवारा इस सफ़ाई के साथ कर रखा था कि श्रीमती गांधी उनमें से एक को उसके उच्च पद से हटाने की बात सोचने लगीं। परन्तु इमर्जेंसी लागू होने के बाद उन्होंने विद्याचरण शुक्ल को सूचना तथा प्रसारण-मंत्रालय का भार सौंपने की जरूरत महसूस की, ताकि प्रचार के माध्यम का ज्यादा सख्ती के साथ इस्तेमाल किया जा सके, जैसा कि गुजराल नहीं कर पा रहे थे या नहीं करना चाहते थे। महिलाओं के प्रति उनके आचार-व्यवहार के कारण उनके नाम वी० सी० शुक्ल की व्याख्या 'वेरी चालू शुक्ल' के रूप में भी की जाती है।

१७. राजेन्द्रकुमार धवन सरगोधा जिले के चनयोट नामक स्थान के रहने वाले हैं, जो अब पाकिस्तान में है। वह बहुत चुस्त, बने-सँवरे रहने वाले ४०-वर्षीय नौजवान हैं। उन्होंने देश के विभाजन की सारी मुसीबतें झेली हैं। १९४७ में वह अपने परिवार के साथ शरणार्थी की हैसियत से दिल्ली आये और यशपाल कपूर के परिवार के साथ रहने लगे। १९५७ में वह ऑल-इंडिया रेडियो में स्टेनोग्राफर की नौकरी करने लगे। संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा पास कर लेने के बाद उन्हें रेलवे में नियुक्त किया गया था लेकिन इसके बजाय वह श्रीमती गांधी के निजी सहायक के रूप में काम करने लगे, जब वह न्यूयार्क विश्व प्रदर्शनी प्राधिकरण की अध्यक्षा थीं। जब वह सूचना तथा प्रसारण-मंत्री बनीं उस समय भी वह उनके निजी सहायक के रूप में काम करते रहे और आगे चलकर उनके एडिशनल प्राइवेट सेक्रेटरी बन गये। इस हैसियत से उन्होंने लगभग वही ख्याति प्राप्त कर ली जो किसी जमाने में यशपाल कपूर की थी; इमर्जेंसी के दौरान वह उनके दाहिने हाथ बन गये थे। धवन कहते हैं, "आदमी के जीवन का सबसे अच्छा समय तेईस और चालीस वर्ष के बीच होता है। वह समय मैंने यहाँ बिताया है।" उन्होंने २१ मार्च को सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और अब भी जबकि इन्दिरा गांधी एक साधारण नागरिक मात्र रह गयी हैं, वह उनके लिए ही काम करते हैं।

१८. आनंद भवन इलाहाबाद में नेहरू परिवार का आलीशान मकान था जिसे श्रीमती गांधी ने राष्ट्र को अर्पित कर दिया था।

१९ तीन मूर्ति भवन अंग्रेजों के जमाने में कमांडर-इन-चीफ के रहने की आलीशान कोठी थी, जो भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू का निवास-स्थान बना। अब वहाँ एक संग्रहालय है जिसे रोज सैकड़ों पर्यटक बड़ी उत्सुकता से देखने आते हैं। बाहर इसके अहाते में नेहरू संग्रहालय और नेहरू स्मारक पुस्तकालय है।

२०. विजयलक्ष्मी पंडित अपने भाई जवाहरलाल नेहरू से बारह वर्ष छोटी थी और वह अपनी इस रूपवती बहन को प्यार से 'नान' कहते थे। श्रीमती पंडित १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मंत्रिमंडल में मंत्री बनी। वह इंग्लैंड, अमरीका और सोवियत संघ में भारत की पहली महिला हाई कमिश्नर तथा राजदूत, संयुक्त राष्ट्रसंघ की जनरल असेंबली की पहली महिला अध्यक्ष और महाराष्ट्र की गवर्नर रहीं। उनका प्रतिभाशाली जीवन-वृत्त धीरे-धीरे क्षीण पड़ता गया और अपनी भतीजी के प्रति एक कटुतापूर्ण द्वेष तक सीमित रह गया। प्रधान मंत्री बनने के बाद इन्दिरा गांधी ने उन्हें अपनी माँ कमला के साथ किये व्यवहार के लिए कभी क्षमा नहीं किया। इन्दिरा बीती हुई बातों को कभी भूलती नहीं। विजयलक्ष्मी पंडित को राज-नीतिक दृष्टि से बेकार बैठे रहना पड़ा और अंत में उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लेने का फैसला कर लिया। १९७७ में वह इन्दिरा-विरोधी लहर के दौरान एक बहुत कठिन समय में नये विपक्ष का समर्थन करने के लिए फिर राजनीति के मैदान में उतरी, जिससे इस आंदोलन को बहुत नैतिक सहारा मिला।

२१ ललितनारायण मिश्र छोटे कद के मोटे और गोलमटोल आदमी थे, जिनकी गर्दन चरबी की मोटी-मोटी तहों में बिलकुल खो गयी थी। उन्हें बिहार में जगजीवनराम का असर कम करने के लिए प्रमुखता दी गयी थी। ललित-नारायण मिश्र उन लोगों में से थे जिन्होंने मारुति को बढ़ावा देने का भरसक प्रयत्न किया। वह माँ और बेटे दोनों ही के बहुत निकट थे और उनकी अंतरंग मंडली के एक सदस्य बन गये थे। २ जनवरी १९७५ को, जब समस्तीपुर में एक बम-विस्फोट में उनकी हत्या कर दी गयी उस समय वह केंद्रीय सरकार में रेल-मंत्री थे। उसके बाद से श्रीमती गांधी यह बताने के लिए कि उन्हें और उनके मित्रों को मिटा देने के लिए लगातार साजिशें की जा रही थीं, हमेशा ललितनारायण मिश्र की हत्या की मिसाल देती थीं।

२२. जगजीवनराम का जन्म १९०८ में आरा (बिहार) में हुआ था। १९४६ से वह लगातार केंद्र में मंत्री रहे हैं। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था : "शायद ही कोई मंत्रालय ऐसा होगा जिसका मुझे अनुभव न हो!" खुलेआम श्रीमती गांधी का समर्थन करते रहने के बावजूद वह हमेशा उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकते रहे हैं, क्योंकि संसद में तथा हरिजनों के बीच उनकी जो साख है और उन्हें जो समर्थन प्राप्त है उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उनकी ख्याति यह है कि वह बहुत चतुर हैं। उन्होंने कांग्रेस पार्टी के अंदर श्रीमती गांधी के खिलाफ विद्रोह करके २ फ़रवरी १९७७ को कांग्रेस छोड़ दी, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी बनी, जो बाद में ५ मई १९७७ को जनता पार्टी में विलीन हो गयी। इस समय वह केंद्रीय सरकार में रक्षा-मंत्री हैं।

जगजीवनराम के गहरे काले चमकते हुए चेहरे के साथ ही उनमें

बहुत ही शांत तथा संतुलित विवेक का जो गुण है, उसके कारण लोग कभी उनके बारे में सही अनुमान नहीं लगा पाते और अपने सबसे गंभीर संकट की घड़ी में श्रीमती गांधी तो चकमा खा ही गयीं। फिर भी जगजीवनराम को प्रधान मंत्री का वह पद न मिल सका जो वह चाहते थे।

२३. नवल टाटा का संबंध टाटा के व्यापारिक घराने से है।

२४. नंदिनी सत्पथी अभी केवल सैंतालीस वर्ष की हैं। सांवले रंग और सुडौल नाक-नक्श वाली इस नाजुक आकर्षक महिला की मुस्कराहट में बिजली जैसी चमक है और राजनीति के क्षेत्र में अनथक काम करने की शक्ति है। वह पहले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य थी, लेकिन १९५२ में कांग्रेस में आ गयीं, और बढ़ते-बढ़ते श्रीमती गांधी की अनन्य विश्वासपात्र बन गयी, सूचना तथा प्रसारण-मंत्रालय में उप-मंत्री और फिर राज्य-मंत्री बनीं। १९७४ में वह उड़ीसा की मुख्य मंत्री बनीं, लेकिन अततः वह इन्दिरा गांधी की विश्वासपात्र बनी रहने की लड़ाई हार गयी और १६ दिसंबर १९७६ को उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। वह कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी के संस्थापक सदस्यों में से थीं।

२५. राष्ट्रपति भवन के सामने बोट क्लब के मैदान में जो विशाल मीटिंग की गयी थी उसमें लगभग पंद्रह लाख आदमी प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी का भाषण सुनने आये थे। उस दिन पहली बार मंच पर उनके दोनों बेटे राजीव और संजय उनके साथ मौजूद थे। श्रीमती गांधी ने कहा, "मैंने बचपन से अपने देश की सेवा की है और अपने जीवन की अंतिम सांस तक करती रहूँगी। असली सवाल यह है कि देश उन समाजवादी नीतियों पर चलेगा या नहीं जो चार साल पहले शुरू की गयी थी।" उन्होंने यह भी कहा कि देश के भीतर और बाहर दोनों ही जगह ऐसी शक्तियां हैं जो उन्हें मिटा देने के लिए काम कर रही है।

२६. बुढ़ापा ७४-वर्षीय जयप्रकाश नारायण की विद्रोह की भावना को क्षीण नहीं कर सका है। वह मार्क्सवादी आस्था लेकर कांग्रेस पार्टी में आये और उसमें विद्रोह का झंडा बुलंद करके राममनोहर लोहिया, यूसुफ मेहरअली, मीनू मसानी, अशोक मेहता तथा अच्युत पटवर्धन के साथ मिलकर उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। यह वह समय था जब वह चाहते थे कि नेहरू, जो उनसे तेरह वर्ष बड़े थे, कांग्रेस से नाता तोड़कर समाजवादी आंदोलन को मजबूत करें। नेहरू ने इंकार कर दिया। वेस्टमिनिस्टर प्रणाली की ब्रिटिश संसदीय पद्धति से, राज्यसत्ता की भूमिका से और कल्याणकारी राज्य से भी क्रमशः मोह-भंग होने के कई दौर आने के बाद जयप्रकाश के अंदर धधकती हुई राजनीतिक ज्वाला मंद पड़ती गयी। गांधीवाद तक वह बहुत चक्करदार मार्ग से पहुंचे, परंतु इसी रूप में उन्होंने अपनी एकमात्र सफल लड़ाई लड़ी—अंतिम लड़ाई, 'संपूर्ण क्रांति' की लड़ाई जिसकी बदौलत अंततोगत्वा इन्दिरा गांधी की शक्तिशाली शासन-सत्ता का पराभव हुआ।

२७. फख़रुद्दीन अली अहमद अगस्त १९७४ से फ़रवरी १९७७ तक भारत के राष्ट्रपति थे। इस पद पर काम करते हुए ही दिल का दौरा पड़ने से उनकी मृत्यु हो गयी। १९६९ में कांग्रेस की फूट के दौरान वह इन्दिरा गांधी के पक्के समर्थक और बाद में उनकी सरकार में मंत्री रहे। उन्होंने जितने अध्यादेशों पर हस्ताक्षर किये उतने आज तक किसी राष्ट्रपति ने नहीं किये

थे। उन्होंने कैम्ब्रिज में शिक्षा पायी थी और उनमें पुराने जमाने के सारे आकर्षण बाकी थे। वह संगीत और कला के प्रेमी थे और उन्होंने तथा जीवन के उत्साह से भरपूर उनकी बेगम आबिदा ने राष्ट्रपति भवन में तरह-तरह के रोचक लोगों का आतिथ्य-सत्कार किया।

२८. हेमवतीनंदन बहुगुणा का जन्म २५ अप्रैल १९१७ को उत्तर प्रदेश मे हुआ था। वह इन्दिरा गांधी से सात महीने बड़े हैं। वह ६ नवम्बर १९७३ को उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बने और ३० नवम्बर १९७५ को इस पद से इस्तीफा दे दिया।

२९. निरेसठ-वर्षीय देवकान्त बरुआ असम के समाजवादी विचारों वाले कांग्रेसी हैं। वह फीरोज गांधी के मित्र थे। उनका दिमाग एक विषय से इतनी जल्दी दूसरे विषय पर पहुंच जाता है मानो उनकी बौद्धिकता भटक रही हो, किसी चीज से भाग रही हो। कांग्रेस में उनके साथी कहते हैं,"उनके साथ पार्टी की किसी समस्या पर बहस करने के लिए पहले एक दर्जन असंबंधित विषयों के बारे में उनके भटकते हुए फुटकर विचारों को सुनना पड़ता है।" बरुआ केन्द्रीय सरकार में १९७१-७३ मे पेट्रोलियम तथा रसायन-मंत्री थे। १९ अक्तूबर १९७४ को वह कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और उन्हें अपनी अध्यक्षता में अपनी आँखों के सामने एक साम्राज्य को बिखरते हुए देखना पड़ा, जब मार्च १९७७ के चुनाव मे कांग्रेस की बुरी तरह हार हुई। परन्तु वह स्वयं अपनी सीट से संसद का चुनाव जीत गये।

३०. सिद्धार्थशंकर रे का जन्म १९२० में हुआ था। १९७१ में वह पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री बने। इमर्जेंसी के पूरे दौरान-भर वह इन्दिरा गांधी के पक्के समर्थक रहे, लेकिन उन्हें कांग्रेस के अन्दर वामपंथी गुट के साथ सम्बद्ध किया जाता रहा; इस गुट के बारे में श्रीमती गांधी को पक्का सन्देह हो गया था कि वह उन्हें हटाना चाहता है। कांग्रेस की हार के बाद उन्होंने जिस तरह खुलकर श्रीमती गांधी की आलोचना की उससे कुछ लोगों को उन पर राज-नीतिक अवसरवादिता का सन्देह होने लगा।

३१. कामराज नाडर कांग्रेस के लौह-पुरुष कहलाते थे। वह तमिलनाडु के मुख्य मंत्री थे, परन्तु राष्ट्रीय राजनीति पर अपनी छाप उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में डाली। १९६६ में उन्होंने प्रधान मंत्री के पद के लिए मोरारजी के खिलाफ इन्दिरा गांधी के पक्ष मे समर्थन जुटाने में प्रमुख भूमिका अदा की। वह बहुत अक्खड़ और सीधे-सादे आदमी थे। उन्होंने सहज बुद्धि पर आधारित राजनीति की प्रणाली आरम्भ की। वह बहुत कम बोलते थे, पर उनके चुप रहने में भी एक तीखापन रहता था। वह जवाहरलाल नेहरू के बहुत प्रशंसक थे, लेकिन इन्दिरा गांधी का समर्थन उन्होंने केवल भावनाओं के कारण नहीं किया। वह समझते थे कि प्रधान मंत्री बनने के बाद वह उनकी बात मानेंगी और उनके असर में रहेंगी। यह जानकर उन्हें बहुत आघात पहुंचा कि वह इसके लिए तैयार नहीं थीं। २ अक्तूबर १९७५ को उनका देहान्त हो गया।

३२. उमाशंकर दीक्षित अब छिहत्तर वर्ष के है। एक साधारण व्यक्ति के रूप मे नेहरू परिवार मे उनका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा था। राष्ट्रीय स्तर की राजनीति मे उन्हें इन्दिरा गांधी अपनी उस रणनीति की एक चाल के रूप मे लायी कि उनके चारों ओर उनके वफादार लोग रहें जो उनकी हाँ-में

मिलाते रहे। उनके राजनीतिक जीवन का चरम बिन्दु वह था जब वह १९७३-७५ मे केन्द्रीय सरकार के गृह-मंत्री रहे। जैसे ही वह यह समझने लगे कि वह सचमुच कुछ महत्त्व रखते हैं, श्रीमती गाधी ने उन्हें जहाज़रानी तथा परिवहन का मंत्री बना दिया और उसके बाद कर्नाटक का गवर्नर बनाकर बिलकुल महत्त्वहीन कर दिया। एक शिथिल बूढे आदमी के रूप मे जब वह दिल्ली मे सत्ताधारी थे तो वह अपनी बहू पर पूरा भरोसा करते थे।

३३ साठ-वर्षीय राजनारायण, जो एक झक्की सोशलिस्ट के रूप मे मशहूर हैं, आखिरकार शिखर तक पहुँच ही गये। उनकी बातों पर कभी कोई संजीदगी से ध्यान नही देता था, जब तक कि वह इन्दिरा गाधी के खिलाफ अपनी चुनाव याचिका का मुकद्दमा जीत नही गये और अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें उस घटनाक्रम के लिए श्रेय नही मिल गया जिसने भारतीय राजनीतिक जीवन के पूरे ताने-बाने को ही बदल दिया। वह ऑल-इंडिया सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष थे और इस समय केन्द्रीय जनता सरकार मे स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के मत्री है। वह खाते जी भर कर है और कुश्ती लडने का उनका प्रिय मनोरजन उनके हृष्ट-पुष्ट शरीर मे पूरी तरह मेल खाता है। उनकी आदत है कि वह अपने विचार इस तरह पेश करते है कि दूसरे आदमी को सोचने की प्रेरणा कम मिलती है और उसका मन-बहलाव अधिक होता है। जब इन्दिरा गाधी हारी तो लोग कहते थे, "वह इनसे कैसे हार गयी!" इन्दिरा गाधी राजनारायण से नही हारी, वह खुद अपने आपसे हार गयी।

३४. भीष्म पितामह महाभारत मे कौरवों और पाडवों दोनो ही के सलाहकार थे। दोनों की लडाई मे वह कौरवो के साथ थे, लेकिन उन्हें सभी शक्तिशाली आदमी मानते थे और उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नही कर सकते थे।

३५ कमलापति त्रिपाठी पडित है और देखने मे लगते भी हैं—माथे पर बड़ा-सा तिलक और सारा स्वभाव तथा आचार-व्यवहार ब्राह्मणो जैसा। इस कारण लोग उनका जिस तरह आदर करते है उसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है। लेकिन कोई भी उत्तर प्रदेश के इस पुराने नेता जैसा चतुर नही हो सकता—केवल इन्दिरा गाधी को छोडकर जो उन्हें भी अपने इशारों पर नचाती रही। वह १९७१ से १९७३ तक उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री रहे और १९७३ मे केन्द्रीय सरकार मे परिवहन तथा जहाजरानी के मत्री बने। जगजीवनराम के कांग्रेस छोडकर चले जाने के बाद एक वयोवृद्ध अनुभवी कांग्रेसी नेता के रूप मे उनकी साख फिर जम सकी, जब इन्दिरा गाधी को अपने पुराने परखे हुए साथियों का सहारा लेने की जरूरत पडी।

३६ नारायणदत्त तिवारी इस समय इक्यावन वर्ष के हैं। वह इमर्जेंसी के दौरान उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बने और इस बात के लिए बदनाम रहे कि वह संजय के इशारे पर चलते थे। पढने मे वह बेहद तेज थे। कानून के प्रथम वर्ष मे वह प्रथम श्रेणी मे सर्वप्रथम रहे, कूटनीति मे एम० ए० की प्रथम वर्ष की परीक्षा मे वह प्रथम श्रेणी मे सर्वप्रथम रहे, और कानून की अन्तिम वर्ष की परीक्षा भी उन्होंने प्रथम श्रेणी मे सर्वप्रथम रहकर पास की। १९४२ मे वह कांग्रेस आंदोलन मे थे लेकिन १९४८ मे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मे चले गये। १९५७ मे वह प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य चुने गये और विपक्ष के नेता रहे। वह फिर कांग्रेस मे आ

गये और बहुगुणा के मंत्रिमंडल में वित्त-मंत्री बने और उसके बाद स्वयं मुख्य मंत्री बन गये।

३७. शंकरदयाल शर्मा ने लिंकंस इन्न से बार-एट-ला की परीक्षा पास की है। इस समय वह ५६ वर्ष के हैं। वह १९६८-७२ में कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी रहे; १९६९ की लड़ाई के दौरान ऐन वक्त पर वह इन्दिरा गांधी की तरफ आ गये और इसलिए उनका पद बचा रहा। १९७२ में वह कांग्रेस के अध्यक्ष बने। वह बहुत चतुर और समझदार आदमी है और बातचीत बहुत अच्छे ढंग से करते हैं। उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष के पद को प्रधान मंत्री के सुर-में-सुर मिलाने की स्थिति से बदलने की कोई कोशिश नहीं की।

३८. सरदार वल्लभभाई पटेल नेहरू के मंत्रिमंडल में एकमात्र ऐसे आदमी थे जिनके गिर्द एक विरोधी गुट संगठित हो सकता था। परन्तु उन्होंने अपने मन को समझा लिया कि जनता के बीच वह कभी नेहरू जितने लोकप्रिय नहीं हो सकते। नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के प्रसंग में काम करते थे, पर सरदार की दृष्टि अपने देश की परिस्थितियों पर केन्द्रित रहती थी। वह बहुत दृढ़, व्यावहारिक और यथार्थनिष्ठ गृह-मंत्री थे। आदर्शवादी बातों से वह अधीर हो उठते थे। उन्होंने देसी-रजवाड़ों की रियासतों का बड़ी सुगमता के साथ भारतीय संघ में विलय कराया।

३९. एक करोड़ शरणार्थियों का पेट भरने, युद्ध में पकड़े गये पाकिस्तानी सेना के ९०,००० सैनिकों की देखभाल, और अर्थतंत्र पर उसके प्रभाव के फलस्वरूप कीमतें बढ़ी, जिसकी पहले से ही आशंका थी। भारत की इस अभूतपूर्व विजय पर जब लोगों में उल्लास की लहर अपने शिखर पर थी उस समय श्रीमती गांधी ने चेतावनी दी थी कि "हमें इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

४०. कृष्णकुमार बिड़ला का सम्बन्ध बिड़ला के व्यापारिक घराने से था।

४१. उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी नेता।

४२. उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी नेता।

४३. उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी नेता।

४४. जगमोहनलाल सिन्हा का जन्म १६ मई १९२० को अलीगढ़ में हुआ था। वह बरेली में वकालत करते थे; वहीं जिले के सरकारी वकील नियुक्त हुए और फिर सिविल तथा सेशन जज की हैसियत से न्यायिक सेवा में आ गये।

वह २५ अगस्त, १९७२ को इलाहाबाद हाईकोर्ट के स्थायी जज नियुक्त हुए और १९८२ में रिटायर होंगे। उनके बाल सफेद है, उनकी मुद्रा गंभीर है और उनमें अदम्य साहस है।

४५. मुहम्मद यूनुस एक असाधारण आदमी है जिनमें कई गुण एक साथ मिल गये हैं। उनकी जवानी राजनीति में बीती और फिर भारतीय विदेश सेवा में भरती होकर वह कई देशों में भारत के राजदूत रहे। इस समय उनकी उम्र ६१ वर्ष की है। उनका जन्म वर्तमान पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के एबटाबाद शहर में हुआ था। वह खान अब्दुल गफ्फार खां के सेक्रेटरी रहे (जिनकी बेटी की शादी यूनुस के बड़े भाई के साथ हुई है)। वह अंग्रेजों के खिलाफ खुदाई खिदमतगार आन्दोलन के बहुत पक्के और जोशीले समर्थक रहे।

यूनुस जवाहरलाल नेहरू के साथ १९३८ से १९४१ तक रहे और

उनके मित्र, अनुयायी और प्रशंसक बन गये; यह सम्बन्ध अगली पीढ़ी तक, इन्दिरा गांधी के पति फीरोज गांधी के साथ भी बना रहा। यूनुस को 'भारत छोड़ो' आंदोलन में चार वर्ष की सजा हुई और पठानों के इतिहास पर उनकी किताब पर पाबंदी लगा दी गयी। वह अरब देशों की समस्याओं के विशेषज्ञ हैं; मुंहफट आदमी हैं लेकिन बात पते की कहते हैं और गोलियों की बौछार जैसे उनके बोलने के ढंग के पीछे वैयक्तिक तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता के लिए उनकी लगभग भावुक चिंता छिपी रहती है। वह ६ अक्तूबर १९७५ को श्रीमती गांधी के विशेष दूत बने, 'समाचार' की स्थापना का श्रेय उन्हीं को है; वह गुट-निरपेक्ष देशों की समाचार एजेंसियों के समूह की समन्वय समिति के अध्यक्ष चुने गये थे।

४६. चौंसठ-वर्षीय परमेश्वरनारायण हक्सर मूलतः बैरिस्टर थे; बाद में वह विदेश सेवा में रहे, परन्तु उनकी प्रतिष्ठा इस क्षेत्र में उनके काम के कारण उतनी नहीं है जितनी कि अपनी निजी उपलब्धियों के कारण—उनकी गम्भीर विवेकपूर्ण बौद्धिकता मूलगामी परिवर्तन के विचार-क्षेत्र में क्रियाशील रही। १९६७ में वह उन्नति करके प्रधान मंत्री के प्रमुख प्राइवेट सेक्रेटरी के सर्वोच्च पद पर पहुंच गये और १९७१ तक की प्रवृत्तियों पर अपना प्रबल प्रभाव डालते रहे, जब उन्हें प्रधान मंत्री के साथ मतभेद हो जाने के कारण अपना पद छोड़ना पड़ा। ३ जनवरी १९७५ को योजना आयोग के उपाध्यक्ष के रूप में एक बार फिर वह सत्ता के क्षेत्र में आये। परन्तु श्रीमती गांधी के साथ उनके सम्बन्ध फिर कभी वैसे हार्दिक न हो सके।

४७. सीताराम केसरी बिहार के ५८-वर्षीय कांग्रेसी नेता हैं जिनकी आंखों में चमक और तेवर में बांकपन है। लेकिन वह उन ठोस लोगों में से हैं, जो बुनियादी तौर पर संगठन के काम में निपुण हैं और अपनी चाल-ढाल और हाव-भाव से सोलह आने पेशेवर राजनीतिज्ञ लगते हैं। वह १९३४ से बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य हैं; १९६४-६७ में वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पर्यवेक्षक, १९६७-७० में लोकसभा के सदस्य और १९७१ के बाद से राज्यसभा के सदस्य रहे। उनके डील-डौल को देखकर उनके किसी क्रांतिकारी हलचल के साथ सम्बन्धित होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, पर वह १९३१-३३ में रांची षड्यंत्र कांड के सिलसिले में जेल गये थे और उसके बाद कांग्रेस आंदोलन के दौरान तीन बार और जेल हो आये हैं।

४८. बसंतराव पुरुषोत्तम साठे महाराष्ट्र से राज्यसभा के सदस्य हैं। वह ५२ वर्ष के हैं, लंबा कद, नीली आंखें, सुन्दर चेहरा। वह आर्थिक सुधार के बहुत मुखर समर्थक हैं। महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साथ जिन पुरुषों तथा स्त्रियों का सम्बन्ध रहता है उनके चरित्र का मूल्यांकन वह राजनीतिक नहीं बल्कि दार्शनिक विश्लेषण के आधार पर करते हैं। वह कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी और संविधान में संशोधनों का सुझाव देने के लिए बनायी गयी स्वर्णसिंह-समिति के सदस्य थे।

४९. कासु ब्रह्मानन्द रेड्डी, जो इस समय ६८ वर्ष के हैं, १९६४ से १९७१ तक आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। वह 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दिनों में जेल जा चुके हैं और खेल-कूद में गहरी रुचि रखते हैं। वह केन्द्र में दृढ़ता और कार्यकुशलता की ख्याति अपने साथ लेकर आये। जनवरी १९७४ में वह

२. वामपंथियों से डर

सिद्धार्थशंकर रे ने, जो उस समय पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री थे, स्वीकार किया, "२६ जून को संजय ने सब-कुछ अपने हाथ में संभाल लिया। उसके बाद मैं कहीं नहीं था। मेरा कोई संपर्क नहीं रह गया और इमर्जेंसी के बाद तो मैं बाहर निकालकर फेंक दिया गया। वे लोग नहीं चाहते थे कि इन्दिरा तक किसी की पहुँच हो।"

"लेकिन आप तो इमर्जेंसी के पक्ष में थे," मैंने उन्हें याद दिलाया।

"हाँ, था तो, लेकिन मैं सिर्फ तीन महीने के लिए इमर्जेंसी चाहता था। इमर्जेंसी का ऐलान किये जाने से पहले प्रधान मंत्री के पास बहुत-सी रिपोर्टें आ चुकी थीं, जिनसे पता चलता था कि कानून और व्यवस्था की स्थिति बहुत गंभीर है। मेरे दिमाग में यह बात बिलकुल साफ थी कि इमर्जेंसी बहुत थोड़े समय के लिए होनी चाहिए और उसे सिर्फ इस काम के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए कि देश में जो उन्माद पैदा हो गया था वह ठीक हो जाये। लेकिन जल्द ही हम लोगों में कोई संबंध ही नहीं रह गया।"

महान देशभक्त चित्तरंजनदास[1] के नाती ५७-वर्षीय सिद्धार्थ शंकर रे की नेहरू परिवार के साथ तीन पीढ़ियों से मित्रता चली आ रही थी, और साथ ही उनकी पृष्ठभूमि भी कांग्रेस में रहने के कारण एक जैसी ही थी। सच तो यह है कि २५ जून तक वह उन इने-गिने लोगों में थे जो 'इन्दिरा' से—वह उन्हें इसी तरह संबोधित करते थे—न केवल प्रधान मंत्री की हैसियत से बल्कि एक साथी की तरह भी मिल सकते थे। उनका कद इतना लंबा है कि ज्यादातर लोगों से ऊँचे दिखायी देते हैं, भारी-भरकम शरीर, कंधे कुछ झुके हुए, आँखों पर मोटा चश्मा—सिद्धार्थशंकर रे में एक प्रतिभाशाली और संपन्न व्यक्ति का सहज आत्म-विश्वास था। वह और उनकी पत्नी माया रे[2] दोनों ही बैरिस्टर हैं; उस समय तक उनकी पत्नी भी संसद की सदस्य थीं। दोनों श्रीमती गांधी के घर पर बड़ी बेतकल्लुफी के साथ खाने पर खुलकर बातें कर सकते थे।

एक राजनीतिक नेता के रूप में इन्दिरा गांधी की सिद्धार्थशंकर रे सचमुच प्रशंसा करते थे, और बाद में उन्होंने स्वयं ही कहा, "हम लोग उनकी एक तरह से पूजा करते थे। लेकिन जरूरत पड़ने पर वह खरी बात कहने में चूकते भी नहीं थे, कम-से-कम १९७४ तक तो यही बात थी। उन्होंने महसूस किया कि मारुति के लिए संजय को जिस जमीन की जरूरत थी वह तिकड़म से उसे दिलवाकर

बंसीलाल ने उसे अपने चंगुल में कर रखा है। लेकिन जब उन्हें उसके कारोबार के बारे में और ज्यादा बातें मालूम हुई तो उन्होंने सोचा कि इन्दिरा को सचेत कर देना चाहिए। जाहिर है कि वह उनसे मिले। संजय भी वहां मौजूद था। रे ने एक-एक करके सारी बातें गिनायी और उनके बारे में प्रधान मन्त्री से बात की। फिर वह संजय की ओर मुड़े।

"तुम्हें ऐसा नही करना चाहिए, यह बुरी बात है, गलत बात है," उन्होंने कहा।

"लेकिन हर व्यापारी यही करता है," संजय ने तड़ाक से जवाब दिया।

"हर व्यापारी प्रधान मंत्री का बेटा या नेहरू का नाती नहीं होता।"

नेहरू का हवाला संजय को अच्छा नहीं लगा होगा, क्योंकि वह अपने नाना के विचारों को ब्रह्मा की लकीर नहीं मानता। लेकिन बाद में उसका जो रवैया सामने आया उससे तो पता चलता है कि वह अपनी मां के कुछ साथियों की, और खुद अपनी मां की राय को भी कोई खास महत्व नहीं देता था। एक बहुत बड़े अफसर ने इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा, "वह हर बात में बहुत समझदारी का सबूत देती थीं, लेकिन जैसे ही मारुति की या संजय की बात आती थी उनको अचानक न जाने क्या हो जाता था।"

लेकिन संजय की हरकतों के बारे में अपनी राय साफ-साफ जाहिर कर देने की वजह से १९७४ में सिद्धार्थशंकर रे को वह सब-कुछ नहीं भुगतना पड़ा जो हक्सर को पहले भुगतना पड़ा था। उनके पारिवारिक संबंध बहुत पुराने और मजबूत थे और इसके अलावा उस वक्त तक सत्पथी-यादव-रे-बरुआ के गँठजोड़ के पक्ष में पार्टी के अंदर वामपंथी समर्थन भी काफी मजबूत था। और फिर जयप्रकाश नारायण का आंदोलन भी खतरनाक रूप धारण करता जा रहा था, इसलिए यह जरूरी था कि पार्टी के अंदर साथियों के बीच सहयोग की भावना बनाये रखी जाये, और वे श्रीमती गांधी की तरफ रहे। इस मौके पर इन्दिरा गांधी पार्टी के अंदर लोकतान्त्रिक समर्थन प्राप्त करने की मजबूरी को नजरअंदाज कर देने का खतरा मोल नहीं ले सकती थीं, भले ही अपने वामपंथी सपने को त्याग देने का अंतिम रूप में फैसला कर भी लिया था। लेकिन इन सब बातों से वह यह महसूस करने लगी थीं कि वह चारों ओर से घिरती जा रही हैं। उन्होंने अमरीका के दबाव की काट करने के लिए १९७१ में रूसियों के साथ मित्रता की संधि भी कर ली थी।

जब निक्सन के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट हेनरी किसिंजर चुपके-से इस्लामाबाद के रास्ते पीकिंग गये थे, उस वक्त उन्होंने इन्दिरा को चेतावनी दी थी कि बांगलादेश के सवाल पर भारत पाकिस्तान पर हमला न करे। उन्होंने यह भी कहा था कि चीन पाकिस्तान की मदद करेगा, लेकिन अमरीका भारत की मदद को नहीं आयेगा। डी० पी० धर, जो मास्को में भारत के राजदूत रहने के बाद उसी वर्ष जून में लौटकर आये थे, फौरन मास्को गये और अगस्त १९७१ में आश्वासन लेकर वापस आ गये। इसके कुछ ही दिन बाद सोवियत विदेश-मन्त्री आंद्रेई ग्रोमिको मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत पहुँच गये।

श्रीमती गांधी के एक राजनीतिक साथी का मत है, "पहले यह भावना बन चुकी थी कि हमारा कोई मित्र नहीं है। लेकिन बात इसकी उल्टी ही निकली।"

युद्ध में भारत की जीत के बाद और १९७२ के विधानसभा के चुनावों के बाद जब भारत के मतदाता पूरी तरह इन्दिरा गांधी के वश में आ चुके थे, उनकी

साख देश के भीतर भी और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी आसमान छूने लगी थी। लेकिन उनकी लोकप्रियता के साथ लोगों की आशाएँ भी बढ़ती जा रही थीं। ऐसा नहीं था कि उन्हें इस बात का अंदाज़ा नहीं था कि कौन-से काम सबसे पहले करने हैं। बहुत बाद में १५ नवंबर १९७५ को उन्होंने कहा था, "निजी तौर पर मैं महसूस करती हूँ कि आज दुनिया के ज़्यादातर हिस्से में तरक़्क़ी का जो पूरा ढंग अपनाया जा रहा है वह भारत के लिए तरक़्क़ी का गलत ढंग है, और यह कि अगर हम इस ढर्रे पर चले, चाहे वह उद्योग कायम करने के क्षेत्र में हो या चिकित्सा के क्षेत्र में या शिक्षा के क्षेत्र में, तो हम कभी भी देश के सबसे गरीब लोगों तक नहीं पहुँच सकेंगे। आज समृद्ध देशों में कम-से-कम लोगों पर ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा ख़र्च किया जा रहा है। और हम देखते हैं कि हमारे देश में भी बहुत-कुछ यही तरीका अपनाया जा रहा है।"

१९७२ के बाद भूमि-सुधार, शहरी ज़मीन-जायदाद की हदबंदी, खेती की आमदनी पर टैक्स और इसी तरह के कुछ ऐसे दूसरे उपायों के सिलसिले में लगातार कुछ कदम उठाने का कार्यक्रम बनाया गया था, जिसकी सीधी चोट पैसे वालों पर और उन लोगों पर पड़ती थी जिन्हें समाज में कुछ विशेषाधिकार मिले हुए थे।

प्रख्यात अर्थशास्त्री ए० एम० ख़ुसरो का कहना है, "मुझे हमेशा यह महसूस होता रहा है कि श्रीमती गांधी १९६६ से ही आर्थिक क्षेत्र में किसी भी अमली रास्ते को मानने और उसके बारे में कोई फ़ैसला करने के बारे में बहुत झिझकती रही हैं। कुछ लोग इसकी वजह यह बताते थे कि उनके अपने दिमाग़ में कोई ख़ास आर्थिक ढाँचा नहीं है, और शायद जब कोई रास्ता सुझाया जाता है तो उसके बारे में उन्हें यह भरोसा नहीं हो पाता कि वह सही है भी या नहीं। चाहे वह अनाज की कीमतों की नीति का सवाल हो या औद्योगिक नीति का, इजारेदार घरानों पर नियंत्रण रखने का सवाल हो या खाद्यान्न के क्षेत्रों का सवाल, मैंने तो यही देखा कि बड़े-से-बड़े अधिकारियों के दिमाग़ में कोई साफ़ चित्र नहीं था; किसी तरह काम चला लेने का रवैया बाकी था। शायद इसका संबंध प्रधान मंत्री के स्तर पर किसी प्रकार के संकोच के साथ रहा हो।"

चंद्रशेखर ने कहा, "वह अपने स्वभाव से ही हमेशा उदार और गरीब आदमी के पक्ष में रही हैं।" और इसके बाद ही उन्होंने उनका यह कठोर मूल्यांकन भी किया, "लेकिन उनमें दृढ़ विश्वास की कमी है। जब पैसे वालों से टक्कर लेने का सवाल आता है तो वह सीधी टक्कर लेने से हिचकिचा जाती हैं।"

भारत के पुराने देसी रजवाड़ों को अंग्रेज़ों ने जो विशेषाधिकार दिये थे और उनके लिए जो भत्ते बाँधे थे और जो ज़िम्मेदारी भारत-सरकार ने अपने ऊपर ले ली थी, उसे ख़त्म कर देने के सवाल पर चह्वाण के साथ श्रीमती गांधी का जो झगड़ा हुआ उसमें भी यह बात बिलकुल साफ़ नज़र आती थी। वह विशेषाधिकार ख़त्म कर देने के पक्ष में तो थीं लेकिन गुज़ारा-भत्ता बंद करने को तैयार नहीं थीं। जून १९६७ में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में "पुराने रजवाड़ों के गुज़ारे-भत्ते को छोड़कर अन्य सभी विशेषाधिकारों" में कटौती करने के बारे में जब एक औपचारिक प्रस्ताव रखा गया, तो चह्वाण ने मोहन धारिया से इसमें एक संशोधन का प्रस्ताव पेश करवा दिया कि गुज़ारा-भत्ता भी बंद कर दिया जाये। चह्वाण ने बाद में लाचारी के साथ कहा, "कोई कर ही क्या सकता था। प्रधान मंत्री बाद में आयीं। इस संशोधन को स्वीकार करने के लिए प्रस्ताव

पेश कर दिया गया और जाहिर है जिन लोगों को उसमें दिलचस्पी थी वे रुके रहे। जो लोग कांग्रेस में गहरी दिलचस्पी नही रखते थे वे चले गये।"[१]

यह बात तो चह्वाण ने भी मानी कि दूसरे मंत्रियों की तरह हालांकि प्रधान मंत्री भी यह महसूस करती थीं कि जल्दी मचाकर उन्हे यह प्रस्ताव स्वीकार करने पर 'मजबूर' कर दिया गया था, लेकिन "वह उसके खिलाफ नहीं थी।" जब इस विधेयक के बारे मे १९७० में राज्यसभा मे बहस हुई उस वक़्त उन्होंने यह दलील दी कि जिस 'ढंग से' चटपट यह बिल ए० आई० सी० सी० मे पास करा लिया गया था, जब वहाँ केवल पच्चीस मेंबर मौजूद थे उससे वह "थोड़ा सा परेशान हुई थी" जबकि कुल मेंबरों की संख्या ७५५ थी और उनमे से ३१५ मेंबर उस मीटिंग में आये थे।

१९६९ मे भी यही हुआ। मोरारजी के साथ श्रीमती गांधी के झगड़े को इस हद तक पहुँचा देने के लिए पी० एन० हकसर जिम्मेदार थे। उनसे वित्त-मंत्री का पद छीन लेने के बाद वह उनका इस्तीफा उस वक़्त तक मंजूर करने को तैयार नहीं थीं जब तक कि सरकार चौदह बैंकों का कारोबार अपने हाथों में न ले लेती, जो एक ऐसा कदम था जिसे उठाने में उन्होंने बहुत जोश दिखाया। उस वक़्त इसकी वजह से भी जनता पागलों की तरह उनका साथ देने को उमड़ आयी थी। लेकिन वह सिर्फ़ एक हद तक जाने को तैयार थीं, उससे आगे नहीं। आखिरकार जब वह हकसर और दूसरे लोगों के समझाने-बुझाने से मान गयी और मोरारजी देसाई का इस्तीफ़ा मंजूर करते हुए उन्होंने उनके नाम पत्र पर दस्तखत कर दिये तो हकसर ने फ़ौरन अपना एक आदमी ऑल-इंडिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन भेजकर इस फ़ैसले का ख़बरों के बीच ऐलान करवा दिया।

नतीजा यह हुआ कि ख़बर पहले पढ़ी गयी और वह ख़त मोरारजी देसाई के पास बाद मे पहुँचा। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और यह बात कही भी, लेकिन हकसर को इस बात का संतोष था कि उन्होंने ऐसी चाल चली थी जिससे बच निकलने का कोई रास्ता ही नहीं था, और उन्होने श्रीमती गांधी को अपनी राय बदलने का मौका ही नही दिया था।

श्रीमती गांधी ने जो रवैया अपनाया था उसमें सामाजिक स्तर पर प्रगति की अपेक्षा राजनीतिक लाभ का ध्यान अधिक रखा गया था, हालांकि इससे सबसे ज्यादा फायदा ख़ुद उन्ही को हुआ, क्योंकि इस घटना से उनकी ऐसी धाक जमी कि १९६९ में पार्टी मे उन्हें भरपूर समर्थन मिला और १९७१ और १९७२ के चुनावों में इतने अधिक वोट मिले।

बाद मे चंद्रशेखर के साथ अपने व्यवहार में श्रीमती गांधी विचारधारा के सवालों पर हमेशा टालमटोल का रवैया अपनाती थी। १९७१ मे 'गरीबी हटाओ' के नारे के बल पर, जिसने किसी चीज़ को बाजार मे बेचने की एक जबर्दस्त मुहिम का रूप धारण कर लिया था, जब जनता के बीच उनकी धाक पूरी तरह जम गयी, तो एक दिन उन्होंने चंद्रशेखर को बुलाया।

उन्होने चंद्रशेखर से कहा, "हमे देश के लिए बहुत बड़े-बड़े काम करने हैं। अगर तुम साथ दो तो हम बहुत-कुछ कर सकते हैं। मुझे तुम्हारी मदद की ज़रूरत है।"

"ज़रूर, ख़ुशी से," चंद्रशेखर ने कहा, "मैं पार्टी का एक सदस्य हूँ। आप जो भी चाहें मैं करने को तैयार हूँ।"

इसके अलावा और ज़्यादा कुछ बात नही हुई।

वामपंथियों मे डर :

कुछ समय बाद उन्होंने चंद्रशेखर को फिर बुलवाया।

"गरीबों के लिए कुछ करना जरूरी है," उन्होंने बड़ी हमदर्दी के साथ कहा, "हमने जनता से जो वादे किये हैं उन्हें हमें पूरा करना है। आप इसके लिए एक योजना क्यों नहीं बनाते ?"

चंद्रशेखर ने समझा, वह सचमुच ऐसा करना चाहती हैं। उन्होंने उन सभी पहलुओं के बारे में एक बहुत लंबा-चौड़ा नोट तैयार करके उन्हें दे दिया, जिनके बारे में वह समझते थे कि फौरन कुछ किया जा सकता है।

एक बार फिर श्रीमती गांधी ने उनसे कहा, "आप अगर हमारा हाथ बँटायें तो हम आगे बढ़ सकते हैं।"

उनके उस नोट पर उसके बाद और कोई कार्रवाई नहीं हुई।

चंद्रशेखर को कुछ झुंझलाहट भी हुई और कुछ परेशानी भी। लेकिन एक और राजनीतिक दोस्त यह सब-कुछ सुनकर हँस पड़े।

"तुम समझते हो कि वह सचमुच यह सब-कुछ करना चाहती थीं ? वह तो सिर्फ यह जानना चाहती थीं कि तुम मंत्री बनना चाहते हो या नहीं। वह तुम्हें इस बात का मौका दे रही थीं कि तुम अपने मुंह से यह बात कहो।"

चंद्रशेखर निराश होना तब से शुरू हुए जब उन्होंने देखा कि १९७१ के बाद उनका पूरा रवैया ही बदल गया है। उसी साल १० अप्रैल को जब उन्होंने इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स में भाषण दिया, जिसमें उन्होंने निजी क्षेत्र के साथ मेल-जोल बढ़ाने की पैरवी की थी, तो बात खासतौर पर साफ हो गयी।

उनका रुख बहुत नरम और सुलह-समझौते का था। श्रीमती गांधी ने कहा, "यह गुंजाइश तो हमेशा रहती है कि हमारे बीच इस बात पर ईमानदारी के साथ मतभेद हों कि कोई खास नीति समझदारी की नीति है या नहीं। लेकिन आपस की तू-तू मैं-मैं से हम बहुत आगे नहीं बढ़ सकते। सच्चे लोकतंत्रवादियों की तरह हमें एक ऐसे ढांचे के भीतर रहकर काम करना है जिसे आम जनता का समर्थन प्राप्त हो।" उनका लहजा उस वक्त भी इतना ही नरम था जब उन्होंने आगे चलकर अर्थ-व्यवस्था के असंतुलनों की और आर्थिक ढांचे में सरकार की ओर से और ज्यादा पैसा लगाये जाने की बात की, या उस समय भी जब उन्होंने उद्योगपतियों से अनुरोध किया कि "वे और अधिक रोजगार के अवसर पैदा करने में सरकार का हाथ बँटायें।"*

अपनी पत्रिका यंग इंडियन में मई के एक अंक में चंद्रशेखर ने एक संपादकीय लेख में अपनी यह निराशा ठोस रूप से और साफ-साफ शब्दों में व्यक्त की।

१९७२ तक वह सचमुच बिलकुल ही निराश हो चुके थे। जब गुजराल आवास-मंत्री थे उस वक्त आवास-मंत्रालय में शहरी जमीन की हदबंदी के टेढ़े सवाल के बारे में कमेटी के स्तर पर कई मीटिंगें हो चुकी थीं। फिर एक मीटिंग वित्त-मंत्री वाई० बी० चह्वाण के कमरे में रखी गयी जिसमें प्रधान मंत्री भी आनेवाली थीं। चह्वाण ने चंद्रशेखर को टेलीफोन किया।

जवाब में चंद्रशेखर ने कहा, "मुझसे तो आप सादे कागज पर दस्तखत करा लीजिये। आप जो कम-से-कम कार्यक्रम बनाने का फैसला करें मैं तो उसे भी मानने को तैयार हूँ।"

"आज बड़े उदार हो गये हो," चह्वाण ने हँसकर कहा।

"मैं जानता हूँ कि वह इस सिलसिले में कुछ करना ही नहीं चाहतीं।"

और हुआ भी यही। बहस के बाद मीटिंग में जब रिपोर्ट तैयार करने का

सवाल आया तो श्रीमती गांधी ने मुड़कर कहा, "इस सवाल के बारे में सरदार साहब (स्वर्ण सिंह)[9] के विचार बहुत पक्के हैं। पहले उनकी सलाह ले ली जाये।"

चंद्रशेखर बताते हैं, "बेचारे सरदारजी तो वहां मौजूद थे नहीं और न ही उन्होंने इस मामले में कोई दिलचस्पी ली थी। एक बार फिर श्रीमती गांधी ने इसका बहाना बनाया था।"

१९६९ में कांग्रेस पार्टी के अंदर वामपंथी धारा काफी सुगठित थी और उसमें वे लोग थे जो कांग्रेस के अंदर ही बढ़े थे या सोशलिस्ट आंदोलन से आये थे—चंद्रशेखर, कृष्णकांत[10], मोहन धारिया, केशवदेव मालवीय[11] और देवकांत बरुआ जैसे लोग—और फिर ऐसे लोग थे जो कुछ दिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में रहने के बाद आये थे—इस तरह के लोग जैसे नंदिनी सत्पथी, जो १९५२ में कांग्रेस में आयीं जब वह लगभग बीस-बाईस वर्ष की थीं, इंदरकुमार गुजराल, चंद्रजीत यादव, के० वी० रघुनाथ रेड्डी[12], के० आर० गणेश[13], नूरुल हसन[14], या डी० पी० धर, जो मोहन कुमारमंगलम के साथ केंद्र की सत्ता में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। मोहन कुमारमंगलम वकील थे और कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धांतवेत्ता रह चुके थे। इन्दिरा कॉलिज के दिनों से मोहन कुमारमंगलम को जानती थीं और उन्होंने अपने मंत्रिमंडल में उन्हें इस्पात तथा खान-मंत्री बना दिया। बम्बई के चतुर और सफल वकील रजनी पटेल[15] भी कम्युनिस्ट रह चुके थे, लेकिन वह भी इन्दिरा गांधी के निजी दोस्त थे जिन्हें वह बहुत समय से जानती थीं। जब वह कांग्रेस में आये तो अपने साथ बम्बई के बहुत-से बुद्धिजीवियों को भी लेकर आये। वह बम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बन गये और १९७३ से विशेष निमंत्रण पर कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंगों में जाने लगे।

सरकारी ढांचे में सबसे ऊपर प्रधानमंत्री की सेक्रेटेरियट में उनके मुख्य प्राइवेट सेक्रेटरी की हैसियत से पी० एन० हकसर थे। जब वह इस पद पर नियुक्त हुए थे तो आशा की एक लहर दौड़ गयी थी कि मूलगामी सुधारों की एक सुगठित प्रगतिशील नीति बनायी जायेगी और उस पर अमल होगा।

यह ढांचा हालांकि इन्दिरा ने खुद बनाया था लेकिन इसका इतने अधिक सुचारु रूप में काम करना और उतना सुगठित होना उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था।

उनके मन में अविश्वास की बुनियादी भावना इतनी गहरी थी कि किसी भी गरोह, चौकड़ी या गुट के लिए उन पर हावी हो जाना नामुमकिन था। वह इसका मौका ही नहीं देती थीं, क्योंकि वह उसे एक होकर काम ही नहीं करने देती थीं। इसलिए उसके सत्ता पर अधिकार कर लेने की संभावना फौरन खत्म हो जाती थी। साथ ही उसकी वजह से कोई सुगठित टोली भी नहीं बन पाती थी और टोली के रूप में मिलकर काम करने की भावना भी नहीं पैदा हो पाती थी। जब किसी कार्यक्रम या नीति पर अमल करने का सवाल उठता था तो यह कमजोरी एक बहुत बड़ी बाधा बन जाती थी। नतीजा यह होता था कि विचारधारा के आधार पर जितना लक्ष्य सामने रखा जाता था उतना कभी पूरा नहीं हो पाता था। वह चाहती यह थीं कि उनके साथ काम करने वाले संतुष्ट तो रहें पर साथ ही कमज़ोर भी रहें। उसके पीछे एक उद्देश्य तो निश्चित रूप से यह था कि सत्ता उनके हाथों में बनी रहे, लेकिन शायद एक दूसरा उद्देश्य यह भी था कि अपने मन को संतुष्ट रखने के लिए उनके लिए यह साबित करना जरूरी था कि अगर ऐसी नौबत आ ही जाये तो वह अकेले भी काम चला सकती हैं।

महाराष्ट्र से राज्यसभा के मुखर सदस्य वसंत साठे का कहना है, "१९७१ के चुनाव में भारी जीत के बाद इन्दिराजी मुख्यतः अपने बल पर न केवल कांग्रेस की बल्कि पूरे देश की नेता के रूप में उभरकर सामने आयी। एक बात माननी होगी कि १९६६ में जब वह प्रधान मंत्री बनी थीं उस समय नेहरू की बेटी होने के अलावा उनके साथ कोई महानता नहीं जुड़ी हुई थी। उन्हें इतनी उन्नति करने के लिए खुद कोशिश करनी पड़ी। पहला साल तो उन्होंने प्रधान मंत्री की हैसियत से काम करने के लिए तैयार होने में बिता दिया। संसद में वह चुपचाप बैठी रहती थीं, और विपक्ष के सभी नेताओं, कांग्रेस के बड़े-बड़े दिग्गजों और लोहिया" जैसे लोगों की बातें सुनकर खून का घूँट पीकर रह जाती थीं, जो उन्हें 'गूँगी गुड़िया' कहते थे। लेकिन वह कभी पलटकर जवाब नहीं देती थीं।"

"आपका कहने का मतलब है कि उनमें बदला लेने की भावना बिलकुल नहीं थी?" मैंने साठे से पूछा।

कांग्रेस की मौजूदा अस्त-व्यस्त हालत के बारे में या उस औरत की अंदरूनी मजबूरियों के बारे में जिसने यह हालत पैदा कर दी, कोई सतही राय कायम कर लेने के प्रलोभन से बचते हुए उन्होंने स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा, "यह उनके स्वभाव का कोई बुनियादी पहलू नहीं है। उन्हीं लोगों को वह अपने रास्ते से हटा देती थीं जिन पर उन्हें भरोसा रहा हो और उन्होंने उनके साथ विश्वासघात किया हो, या उनकी कोई परवाह न की हो। या जब किसी ने यह जताने की कोशिश की कि वह उनके बहुत निकट है तो उसकी छुट्टी हुई। उन्हें इस बात से चिढ़ थी कि उनके बारे में यह समझा जाये कि कोई दूसरा आदमी उनके दिमाग में कोई विचार ठूँस सकता है या उन्हें अपनी मर्जी से किसी खास दिशा में चला सकता है। लेकिन वह बहुत वफादार भी हैं और जो उनके प्रति वफ़ादार रहता है उसका हर तरह से बचाव करती हैं। जब कोई आदमी बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण होता है और ऐसा जताने की कोशिश करता है तो वह उसे धता बता देती हैं। लेकिन जब कोई छोटा आदमी उनके प्रति वफ़ादारी का सबूत देता है तो उसे पूरा संरक्षण देती हैं, जैसे यशपाल कपूर।"

साठे ने आगे चलकर यह मत भी व्यक्त किया कि १९७१ के बाद उनमें इतना आत्म-विश्वास पैदा हो गया कि आख़िरकार उन्होंने अपना सिक्का जमाना शुरू कर दिया और संगठन में तथा मंत्रिमंडल में उनके जो साथी "अपने बल पर यहाँ तक पहुँचे थे, बहुत बड़े लोग थे और नेहरू के साथी थे," उन्हें वह उचित दूरी पर रखती थीं। वह यह जताती थीं कि वह उन लोगों की बहुत इज्ज़त करती हैं, लेकिन उन लोगों के मन में यह भावना पैदा होती थी कि वह उन्हें दूर रखने की कोशिश कर रही हैं। साठे को अपनी ही बात का खंडन करने का तनिक भी आभास नहीं हुआ जब उन्होंने अपनी बात खत्म करते हुए कहा, "वह कभी किसी को, खासतौर पर चोटी के बड़े-बड़े लोगों को, अपना निकट विश्वासपात्र होने की स्थिति में नहीं आने देती थीं।"

अगर वह शुरू से ही किसी पर पूरी तरह भरोसा नहीं करती थीं तो किसी के उनके साथ विश्वासघात करने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है?

न सिर्फ़ यह कि इन्दिरा गांधी खुद किसी पर पूरी तरह भरोसा नहीं करती थीं बल्कि वह किसी को इस बात का भी मौक़ा नहीं देती थीं कि वह उन पर पूरी तरह भरोसा करे। उन्होंने समानांतर राजनीति का एक सिद्धांत बना लिया था जिस पर उन्होंने इतनी निपुणता से अमल किया कि सब लोग हमेशा यही

सोचते रह जाते थे कि अब वह न जाने क्या करेंगी। १९६९ में उन्होंने वामपथियों के उस गरोह में भी फूट डालने की कोशिश की जिनके समर्थन की बदौलत ही उनकी साख बनी थी कि वह गरीबों की मसीहा हैं। उदाहरण के लिए आर० के० सिन्हा" के घर पर एक बार कांग्रेस के वामपंथियों की एक मीटिंग हुई थी जिसमें चंद्रशेखर से लेकर चंद्रजीत यादव तक सभी लोग मौजूद थे। कृष्णकांत, नंदिनी सत्पथी, मोहन धारिया, रघुनाथ रेड्डी, के० आर० गणेश, अमृत नहट्टा", के० पी० उन्नीकृष्णन्", चिंतामणी पाणिग्रही", शशिभूषण", और कितने ही और लोग थे। इन लोगों की दलील यह थी कि कांग्रेस की नयी वर्किंग कमेटी में देश की नयी मनोभावना प्रतिबिंबित होनी चाहिए और उसमें सोशलिस्ट फोरम" को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इस फोरम की स्थापना जवाहरलाल नेहरू के जमाने में कांग्रेस के अंदर ही वामपंथी दबाव डालने वाले एक दल के रूप में की गयी थी।

जब श्रीमती गांधी को इसका पता चला तो उन्होंने चुपके से चंद्रजीत यादव, नंदिनी सत्पथी और रघुनाथ रेड्डी को अलग बुलाकर कहा, 'मैं तुम लोगों को ले लूंगी, तुम बाकी सबको क्यों चाहते हो?" चंद्रजीत यादव को चंद्रशेखर की टक्कर पर खड़ा करके, जो मोटे तौर पर पूरी वामपंथी धारा का प्रतिनिधित्व करते थे, उन्होंने स्वयं सोशलिस्ट फ़ोरम के अंदर एक संकट पैदा कर दिया। यही वह वक्त था जब राज्यसभा के कांग्रेसी सदस्य संत बख्शसिंह ने, जो पहले कम्युनिस्ट रह चुके थे, कांग्रेसियों के एक गरोह को "भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करने वाले तत्व" कहना शुरू कर दिया था। उन्होंने पहले-पहल इस शब्दावली का प्रयोग इन 'तत्वों' और तथाकथित 'असली' कांग्रेसियों के बीच अंतर को उजागर करने के लिए किया था।

के० पी० उन्नीकृष्णन बताते हैं, "चंद्रशेखर को इसकी कुछ भनक मिल गयी थी, लेकिन हम लोग इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे।...श्रीमती गांधी ने सोचा था कि अगर दो वामपंथी गरोह हो जायें, दो दक्षिणपंथी गरोह हो जाय और दो बीच के रास्ते पर चलने वाले गरोह हो जायें तो खेल ज्यादा आसान हो जायेगा। मैं जगजीवनराम के बारे में हमेशा बहुगुणा से झगड़ा किया करता था क्योंकि हम लोग जगजीवनराम को दक्षिणपंथी प्रतिक्रिया का प्रतीक समझते थे। हम लोग श्रीमती गांधी की उन चालों को, जिनकी बुनियाद विचारधारा के कोई सिद्धांत नहीं होते थे, विचारधारा के सिद्धांतों के अनुसार उचित ठहराने की कोशिश करते थे। हमने कभी यह सोचा भी नहीं था कि वह एक साथ इतने अलग-अलग स्तरों पर काम कर रही हैं।"

उन्नीकृष्णन्, जो इकतालीस वर्ष के हैं और अभी तक कुंआरे हैं, राममनोहर लोहिया की सोशलिस्ट पार्टी से १९६० में कांग्रेस में आये थे। उन्होंने लोहिया का साथ इसलिए छोड़ दिया था कि वह उनके नेहरू-विरोध से और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के उनके उन्मादियों जैसे प्रचार से सहमत नहीं थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि लोकतंत्र के बिना समाजवाद लाना असंभव है, कि भारत में हर जन-आंदोलन का रूप इस देश की विविधता से निर्धारित होगा, और यह कि पार्टी के ढांचे को अंदर से मजबूत करके ही इस गुत्थी को सुलझाया जा सकता है। फरीदाबाद" में जब इन लोगों ने कुछ सवालों पर एक खास रवैया अपनाया था तो उसके पीछे यही उद्देश्य था।

उन्नीकृष्णन् कहते हैं, "लेकिन अब पिछली बातों पर नजर डालने

समझता हूँ कि श्रीमती गाधी को इन बातों मे कोई दिलचस्पी ही नही थी। वह
न वामपथी है, न दक्षिणपंथी। वह किसी ढांचे के साथ बँधकर नही रहना चाहती
थी, उन्होंने हर ढांचे का फ़ायदा उठाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि समस्याओं
को सुलझाने के बजाय, और पार्टी को लोकतांत्रिक ढंग से बहस करके ऐसा करने
का मौका देने के बजाय, उन्होने विचारधारा के स्तर पर उलझावों को और
बढने दिया। बुनियादी तौर पर हमे भरोसा था—हम यह समझते थे कि जो भी
गडबडी होती थी उसके लिए वह नही बल्कि कोई और ज़िम्मेदार होता था।
कभी यशपाल कपूर, कभी उमाशकर दीक्षित। जब नेहरू फोरम" बनाया गया
तो हमने उन्ही को दोषी ठहराया। हम यह भूल गये कि ये लोग तो केवल साधन
मात्र थे। किसी-न-किसी साज़िश की—अमरीकी सी० आई० ए० की या रूसी
के० जी० बी० की—और पार्टी के अदर षड्यंत्रकारियों की हरदम चर्चा होती
रहती थी। इन सब बातो को उस वक्त हम लोग समझ ही नही सकते थे, अलावा
उस प्रसग मे जो अब हुआ है, सारी सत्ता हथिया लेने की कोशिश के प्रसंग मे।
श्रीमती गाधी ने इसी उद्देश्य के लिए पार्टी को इस्तेमाल किया। संजय गांधी के
उभरने के बाद यह एक निश्चित ढर्रा बन गया।"

इसी सवाल के बारे मे चद्रजीत यादव ने पुरानी घटनाओं को याद करते हुए
कहा, "इस बात पर विश्वास करने के लिए पूरा आधार मौजूद है कि इन्दिराजी
सजय को बढावा देने के लिए कुछ तत्वो को इस्तेमाल करना चाहती थी। मैं यह
भी समझता हूँ कि वह यह सोचती थी कि दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व हो सकता
है। नेहरू फोरम संजय की मुट्ठी मे रहे और सोशलिस्ट फोरम उनकी मुट्ठी मे।"

मैंने पूछा, "तो यह उनकी महज़ एक वक़्ती तौर पर फ़ायदा उठाने की चाल
थी?"

"हाँ, लेकिन यह चाल उनके काम नही आयी," चंद्रजीत यादव ने जवाब
दिया।

घर के भेदी की दृष्टि से देखते हुए आर० के० धवन कहते हैं, "१९७१ के
बाद से हकसर का बोलबाला था। जितने भी लोग हटाये गये वे ऐसे लोग थे
जिन्होंने उनके इशारे पर चलने से इकार किया—मिसाल के लिए, के० के०
शाह", भगवत झा आज़ाद", दिनेशसिंह, बलिराम भगत" और जगन्नाथ राव"।
वही सिद्धार्थशकर रे और कुमारमंगलम को लाये।" धवन का कहना है, "सिर्फ़
कम्युनिस्ट विचारो के लोग लाये गये थे और सगठन पर कब्ज़ा कर लेने की पूरी
कोशिश की जा रही थी।"

लेकिन हकसर कोई ऐसा काम नही कर रहे थे जो श्रीमती गांधी न चाहती
रही हों। बहरहाल, उनको वही लायी थी, और किसी भी देश के नेता का यह
कहना शोभा नही देता कि उसका कोई सहयोगी, कोई साथी, कोई बाहरी आदमी
या कोई बाहरी प्रभाव नीति के इतने ऊँचे स्तरों पर उससे स्वतंत्र रहकर काम
कर रहा था। इसके अलावा, प्रधान मंत्री बनने के बाद से श्रीमती गांधी के काम
करने के ढंग मे कोई ऐसी बात नही दिखायी देती जिससे यह सकेत मिले कि उन्हे
कोई दूसरा व्यक्ति अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल कर सकता है। असल में बात
इसकी उल्टी ही है। सच पूछा जाये तो जैसा कि चद्रशेखर ने कहा है, 'वह उन
लोगों को इसलिए इस्तेमाल कर रही थीं कि दुनिया की नज़रों मे वह वामपथी
लगें।" उस वक़्त लक्ष्य यह था कि जिसमे दक्षिणपंथी होने की ज़रा-सी भी गंध
हो, या जिसके बारे मे यह खतरा हो कि वह सत्ता पर अधिकार करने को अपना

लक्ष्य मानने वाले किसी भी सुगठित गरोह का अंग हो सकता है, उसे निकालकर फेंक दिया जाये।

मिसाल के लिए, किशोरलाल" एक मजदूर नेता थे और बाद में वह दिल्ली कार्पोरेशन के कांग्रेसी सदस्य बन गये थे। उनके सिलसिले में जो कुछ किया गया उसमे हकसर का नही बल्कि सीधे श्रीमती गाधी का हाथ था। किशोरलाल दिल्ली मे कांग्रेस की राजनीति के कर्त्ता-धर्त्ता चौधरी ब्रह्मप्रकाश के ख़ास आदमी थे। चौधरी ब्रह्मप्रकाश ने १९६७ मे इन्दिरा गांधी के खिलाफ मोरारजी देसाई का समर्थन किया था और इसलिए उन्हे दक्षिणपंथी समझा जाता था। ब्रह्मप्रकाश ने राजनीति त्याग दी लेकिन किशोरलाल ने धीरे-धीरे अपने पांव मजबूती के साथ राजनीति के क्षेत्र मे जमा लिये। श्रीमती गांधी ने मार्च १९७१ के आम चुनावों में दिल्ली के लिए चुनाव की रणनीति पर विचार करने के लिए हकसर के साथ किशोरलाल को भी बुलाया। लेकिन जब चुनाव के बाद सारे देश मे कांग्रेस की असाधारण जीत हुई और दिल्ली में भी लोकसभा की सातो सीटें कांग्रेस ने जीत ली तो दूसरे लोगो के साथ किशोरलाल भी श्रीमती गाधी को बधाई देने गये, उस समय उन्होंने जान-बूझकर और साफ जताकर उनकी तरफ से मुँह फेर लिया। दो महीने बाद जब दिल्ली कार्पोरेशन के लिए स्थानीय चुनाव हुए तो उन्होंने किशोरलाल के समर्थकों मे से किसी को भी टिकट नही दिया। किशोर का कहना है, "खुद मुझे टिकट देने के फैसले का ऐलान भी आखिरी क्षण तक नही किया गया। ऐसा लगता था जैसे किसी को जान-बूझकर ज़लील किया जा रहा हो, इस तरह कि वह यह महसूस करने लगे कि वह कोई भिखारी है। इतना ही नही, अंदर-ही-अदर चुपके-चुपके कांग्रेस के पूरे सगठन को मुझे हराने पर लगा दिया गया, मुझे, जबकि मैं खुद कांग्रेसी था।"

किशोरलाल तो जीत गये, लेकिन कांग्रेस हार गयी और उसने कार्पोरेशन मे अपना बहुमत खो दिया। स्वाभाविक बात थी कि किशोरलाल कांग्रेसी विपक्ष के कार्यकारी नेता चुने गये। इसके बाद इन्दिरा गांधी की तरफ से उनकी जगह कोई दूसरा नेता खोजने के लिए जोड-तोड शुरू हुई। किशोरलाल अड़ गये, और उन्होंने चंद्रजीत यादव को, जो उस वक़्त कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी थे, इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि चुनाव गुप्त मतदान से हो। किशोरलाल जीत गये। इस बार जब वह अपनी नेता, प्रधान मत्री से शिष्टता के नाते मिलने गये तो वह यह तय करके गये थे कि बात साफ ही कर लेंगे।

उन्होंने जाकर श्रीमती गाधी से पूछा, "इन्दिराजी, आपको मुझसे क्या शिकायत है? एक तो यह कि मैं ब्रह्मप्रकाश के साथ हूँ? दूसरे यह कि मैं तिकड़म-बाज हूँ? तो जाँच करा लीजिये। नंदाजी" सत्रह मामलों की जाँच कर चुके है, अठारहवी जाँच मेरे खिलाफ भी कर लें। लेकिन जहाँ तक चौधरी ब्रह्मप्रकाश का सवाल है, तो मैं सरहद" का रहने वाला हूँ, मैं उनके साथ था और उनके साथ रहूँगा। मैं किसी का एहसान कभी भूलता नही। मैं अपने दोस्तो का साथ आखिर तक निभाता हूँ।"

"नही, नही," प्रधान मत्री ने घबराकर कहा, "ऐसे लोगो को तो मैं पसंद करती हूँ।"

मैंने किशोरलाल से पूछा, "उसके बाद क्या आपकी तरफ उनका आम रवैया रूखेपन का हो गया?"

"नही, इस बात के लिए तो मैं उनकी तारीफ करूँगा, उसके बाद मेरे साथ

उनका रवैया कुछ बेहतर ही हो गया।"

मतलब यह है कि निजी स्तर पर श्रीमती गांधी ने भी जान लिया कि उनके साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह मुँह पर साफ़ बात कहने की हिम्मत रखते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि राजनीतिक स्तर पर भी उन्होंने हार मान ली थी। उसके बाद पाँच साल तक लगातार उन्हें बाहर निकालने की कोशिशें की जाती रहीं, यहाँ तक कि उनके नेतृत्व के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव रखने को भी बढ़ावा दिया गया। आखिरकार श्रीमती गांधी ने कार्पोरेशन के कांग्रेसी सदस्य सी० बी० गुप्ता से, जो उनके विश्वासपात्र थे, बहुत झुँझलाकर कहा, "आप बस उन्हें हटाने की बातें-भर करते रहते हैं, लेकिन हटाते नहीं।"

वामपंथी प्रवृत्ति को मजबूत करने की कोशिश के दौरान उन्होंने महसूस किया कि यह जरूरत से ज्यादा शक्तिशाली होती जा रही है। हालांकि इस दलील की बुनियाद पर कि वह किसी भी तरह की दलबंदी के खिलाफ हैं उन्होंने १९७३ में ही दोनों फोरम खत्म करवा दिये थे, लेकिन उसके फ़ौरन ही बाद कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी की सदस्यता के लिए सीटों पर जो लड़ाई हुई वह साफ़-साफ़ दो अलग-अलग धाराओं को मानकर हुई थी। नेहरू फोरम के नेता ए० पी० शर्मा[11] कांग्रेस संसदीय दल के उप-नेता चुने गये, लेकिन इसके अलावा सोशलिस्ट फ़ोरम के लोगों को अच्छा-खासा बहुमत मिल गया।

जून १९७३ में नंदिनी सत्पथी ने, जिनके बारे में यह कहा जाता था कि प्रधान मंत्री के साथ उनके संबंध इतने अच्छे थे कि वह उनके सोने के कमरे में बैठकर उनके साथ बात कर सकती थी, उन्हें कांग्रेस पार्टी के संगठन की हालत के बारे में एक बहुत चिंता-भरा खत लिखा। उसमें उन्होंने अपना यह विचार व्यक्त किया था कि अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी (ए० आई० सी० सी०) बिलकुल निष्क्रिय और गैर-राजनीतिक संस्था बनकर रह गयी थी और साथ ही इस पर आश्चर्य भी प्रकट किया था कि लोग आपस में तो हर तरह की चर्चा करते थे लेकिन श्रीमती गांधी के सामने कोई खुलकर बात नहीं करता था। ऐसा मालूम होता है कि घुन लगना शुरू हो गया था। लेकिन आगे चलकर नंदिनी सत्पथी ने जो कुछ कहा उसका मतलब तो लगभग यही था कि वह संगठन के ऊपर एक और सत्ता कायम करने की कोशिश कर रही थी। उन्होंने सुझाव रखा कि एक छोटी-सी टोली "हक्सर, डी० पी० चट्टोपाध्याय,[12] के० आर० गणेश, रघुनाथ रेड्डी, एल० एन० मिश्र और कुलदीप नारंग[13] की बना दी जाये जो आपके लिए संगठन से संबंध रखने वाले और राजनीतिक सवालों के बारे में कुछ लिखा-पढ़ी का और दफ़्तर का काम करे और आपके सामने उनके बारे में रिपोर्ट पेश करे।" उन्होंने अपने पत्र में यह भी लिखा कि ये सभी लोग चूँकि दिल्ली में रहते हैं इसलिए जब भी जरूरत हो तो रजनी पटेल सिद्धार्थशंकर रे और दूसरे लोगों को भी इस टोली के काम में शामिल किया जा सकता है। उन्होंने प्रधान मंत्री को यह भी विश्वास दिलाने की कोशिश की कि इस टोली की कल्पना ए० आई० सी० सी० के, या किसी भी दूसरे संगठन के टक्कर पर एक समानांतर संस्था के रूप में नहीं की गयी है, और यह कि उसका काम सिर्फ़ उनकी मदद करना होगा। यह टोली संगठन से संबंध रखने वाली या किसी राजनीतिक समस्या या स्थिति का ठोस रूप से अध्ययन कर सकती है, उसका मूल्यांकन कर सकती है, और "जो भी हल वह उचित समझे आपके सामने रख सकती है।"

लेकिन व्यवहार में इसका मतलब यही था कि कार्यकारिणी से ऊपर एक ऐ[illegible] संस्था बना दी जाये जो ए० आई० सी० सी० के क्रियाशील होने से पहले ही को[illegible] कदम उठा सके। इस बात से श्रीमती गांधी डर गयी और उन्हें इस टोली कं[illegible] नीयत पर शक होने लगा।

लेकिन ऐसा लगता है कि इन लोगों की कोशिशें इसके बाद भी इस रूप में जारी रहीं कि वे वामपंथी झुकाव की बुनियाद पर अफसरों की नियुक्ति, उनके तबादले और उनके चुनाव के मामले में असर डालने की कोशिश करते रहे। आखिरकार इसका नतीजा इतना तो निकला ही कि इन लोगों ने श्रीमती गांधी को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वह शंकरदयाल शर्मा की जगह देवकांत बरुआ को कांग्रेस का अध्यक्ष नियुक्त कर दें। और, बरुआ के दिमाग में यह बात बिलकुल साफ थी कि वह अपने साथ काम करने के लिए किन लोगों को चाहते थे।

"दुर्गाप्रसाद धर को जनरल-सेक्रेटरी बनवा देने में तुम मेरी मदद करो," उन्होंने धवन से कहा। वह अच्छी तरह जानते थे कि इस बात का फ़ैसला भले ही प्रधान मंत्री के हाथ में हो पर धवन उसके लिए ज़मीन तो तैयार कर ही सकते थे।

श्रीमती गांधी ने देखा कि उनके समाजवाद का गुलाबीपन कुछ लाल होता जा रहा है, हालांकि सीधे-सीधे कम्युनिस्ट गुट के प्रभाव में और वामपंथी झुकाव रखनेवाले कांग्रेसियों के प्रभाव में ज़मीन-आसमान का अंतर था।

इसके बारे में दिनेशसिंह की राय थी: "असल बात यह है कि अगर आपकी अपनी कोई विचारधारा न हो तो मैं समझता हूँ कि इस बात से कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता कि आपके साथ किसका सह-अस्तित्व रहता है। उनकी योजना कुछ भी रही हो पर वह कभी स्पष्ट रूप में सामने नहीं आयी। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि वह कम्युनिस्ट-विरोधी थीं। विरोधी होने का मतलब होता कि वह उनके खिलाफ कुछ करतीं।"

मैंने दिनेशसिंह से पूछा, "मतलब यह कि एक ऐसी नेता जिनका कोई ध्येय नहीं था? या कांग्रेस ही ध्येय था?"

"जब आप ताकत अपने हाथ में समेटना चाहते हैं तो उद्देश्य होना ज़रूरी होता है। यह बात कभी खोलकर समझायी नहीं गयी। उन्होंने कभी साफ़-साफ़ बताया नहीं। कुमारमंगलम के सामने एक उद्देश्य था; वह श्रीमती गांधी को इस्तेमाल करना चाहते थे और सत्ता हथियाना चाहते थे।"

इमर्जेंसी से एक साल पहले श्रीमती गांधी ने एक बार फिर एक ठोस अम[illegible] कार्यक्रम के बारे में कुछ जोश पैदा करने की कोशिश की। कांग्रेस वर्किंग कमे[illegible] की एक मीटिंग में उन्होंने अगले दिन बहस करने के लिए फ़ौरन एक रिपोर्ट तैया[illegible] करने को कहा। चन्द्रशेखर, जो उस समय तक स्वयं वर्किंग कमेटी के सदस्य बन चुके थे, इसके बारे में बताते हैं, "हम लोगों ने सचमुच बड़ी मेहनत से काम किया। शाम को चार बजे तक हमने रिपोर्ट तैयार कर दी। जब पांच बजे हम लोग मीटिंग में गये तो हमें ऐसा लगा कि उन्हें पहले से मालूम था कि रिपोर्ट में क्या है। जब एक-एक बात पर अलग-अलग बहस होने लगी तो नंदिनी सत्पथी या बहुगुणा, जिन्हें मुख्य मंत्री होने के नाते मीटिंग में भाग लेने के लिए विशेष रूप से निमंत्रित किया गया था, कोई-न-कोई एतराज़ करने लगे। मुझे सचमुच बहुत हँसी आयी। ज़ाहिर है कि उन्हें पहले से कह दिया गया था कि वे कोई झगड़ा

खड़ा कर दें। वह सीधे खुद कभी कुछ नही कहती थी, हमेशा किसी दूसरे आदमी को इस्तेमाल करती थी।"

तारकेश्वरी सिन्हा का कहना है, "जब सिद्धार्थशंकर रे और नंदिनी मुख्य मंत्री बन गये तो इस दल ने चंद्रशेखर जैसे सच्चे वामपंथियो के खिलाफ उनके कान खूब भरे।"

इंदरकुमार गुजराल कहते हैं, "हकसर के असर की बदौलत तथाकथित वामपंथियों के हाथ मे ताकत आयी। लेकिन कांग्रेस की सबसे बड़ी बदनसीबी यह है कि वामपंथियो की कोई हस्ती नही है। उन्होने कभी कोई हैसियत बनने ही नही दी।"

लेकिन वह न सिर्फ एक विचारधारात्मक दबाव महसूस करने लगी थी—जिसे वह, जैसा कि चंद्रशेखर ने कहा, कभी भी सीधी टक्कर लेकर हल नही कर पायीं—बल्कि एक खतरा भी। इस ग्रुप ने, वह जो कुछ भी था, अपना असर बहुत दूर-दूर तक डालना शुरू कर दिया था। श्रीमती गांधी उन बातों के प्रति बहुत सतर्क हो गयी थी जिन्हें वह इन लोगो की जोड़-तोड़ समझती थी; उनको डर था कि ये लोग उन्हें ढकेलकर विचारधारा की दृष्टि से एक ऐसी चरम स्थिति तक पहुंचा देंगे जो उनके लिए असुविधाजनक होगा, फिर वे संगठन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे और उन्हें निकालकर बाहर फेंक देंगे। यह वह कभी भी बर्दाश्त करने को तैयार नही थी।

इस खतरे से बच निकलने के लिए उन्होने सोशलिस्ट फोरम और नेहरू फोरम दोनो ही को खत्म करवा दिया; डी० पी० धर जनरल-सेक्रेटरी नही बनाये गये और अगर बरुआ और हकसर की कभी निभी नही तो इसका कारण पूरे भरोसे के साथ यही बताया जा सकता है कि श्रीमती गांधी की यह चाल थी कि स्वयं उनके समर्थकों के बीच आपस मे फूट रहे।

ऐसा लगता है कि संजय के मामले मे भी दोनों की राय एक नही थी, यह ऐसा सवाल था जिसकी वजह से बहुत-से दल १९७३ के बाद मिलकर एक हो गये थे। हकसर के घर पर एक मीटिंग हुई थी जिसमे उन्होने संजय के लंदन मे रहने के दिनो का उल्लेख किया था। उन्होने कहा, "वहां वह मेरी निगरानी मे रहता था और उस वक्त भी मेरे पास शिकायतें आती रहती थी।" बरुआ इस बात पर गुस्से से यह कहकर चले गये, "मैं फीरोज का दोस्त था। मैं उसके बेटे के खिलाफ कुछ नहीं सुन सकता।" बहुत बाद मे जाकर १९७७ मे बरुआ ने संजय के बारे मे ऐसी भाषा में अपने विचार व्यक्त किये कि लगता था कि अंदर-ही-अंदर जो गुस्सा बहुत दिन से उबल रहा था वह अचानक फूट निकला है। जब तक वह इस तरह नही बोले, तब तक यह निश्चित रहा कि बरुआ पर कृपादृष्टि बनी रही, और हकसर को जाना पड़ा।

"फिर सिद्धार्थशंकर रे उनके इतना करीब कैसे रह सके ?" मैंने उनके एक निकट सहयोगी से पूछा।

"सिद्धार्थ बाबू दोहरी चाल चल रहे थे। वे लोग समझते थे कि उनका असर घटते जाने के लिए संजय जिम्मेदार है लेकिन असल बात यह है कि वह खुद ताड़ गयी थी कि इन लोगो के इरादे क्या हैं।"

क्या थे इन लोगों के इरादे ?

पहली बात तो यह है कि ये लोग छः महीने पहले ही इमर्जेंसी लागू करवा देना चाहते थे। श्रीमती गांधी के नाम अपने ८ जनवरी के पत्र में सिद्धार्थशंकर

रे, रजनी पटेल और डी० के० बरुआ ने यह सुझाव दिया था कि परिस्थिति ऐसी हो गयी है कि कोई सख़्त कदम उठाना जरूरी है और यह कि उन्हें उसी वक़्त इमर्जेंसी का ऐलान कर देने का बुनियादी कदम उठाना चाहिए।

जस्टिस सिन्हा का फ़ैसला आने के दो महीने पहले, संसद के सेंट्रल हॉल में जहाँ से हर चीज, गप और प्रस्तावों से लेकर विद्रोह तक की शुरुआत होती है—यह अफ़वाह गूंजने लगी कि फ़ैसला श्रीमती गांधी के खिलाफ़ होगा और यह कि बरुआ प्रधान मंत्री बन सकते हैं। यह अफवाह फैलते-फैलते प्रधान मंत्री की कोठी तक भी पहुँच गयी।

सीताराम केसरी ने, जिन्होंने यह अफवाह सुनी थी, कहा, "इसी की काट करने के लिए संजय को चढ़ाया गया।"

फिर १२ जून का दिन आया, फ़ैसले का दिन।

उस दिन सुबह कोई पक्की खबर आने से पहले ही उन्नीकृष्णन् को अदेशा होने लगा कि शायद वही बात होने वाली है जिसे वह सबसे ज्यादा बुरा समझते थे।

उन्होने बरुआ से कहा, "मैंने कुछ खतरनाक खबरें सुनी है।"

"नहीं, नहीं," बरुआ ने जवाब दिया, "सब ठीक-ठाक है। गोखले[19] और रजनी ने कहा है।"

दरअसल गोखले ने १० और ११ तारीख को धवन को बुलाकर यह पता लगाने के लिए कहा था कि उनके वकील एस०सी० खरे[20] कहाँ है। "उन्हें फ़ैसले के वक़्त अदालत मे मौजूद रहना चाहिए। अगर कोई गड़बड़ी हो जाये तो वह फ़ौरन दिल्ली आकर सुप्रीम कोर्ट मे अपील कर सकते है।" सिद्धार्थशंकर रे भी उस वक़्त कमरे में मौजूद थे जब गोखले ने यह बात कही थी।

धवन बताते है, "मैंने अपने वकील से संपर्क किया। मुझे ऐसा लगा कि गोखले साहब को इस बात का अंदेशा है कि फ़ैसला हम लोगो के खिलाफ होने वाला है। वह वकील के वहाँ मौजूद रहने पर बेहद जोर दे रहे थे। मैंने अपनी यह भावना प्रधान मंत्री को नही बतायी। मैंने उनसे सिर्फ़ वही कहा जो गोखले साहब ने कहा था।"

इस पर उन्होंने कहा, "वह जो चाहते है वही करो, लेकिन अगर मैं मुकद्दमा हार गयी तो मैं अपील नही करूँगी। इसका कोई इंतजाम किया है कि फ़ैसला आते ही उसकी ख़बर मिल जाये?"

"मैंने इलाहाबाद में जगपत दुबे[21] से कह दिया है। वह टेलीफोन कर देंगे।"

लेकिन अफवाहे जोरो पर थीं।

एक महीना पहले मई मे जब मुहम्मद यूनुस अपने किसी दोस्त की बेटी की शादी में लखनऊ गये थे तो वहाँ एक कायस्थ[22] सज्जन ने उनसे कहा था, "साहब, सिन्हा मेरी बिरादरी के आदमी हैं, वह मैडम को ख़त्म कर देंगे। वह इतिहास मे अपना नाम अमर कर देना चाहते है और मैं तो आपसे कहता हूँ कि उन्होंने यह कर दिया है।"

यूनुस कहते हैं, "मैंने वहाँ से लौटकर यह बात उनको (प्रधान मंत्री को) बतायी। इस पर उन्होंने कहा, 'मैंने यह बात दूसरो से भी सुनी है, लेकिन ~ ही क्या जा सकता है?'"

सच तो यह है कि १२ जून १९७५ का दिन ही श्रीमती गाधी के लि

मनहूस था। प्रधान मंत्री सफ़दरजंग रोड पर अपनी कोठी पर हमेशा की तरह सुबह छः बजे उठीं। वह नहा-धोकर, कपड़े बदलकर सुबह आठ बजे तक अपना काम-काज शुरू करने की तैयारी कर ही रही थीं कि इतने में साढ़े छः बजे उन्हें खबर मिली कि डी० पी० धर का देहांत हो गया है। वह बीमार थे और गोविंद-वल्लभ पंत अस्पताल में थे। बड़े नेताओं में से सबसे पहले वही वहां पहुंची थीं।

वहां से लौटकर वह नियमानुसार बगलवाली १ अकबर रोड की कोठी में लोगों से मिलीं। साढ़े नौ बजे वहां से आकर वह दफ्तर जाने की तैयारी कर रही थीं। कोई हलचल नहीं थी, कोई डर नहीं था, और आनेवाले फ़ैसले के बारे में किसी तरह की चिंता नहीं थी।

गोखले ने पौने दस बजे धवन को टेलीफोन किया कि जैसे ही खबर आये उन्हें बता दिया जाये।

उस दिन की घटनाओं को याद करते हुए धवन बताते हैं, "दस बजकर दो मिनट पर शारदाप्रसाद ने रेक्स फ़ोन (सीधी लाइन) पर शेषन् को टेलीफ़ोन किया और उन्हें बताया कि श्रीमती गांधी का चुनाव रद्द कर दिया गया है। इसी बीच कोई टेलीप्रिंटर की खबर भी ले आया। प्रधान मंत्री अपने कमरे में थीं; राजीव भी वहीं था। सबसे पहले उसी को खबर दी गयी। अपनी मां को यह खबर उसी ने सुनायी। संजय अपने कारखाने जा चुका था।"

जब सब लोग अंदर की तरफ जाने लगे तो धवन ने सिद्धार्थशंकर रे, गोखले और डी० के० बरुआ को आते देखा। वह सामने ही खड़ी थीं।

"सब ठीक-ठाक है न?" सिद्धार्थ बाबू ने हमेशा की तरह बड़ी बेतकल्लुफ़ी से पूछा।

"हां," उन्होंने जवाब दिया, "उन्होंने मेरा चुनाव रद्द कर दिया है। अब मुझे क्या कदम उठाना है? क्या मुझे फौरन इस्तीफा देना पड़ेगा?"

चारों अलग एक कमरे में जाकर सर जोड़कर बैठ गये।

"इल्ज़ाम क्या लगाये गये हैं?" किसी ने ऊंचे स्वर में पूछा। सब लोग टेलीप्रिंटर की तरफ लपके जो कोठी के सामनेवाली बरसाती के पास वाले कमरे में लगा था। यशपाल कपूर बहुत घबराये हुए विभिन्न राज्यों में अपनी जान-पहचान के सभी लोगों को टेलीफोन कर रहे थे और उनसे श्रीमती गांधी के पक्ष में बयान देने का अनुरोध कर रहे थे। सबसे पहले ए० पी० एच० एल० सी०" के मुख्यमंत्री विलियम्स ए० संगमा ने उनके नेतृत्व का समर्थन करते हुए बयान जारी किया। जब बरुआ ने उन्हें टेलीफोन किया तो उन्होंने कहा, "हां, हां, कपूर ने मुझसे पहले ही बात कर ली है। मैंने बयान जारी भी कर दिया है।"

"क्या आप उस दिन उनसे मिले थे?" मैंने यशपाल कपूर से पूछा।

"नहीं। निजी तौर पर मैं उनके इस्तीफा देने के खिलाफ था। मुझको उनसे यह पूछने की ज़रूरत नहीं थी कि मैं क्या करूं। मैं यों भी यही करता।"

यशपाल कपूर ने किया यह कि तूफानी रफ़्तार के साथ प्रचार की एक ज़बर्दस्त मुहिम छेड़ दी। उन्होंने अपनी अभियान समिति" के सदस्यों की मीटिंग बुलाकर सबको फौरन काम में जुटा दिया। उसी दिन दोपहर के दो बजे तक उन्होंने एक बेहद ज़ोरदार पोस्टर तैयार करा दिया: "इनकी लड़ाई, हमारी लड़ाई।" उन्होंने तीसरे पहर तक अभियान समिति के दफ़्तर में ३०० वालंटियर, अध्यापक, दुकानदार, छात्र, गृहिणियां, वकील, संसद-सदस्य और लेखक जमा कर

लिये और उनके जरिये अगले ही कुछ दिनों मे दो-दो हजार के बंडलों में छः लाख पर्चे बँटवा दिये।

यशपाल कपूर ने कहा, "मुझे नही याद पड़ता कि संजय ने उस दिन मुझसे कुछ कहा हो।"

लेकिन अगले दिन जब वह श्रीमती गांधी से मिलने गये तो उन्होने उनको अलग ले जाकर कहा, "कपूर, लोगों को तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नही लगता, इसलिए तुम अब यहाँ कम ही आया करो।"

इतनी-सी बात में सारा किस्सा तय हो गया। यशपाल की भूमिका के बारे में, खुद उनके बारे में, उनके काम करने के ढंग के बारे मे, उनके चाल-चलन के बारे में, और उनकी ईमानदारी के बारे में भी लोग बहुत चिढ़े हुए थे। श्रीमती गांधी यह सब-कुछ बर्दाश्त करती आयी थी, क्योकि उनकी तरफ यशपाल कपूर की वफादारी में किसी तरह का शक नही किया जा सकता था। आखिरकार उनके ऊपर भी गाज गिरी। अब नयी व्यवस्था बनाने का वक्त आ गया था।

"अच्छी बात है," यशपाल कपूर ने श्रीमती गाधी से कहा, "मुझे आपसे सिर्फ़ एक बात करनी है। उसके बाद मैं चला जाऊँगा।"

इसके बाद वह जो कुछ भी हो रहा था उसकी खबर देने प्रधान मंत्री की कोठी पर जाते रहे, लेकिन इस बात का ध्यान रखते थे कि बहुत ज्यादा लोग वहाँ न हों—जैसे दोपहर को खाने के वक़्त या रात को। वह उनसे एक-दो मिनट बात करके चले आते थे। यह सब उनकी एकतरफा कार्रवाई थी क्योंकि श्रीमती गाधी ने कभी उनसे कुछ करने को नही कहा था।

मैंने यशपाल कपूर से पूछा, "आपने उनसे पूछा नही कि ऐसी क्या बात हो गयी थी कि अचानक उनका रवैया बदल गया था या आप पर से उनका भरोसा उठ गया था?"

"नही," कपूर ने सरहद के सीधे-सादे, अंधी वफादारी निभाने वाले पठान की तरह जवाब दिया। "मैंने उन्हे अफसर से भी बहुत ऊँचे स्तर पर स्वीकार किया था। मैंने उनसे कभी किसी बात की वजह नहीं पूछी।"

लेकिन यशपाल कपूर ने मुझे बताया कि श्रीमती गांधी को हालाँकि इस तरह की खबरें दी गयी थी कि उन्होंने उनका मुकद्दमा बिगाड दिया है, लेकिन इलाहाबाद हाई कोर्ट मे लगातार दो दिन तक गवाही देने के बाद जब अखबारों मे उनकी गवाही का ब्यौरा छपा तो सिद्धार्थशंकर रे और पालकीवाला" दोनों ही उनके कमरे में "मेरी कामयाबी पर बधाई" देने आये थे।

प्रधान मंत्री की कोठी में १२ जून को एक और आदमी को भी बहुत लताड़ा गया। वह थे हक्सर, और लताड़ा किसने, खुद बरुआ ने। बरुआ लगातार यही कहे जा रहे थे कि हक्सर की गवाही ने सारा खेल बिगाड दिया था। जिस वक़्त सिद्धार्थशंकर रे और गोखले के साथ बरुआ प्रधान मंत्री से मिलने गये और जब वह इस्तीफा देने की बात कर रही थीं तो बरुआ की पहली प्रतिक्रिया कुछ इस तरह की बात कहने की हुई कि "बहरहाल, लोग इसे बहुत भलमनसाहत की बात समझेंगे। थोड़े ही दिन का सवाल होगा। हम लोग अपील करेंगे और मुझे यकीन है कि हम जीत जायेंगे।"

बरुआ वहाँ से वापस लौटने वाले सबसे पहले लोगो मे थे। घर जाकर उन्होंने ससद के बहुत-से सदस्यों को बुलाया। वहाँ कांग्रेस के एक-दो जनरल-सेक्रेटरी भी मौजूद थे, लेकिन असम के कुछ सदस्य थे जिनसे उन्होने कहा कि "बहुत मुमकिन

मसविदा" शॉर्टहैंड में लिख रहे थे। यह मसविदा बड़े-बड़े नेताओं के लिए तैयार किया जा रहा था, जिन्हें श्रीमती गांधी के प्रधान मंत्री बने रहने के समर्थन मे एक बयान जारी करना था। यह मसविदा खाने के कमरे मे तैयार किया जा रहा था, जो उन दो छोटे कमरो से कुछ दूर था जहां बाकी लोग जमा थे, और जो मंत्री आता था वह उसके बारे मे अपने सुझाव देता था।

लेकिन चह्वाण का कही पता नही था। ऐसे मौके पर उनके मौजूद न रहने के पीछे क्या रहस्य हो सकता है, इसके बारे मे कानाफूसी हो रही थी। क्या वह कोई योजना बना रहे थे? क्या वह अपने लिए रास्ता खुला रहने देना चाहते थे? क्या वह चाहते थे कि श्रीमती गांधी इस्तीफा दे दें? इतने बरसो तक उन्होंने लगातार उनका साथ दिया था—एक बार को छोड़कर, १० जुलाई १९६९ को बंगलौर में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग में, जब उन्होंने श्रीमती गांधी की मर्जी के खिलाफ राष्ट्रपति के चुनाव के लिए संजीव रेड्डी को उम्मीदवार बनाने के पक्ष में वोट दिया था। क्या इस वक्त चह्वाण के वहां मौजूद न रहने का मतलब यह था कि अब वह उनका साथ देने को तैयार नही थे? श्रीमती गांधी के मन मे कुछ शक पैदा होने लगा।

दरअसल, चह्वाण डी० पी० धर के शव को उसी दिन शाम के हवाई जहाज मे श्रीनगर उनके घर ले जाने का इतजाम करा रहे थे, और उससे पहले उसे दिल्ली में दर्शनार्थ रखा जाना था। चह्वाण ५ रेसकोर्स रोड पर अपनी कोठी पर १० बजे लौटकर आये, और पहुंचते ही किसी ने उन्हें खबर दी कि श्रीमती गांधी का चुनाव रद्द कर दिया गया है। वह वहीं बैठ गये। उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि इसके क्या-क्या नतीजे हो सकते थे। उन्होने यह जरूरी नही समझा कि वह शोक प्रकट करने के लिए फौरन श्रीमती गांधी के पास जायें। उन्हें सोचने के लिए कुछ वक्त चाहिए था। आखिरकार साढे ग्यारह बजे उन्होने सफदरजंग रोड जाकर यह मालूम करने का फैसला किया कि क्या हो रहा है। वहां पहुंचने पर उन्हें अंदाजा हुआ कि उनके वहां मौजूद न रहने की वजह से क्या-क्या अटकलें लगायी जा रही थी।

लेकिन जब वह खाने के कमरे में पहुंचे उस वक्त तक बयान का मसविदा लगभग तैयार हो चुका था। लेकिन इन्दरकुमार गुजराल ने उसे देखकर कहा कि वह 'बेहद बे-जान' है, और फिर से नया मसविदा तैयार किया। इसके बाद सबने शवन के सामने उस बयान पर दस्तखत किये। सबसे पहले दस्तखत करने वालों में जगजीवनराम और चह्वाण थे।

यूनुस उस दिन की घटनाओं को याद करके बताते है, "दोपहर तक नकशा बिलकुल साफ उभर आया था। वह इस्तीफा नही दे रही थी।"

संजय बाहर से देखने मे बहुत शांत था, लेकिन उसके अंदर एक आग धधक रही थी। आज ही के दिन तो राजनीतिक मुहिम चलाने के उसके अनुभव की पूरी जानकारी मिलने वाली थी। मैं समझता हूं कि वह महसूस कर रहा था कि अपनी मां के प्रति उसका यह कर्तव्य था कि वह इस कठिन घडी मे उनकी हिम्मत बढाये और उन सब दिनों का कर्ज चुका दे जब उन्हें उसके मारुति के कारखाने की वजह से इतनी मुसीबतो का सामना करना पडा था। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि वह उनके पक्ष मे इतने बडे पैमाने पर समर्थन जुटा देगा कि किसी के दिमाग में इस बात के बारे में कोई शक न रह जाये कि जनता क्या चाहती है। उधर यशपाल कपूर प्रचार की अपनी मुहिम हमेशा की तरह पूरी मुस्तैदी के

साथ चला रहे थे, इधर संजय ने जनता को सगठित करने का बीड़ा उठा लिया। उसने सारे शहर का चक्कर लगाया और सारा शहर १ सफ़दरजंग रोड की तरफ उमड पड़ा। जिस तरह अकबर रोड, कृष्णमेनन मार्ग, तीन मूर्ति मार्ग, रेस कोर्स रोड और सफदरजग रोड आकर प्रधान मंत्री की कोठी के पास वाले गोल चौराहे पर आकर मिलती हैं, उसी तरह दिल्ली से और दिल्ली के बाहर से लोग हर तरफ से आकर वहाँ इकट्ठा हो गये। अगले कुछ हफ्तों तक वहाँ जिस तरह की मीटिंगों का सिलसिला चलता रहा उसमें से पहली मीटिंग में दोपहर के दो बजे तक काग्रेस के लगभग २,००० वालंटियर गला फाड़-फाड़कर नारे लगा रहे थे। प्रधान मन्त्री—जो अभी तक प्रधान मंत्री थी—थोडी देर बोली, जिस तरह वह इसके बाद भी कई मौकों पर बोलीं। संजय शात भाव से देखता रहता, और जब अखबारवालो ने उसे घेरकर फैसले के बारे में उसकी राय पूछी तो उसने अनायास ही उसके भावनात्मक पहलू के बजाय उसके तकनीकी पहलू के बारे मे सोचा और कहा "अफसर ने (यशपाल कपूर ने) कहा कि उसने इस्तीफा दे दिया था। अब यह अदालत की मर्जी थी कि इस बात को माने या रद्द कर दे।"

अकेला यही दिन नही था जब श्रीमती गाधी ने अपने बेटे को अपने सरक्षक के रूप में पाया। उस दिन से २५ जून तक उसने जो कुछ किया, जनमत में उसने जो हलचल पैदा कर दी, उसी जन-समर्थन के दबाव की वजह से एक विवादास्पद रवैया एक अकाट्य सत्य में बदल गया—सत्ता पर अधिकार का उनका दावा। दोपहर तक काग्रेस के नेता बयानों पर दस्तखत कर चुके थे, अपीलें जारी कर चुके थे, श्रीमती गांधी में अपना पूरा विश्वास व्यक्त कर चुके थे और उसी दिन शाम को एक मीटिंग में इस सबकी पुष्टि भी कर चुके थे। उनके पद पर जो तात्कालिक खतरा मँडरा रहा था वह टल ही नही गया था, बल्कि वह बिलकुल खत्म हो गया था। जो संकेत मिलते थे उनमे बस कही-कही यह उम्मीद झलकती थी कि शायद वह अपने-आप ही पद छोड दें, लेकिन उन्हें इस्तीफा देने पर मजबूर करने का कभी किसी का कोई इरादा नही था। अगर उनके मन मे यह बात बैठ जाती कि उनके लिए इस्तीफा दे देना ही उचित है तो कोई उन्हें रोक नही सकता था। मैं समझती हूँ कि बीच-बीच मे वह जो इस्तीफा देने की बात करती थी वह सिर्फ इसलिए कि वह थाह लेना चाहती थी कि उनके साथी क्या महसूस करते हैं। उस दिन उनमें से जिसकी जैसी प्रतिक्रिया रही, बाद में उन्होंने उसी के हिसाब से उनके साथ बरताव किया।

लेकिन श्रीमती गाधी को इस बात का गुमान तक नही था कि नरम स्वभाव वाले सरदार स्वर्णसिंह उनके खिलाफ आकर और उन्हें नुकसान पहुँचाकर अपने पक्ष मे लोगो का समर्थन जुटायेंगे। उनके दिल में यह तमन्ना इस गलतफहमी की वजह से पैदा हुई थी कि वह इस्तीफा दे देंगी। श्रीमती गांधी ने उन्हें इस बात के लिए कभी माफ नही किया। लेकिन वह बरुआ के बारे मे ज्यादा चौकस थीं क्योंकि उनकी हरकतों के पीछे एक वामपंथी चाल थी; श्रीमती गाधी को यह अंदेशा था कि अगर उचित समय पर कोई विद्रोह हुआ तो बरुआ उसका केंद्र बन सकते है। जगजीवनराम पर भी श्रीमती गाधी को भरोसा नही था।

उस दिन शाम को पार्लियामेंट के सेंट्रल हॉल मे सिर्फ एक ही बात पर बहस हो रही थी।

"अगर वह निहायत शराफत के साथ हट जायें तो हर्ज ही क्या है ? बस एक

आदमी उनकी जगह ले सकता है और वह है बाबूजी या फिर चुनाव करा लें।"

जगजीवनराम के समर्थकों को पूरा यकीन था कि वह जीत जायेंगे। उन लोगों ने लोगों को इसके लिए राजी करने की मुहिम भी छेड़ दी थी, लेकिन वे काफी लोगों को अपने पक्ष में नहीं जुटा पाये। अगले दिन तक चारों तरफ यही नारा लगाया जा रहा था **'अदालत का फ़ैसला कुछ हो, श्रीमती गांधी प्रधान मंत्री रहेंगी।'** लेकिन कुछ समय के लिए या स्थायी दूसरे टिकाऊ हल ढूँढने की कोशिश की जा रही थी। आख़िरी फ़ैसले के लिए मामले को सुप्रीम कोर्ट के सामने पेश करने के लिए जब तक सुप्रीम कोर्ट कुछ और दिन की मोहलत की मंजूरी दे, तब तक के लिए श्रीमती गांधी अपने पद पर बनी रहें, सुप्रीम कोर्ट का फैसला आने तक वह कुछ समय के लिए अपने पद से हट जायें, या श्रीमती गांधी अपने पद से बिल्कुल ही हट जायें? जैसा कि लगभग आठ साल पहले १९६७ में हुआ था, तरह-तरह के सुझाव रखे जाते थे लेकिन सभी कांग्रेस संगठन की ऐसी दो चट्टानों में टकराकर चकनाचूर हो जाते थे, जो कि स्थायी दिखायी देती थीं। एक तो ऐसे लोगों की कमी जिनमें से नया नेता चुना जाये और दूसरे आत्म-विश्वास की कमी। जगजीवनराम ने कहा था कि वह पहल नहीं करेंगे, लेकिन चंद्रशेखर का साथ दे सकते हैं। चंद्रशेखर इस दुविधा में थे कि राजनीतिक दृष्टि से यह उचित होगा या नहीं। वामपंथी धारा में, बहुत बड़ी हद तक श्रीमती गांधी की वजह से, और उनकी आशंकाओं के बावजूद, फूट थी।

साठे ने बताया, "उस वक़्त हम लोग समझते थे कि पार्टी में फूट पड़ जायेगी। हममें से कोई भी यह नहीं मानता था कि फैसले में कोई दम है।"

"एक बार जब पंडितजी (जवाहरलाल नेहरू) इस्तीफा देना चाहते थे, तो सारे कांग्रेसी बौखला उठे थे, क्योंकि वे समझते थे कि उनके बिना कांग्रेस कुछ भी नहीं रह जायेगी," यूनुस ने पुरानी घटनाओं को याद करते हुए कहा, "उस वक़्त उनके इस्तीफा देने का मतलब होता एक ऐसे फैसले के सामने सर झुका देना जिसे हर आदमी गलत समझता था।"

लेकिन धवन की तरह, जिन्होंने कहा कि "उस दिन जो भी (प्रधान मंत्री की कोठी पर) आया उसने यही कहा कि उन्हें इस्तीफा नहीं देना चाहिए," चंद्रशेखर ने कहा कि "उस दिन जो भी वहाँ गया वह यही महसूस कर रहा था कि उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए, वे लोग भी जो कह रहे थे कि उन्हें इस्तीफा नहीं देना चाहिए।"

फिर उन लोगों ने अपनी बात खुलकर कही क्यों नहीं?

शायद इसके बारे में सबसे सही राय दिल्ली के एक पुराने कांग्रेसी नेता ने दी, जिन्होंने १९१९ में पहली बार कांग्रेस में आने के वक़्त से राष्ट्रीय राजनीतिक मंच के बहुत-से उतार-चढ़ाव देखे हैं। उनके भुलक्कड़पन की वजह से लोग उनका बहुत मज़ाक उड़ाते हैं, लेकिन इसके बावजूद वह इतने लोकप्रिय रहे हैं कि तिहत्तर साल की उम्र में वह दिल्ली प्रशासन के मुख्य कार्यकारी पार्षद चुने गये, जो पद राज्य के मुख्य मंत्री के पद के बराबर होता है। जिस दिन फैसला सुनाया गया उस दिन राधारमण[*] श्रीनगर में थे। यह ख़बर सुनकर उनका आचरण भी बाकी लोगों जैसा ही था।

"मुझे सुबह ११ बजे रेडियो पर खबर सुनकर इसका पता चला। सबसे पहले तो मेरे दिल को एक धक्का-सा लगा। मैं यह फैसला नहीं कर पाया कि उनके लिए इस्तीफा दे देना बेहतर होगा या अपने पद पर बने रहना। मैं सोच में

पड़ा हुआ था।"

इसके बावजूद उन्होंने टेलीफोन पर दिल्ली एक संदेश भेजा जिसमें कहा गया था . "इस नाजुक घड़ी मे श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व के बिना देश का काम नही चल सकता।" दूसरे कांग्रेसियों की तरह उन्हे भी सोचने के लिए वक्त चाहिए था। लेकिन दिल्ली पहुँचने पर उन्ही की तरह वह भी उन मीटिंगो की लहर मे बह गये जो श्रीमती गांधी के उन खुशामदियों ने, जो सिर्फ़ सत्ता की छाया मे पनप सकते थे, और उनके प्रति सच्चा उत्साह रखनेवालों ने लोगों को दूर-दूर से लाकर जुटायी थी, और इन सभी लोगों की एक ही रट थी . "रहना है, रहना है।"

"इसलिए सोचने-विचारने का वक्त तो बीत चुका था," राधारमण ने बड़ी निराशा के साथ कधे बिचकाकर कहा। "उस वक्त लोगों की जो राय थी और जो राय बनायी गयी थी उसकी हवा मे आधे लोग तो यकीनन बह गये। बाक़ी लोगो को पार्टी के टुकड़े-टुकडे हो जाने की चिंता लगी हुई थी। बहरहाल, लोकतन्त्र और है क्या ? अगर अस्सी फीसदी लोग एक तरह से सोचने लगें तो बाकी बीस फ़ीसदी क्या करें ? या तो वे छोड़कर चले जायें या फिर दबी जबान से अपनी बात कहें।"

पुराने जमाने के सभी लोगो की तरह 'दादा', जैसा कि राजनीतिक क्षेत्र के लोग, पत्रकार, उनके मित्र, सभी उनको कहते है, भी बहुत भावुक आदमी हैं। उनको पूरा यकीन था कि अगर श्रीमती गांधी ने जगजीवनराम से कुछ समय के लिए प्रधान मंत्री के पद का भार सँभाल लेने को कहा होता तो "वह पूरी तरह उनके वश मे हो जाते और उनके चरणो मे लोटने लगते।"

अपनी बात जारी रखते हुए उन्होंने कहा, "लेकिन उनको किसी पर भरोसा नही था। अगर उन्हे खुद अपने मंत्रियों पर, या उन पर भरोसा नही था, तो फिर तो.. ।"

"नही," एक और कांग्रेसी पी० एन० सिंह ने, जो उम्र मे उनसे बहुत छोटे लेकिन ज्यादा यथार्थनिष्ठ आदमी है, उनकी बात काटते हुए कहा, "अगर उस वक्त उन्होंने सत्ता की बागडोर अपने हाथों से छोड़ दी होती तो फिर वह कभी वापस नही आ सकती थी। उनका अंदाजा बिल्कुल ठीक था। कोई भी उन्हे वापस न आने देता।"

कर्णसिंह", जो उस समय श्रीमती गाधी के मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के मंत्री थे, और पहले कश्मीर के महाराजा रह चुके हैं, छियालिस वर्ष के, देखने में बहुत खूबसूरत और विचारों मे बहुत आदर्शवादी आदमी हैं। वह संस्कृत के विद्वान, कवि और गायक है। आजादी के बाद वह पहले आदमी थे जिन्होने अपनी इच्छा से देसी रजवाड़ों को मिलने वाला गुजारा-भत्ता लेना बद कर दिया था, हालाँकि उन्हें इस मद मे जितनी रकम मिलती थी उतनी कम ही लोगों को मिलती थी। उनके पीछे चूँकि इतने विश्वासपूर्ण और निःस्वार्थ राजनीतिक जीवन की पृष्ठभूमि थी, इसलिए शायद ऐसा समझना उचित ही था कि वह एक ऐसे कांग्रेसी थे जो खुले दिल से राय दे सकते थे। उन्होंने श्रीमती गांधी को पत्र लिखकर सुझाव दिया, "आप अपनी तरफ से इस्तीफा देने की बात कह दीजिये। फैसला राष्ट्रपति को करने दीजिये।"

उन्होने यह भी बताया, "हममे से बहुत-से लोग यही महसूस करते थे। सवाल यह नही था कि कानून की नजर से क्या बात सही थी। राजनीति मे

ज्यादा महत्त्व इस बात का होता है कि राजनीतिक दृष्टि से, बल्कि नैतिक दृष्टि से क्या ठीक है। १२ जून का दिन उनके जीवन में सचमुच एक अशुभ दिन था। उससे सारा परिवर्तन समझ में आ जाता है, जैसे बंदूक की नली जरा-सी घूम जाने से गोली बिलकुल ही दूसरी तरफ़ चली जाती है। उपनिषदों मे कहा गया है कि हर आदमी के सामने हमेशा दो रास्ते होते हैं, और हमेशा इनमे से एक रास्ता चुनने का क्षण आता है। उनके इस्तीफा न देने की वजह से ही उसके बाद की सारी घटनाएँ इस ढंग से हुईं।"

जब गुजराल ने चंद्रशेखर से १३ जून को प्रधान मंत्री के इस धर्मसंकट के बारे में उनकी राय जाननी चाही तो उन्होंने जवाब दिया : "श्रीमती गांधी के लोकतांत्रिक नेता रहने के दिन बीत गये। अब तो उन्हें डिक्टेटर बनकर रहना होगा।"

इन्दिरा गांधी खुद अपने प्रचार-तंत्र का शिकार हो गयी और विपक्ष की हालत उस शेर जैसी थी जिसके मुंह को खून लग चुका हो। पहली बार श्रीमती गाधी ने यह खतरा देखा कि उनसे उनकी सत्ता ऐसी परिस्थितियों में छिन जाये जिनमे वह जनता के सामने वोट के लिए जाकर अपनी पार्टी का या विपक्ष का मुकाबला न कर सकें—जैसा कि उन्होंने १९६९ और १९७१ मे किया था। और विपक्ष को भी बरसों तक निर्जन में भटकते रहने और शून्य में लड़ते रहने के बाद पहली बार सत्ता पर अधिकार करने की सभावना दिखायी दी थी। दोनो ही अधीर थे, एक चारों तरफ खतरों से घिरे होने के डर की वजह से जान की बाजी लगाकर मुकाबला कर रही थी और दूसरे को आशा की लहर ने लगभग उन्मत्त कर दिया था। अपनी कोठी के बाहर एक मीटिंग मे इन्दिरा गांधी ने कहा कि उनको बदनाम करने की जो मुहिम चलायी जा रही है उसे उन्होंने सिर्फ़ इसलिए बर्दाश्त किया क्योंकि वह सही रास्ते पर थी। उन्होंने आम आदमी के हित में ये सारे झूठ और ये सारी गालियाँ बर्दाश्त की थी। सवाल "इन्दिरा गांधी या कांग्रेस" को चुनने का नही था, जनता की सेवा करना उनका कर्त्तव्य था।

गुजरात की विधानसभा को भंग करा देने के बाद, जिसमे कांग्रेस का इतना विशाल बहुमत था कि १६८ मे से १४० सदस्य उसके थे, संगठन कांग्रेस के नेता मोरारजी देसाई शानदार सफलता की लहर के सहारे ऊपर चढते जा रहे थे। अहमदाबाद मे उन्होंने थाह लेने के लिए एक दाँव फेंका। उन्होंने कहा कि अगर जनता आग्रह करेगी तब भी वह किसी भी हालत में गुजरात के मुख्य मंत्री बनने को राज़ी नही होंगे, लेकिन अगर जनता चाहे कि वह प्रधान मंत्री बन जायें तो इसके लिए वह तैयार हैं...।"

संगठन के जनरल-सेक्रेटेरी और श्रीमती गांधी की सरकार के एक मंत्री, दोनों ही हैसियतों से उनके बहुत निकट रहकर काम करने के अपने अनुभव से निष्कर्ष निकालते हुए चंद्रजीत यादव कहते है, "इन्दिराजी के व्यक्तित्व में दो रवैयो का संगम है। लोकतंत्र मे वह बुनियादी तौर पर विश्वास करती हैं, लेकिन वह उसके नकारात्मक पहलुओं के बारे मे भी कोई हल खोजना चाहती थी—जरूरत से ज्यादा छूट और गैर-जिम्मेदारी से भरी आलोचना जो प्रगति में बाधा डालती है। उनके विचार स्पष्ट नही थे, इस गुत्थी को कैसे सुलझाया जाये इसके बारे में उनके मन मे हमेशा दुविधा रहती थी।"

विपक्ष ने १९७४ के बाद जो कुछ किया उसकी वजह से उनके लिए अपना

रास्ता चुन लेना यकीनन बहुत आसान हो गया।

गुजरात का आंदोलन उस वक्त शुरू हुआ जब दो बार अकाल पड़ चुका था और अन्न की स्थिति बहुत गंभीर थी, लेकिन बढ़ती हुई कीमतों के खिलाफ़ हिंसापूर्ण प्रदर्शनों का नेतृत्व छात्रों ने किया। उन्होंने नवनिर्माण समिति बनायी और विपक्ष की पार्टियों के समर्थन से 'गुजरात बंद' का संगठन किया। विपक्ष की पार्टियाँ बड़ी खुशी से इस आंदोलन में शामिल हो गयीं क्योंकि इसमें उन्हें शासक दल से मोर्चा लेने का एक आदर्श अवसर दिखायी दिया। छात्र तो केवल इतना चाहते थे कि चिमनभाई पटेल[11] का मंत्रिमंडल इस्तीफ़ा दे, लेकिन विपक्ष की पार्टियाँ विधान सभा को ही भंग कर देने की माँग करने लगीं। इस आंदोलन की वजह से चारों ओर इतनी अराजकता फैल गयी कि चिमनभाई पटेल को गद्दी छोड़नी पड़ी और ६ फरवरी १९७४ को वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। इसके बाद आंदोलन की राजनीति का एक उन्माद-भरा चित्र सामने आया। विपक्ष की पार्टियों के विधायकों से इस्तीफ़ा देने को कहा गया और कांग्रेस के विधायकों पर इसके लिए दबाव डाला गया। विधानसभा भंग कराने के लिए अनिश्चित काल के लिए अनशन करके मोरारजी देसाई ने नैतिक दबाव डालकर मजबूर कर देने का पहलू पैदा कर दिया।

जब प्रधान मंत्री ने यह माँग मान ली और विधानसभा १५ मार्च को भंग कर दी गयी तो जयप्रकाश नारायण ने महसूस किया, जैसा कि उन्होंने कहा भी, कि उनको अपना लक्ष्य प्राप्त करने का उचित साधन मिल गया था। "मैंने सहमति की राजनीति चलाने की कोशिश में दो वर्ष बेकार नष्ट किये। उसका कोई नतीजा नहीं निकला।...उसके बाद मैंने देखा कि गुजरात के छात्रों ने जनता के समर्थन से राजनीतिक परिवर्तन लाने में सफलता प्राप्त की है और मैं समझ गया कि यही सही रास्ता है।"[12]

जयप्रकाश नारायण ने बिहार को भी ऐसे ही आंदोलन का क्षेत्र बनाया, जहाँ के छात्रों ने भी जिंदगी की बुनियादी जरूरत की चीज़ें न मिलने के आधार पर एक विरोध-आंदोलन पहले से ही संगठित कर रखा था। गुजरात की तरह ही विपक्ष की जो पार्टियाँ इस आंदोलन में शामिल हुई वे थीं—भारतीय जनसंघ और उसके जुझारू कार्यकर्त्ता, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, संगठन कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी, चरमपंथी राजनीति को अपनाने वाले नक्सलवादी और आनंदमार्गियों जैसे धार्मिक सम्प्रदाय। लेकिन यहाँ सत्ता की खींचातानी ज्यादा प्रबल थी और विपक्ष की पार्टियों के विधायक भी इस्तीफ़ा देने के सुझाव के बारे में एकमत नहीं थे। कुल ३१८ विधायकों में से केवल बयालीस ऐसे थे जिन्होंने अपनी मर्जी से सत्ता का लोभ त्याग दिया।

लेकिन धीरे-धीरे उस साल के दौरान जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति की कल्पना के आधार पर, और तीन ठोस माँगों की बुनियाद पर, आंदोलन बढ़ता गया। यह माँगें थीं—चुनाव और शिक्षा की व्यवस्थाओं में सुधार और भ्रष्टाचार का खात्मा। जयप्रकाश नारायण ने कहा, "एक ही मिसाल ले लीजिये, चुनाव के खर्च का सवाल, जो राजनीति में भयानक भ्रष्टाचार का स्रोत है। काला बाजार चलाने वालों से चोरी की कमाई का करोड़ों रुपया जमा किया जाता है। इसका कोई हिसाब नहीं दिया जाता। कांग्रेस पार्टी के हिसाब में यह रकम कहीं दर्ज नहीं की जाती। किसी को यह भी पता नहीं चलता कि यह पैसा कैसे खर्च होता है और कौन खर्च करता है।"[13] जयप्रकाश नारायण चाहते थे कि

चुनाव का खर्च कम किया जाये ताकि गरीब उम्मीदवार को, एक मामूली किसान को, एक गरीब पार्टी के मामूली कार्यकर्त्ता को, सत्ता की सीढ़ी पर चढ़ने का मौका मिल सके। उन्होंने कहा कि उन्हें उम्मीद थी कि उनके पास "इन्दिरा जी का खत या तार आयेगा कि मेरा जैसा आदमी भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार है तो वह मुझे पूरा सहयोग देने को तैयार है।"[8]

लेकिन जयप्रकाश नारायण श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिले तो उनकी समझ मे नहीं आया कि क्या नतीजा निकालें। उन्होंने चंद्रशेखर से पूछा था, जो हमेशा बड़े तपाक से मिलते थे, कि हर उम्मीदवार को चुनाव पर कितना पैसा खर्च करना पड़ता है।

"सत्तर हजार," चंद्रशेखर ने कहा था।

"नही," इन्दिरा गांधी ने जयप्रकाश नारायण से कहा, "३०,००० रु० से ज्यादा नही खर्च होता।"

उन्होने एक बार फिर चंद्रशेखर से पूछा, उन्होंने एक बार फिर कहा कि ७०,००० ही खर्च होता है। जयप्रकाश नारायण ने दोनो हाथो से अपना सर पकड़ लिया और अस्फुट स्वर मे बोले, "उन्होंने मुझसे सरासर झूठ बोला।"

इस घटना को दोहराते हुए चंद्रशेखर ने कहा, "इसकी कोई जरूरत भी नही थी। ए० आई० सी० सी० का कोई भी सदस्य बता देता कि कितना पैसा खर्च होता है।"

बहरहाल इन्दिरा गांधी को यों भी जयप्रकाश नारायण के साथ सुलह-समझौते की बातचीत मे कोई खास दिलचस्पी नही थी। जब बिहार की विधान-सभा के सवाल का हल निकालने की बात आयी तो उन्होने जगजीवनराम को भी अपनी बातचीत मे शामिल कर लिया। उन दिनो की बातों को याद करते हुए चंद्रशेखर, जो शुरू से ही आपसी बातचीत की पैरवी करते आये थे, बताते है कि "इन्दिरा गांधी तो जयप्रकाश नारायण को बहुत शुबहे की नज़र से देखती थी और लगातार अपना रवैया बदलती रहती थी, लेकिन जगजीवनराम के दिमाग मे यह बात शुरू से ही बिलकुल साफ थी कि समझौते की बातचीत होनी चाहिए लेकिन जब बातचीत टूट गयी तो उसका दोष उनके मत्थे मढ दिया गया।" आम लोगों के सामने यह बात इस रूप में रखी गयी कि जगजीवनराम अपनी इस ज़िद पर अड़े रहे कि विधान-सभा कुछ समय के लिए स्थगित करके फिर से सक्रिय की जा सकती है, जबकि जयप्रकाश नारायण यह चाहते थे कि वह भंग कर दी जाये और नये चुनाव हों।

जयप्रकाश नारायण ने वापस जाकर एक इंटरव्यू में प्रधान मंत्री के साथ अपनी बातचीत के बारे मे बताया: "मैंने सुधार के कई सुझाव रखे थे, वरना मुझे अंदेशा था कि हालत ऐसी हो जायेगी कि चारों तरफ़ तबाही मच जायेगी; लेकिन मुझे बड़ी निराशा हुई।" उन्होने कहा कि इसका नतीजा यह हुआ कि दो बातें उनके मन मे पक्की तौर पर बैठ गयी, 'एक यह कि यह आंदोलन मेरे जीवन में निर्णायक महत्त्व रखता है और दूसरे यह कि आम जनता को शासन सत्ता के खिलाफ विद्रोह करना होगा...।'[9]

प्रधान मंत्री अब भी चुपचाप बैठी थी।

मार्च १९७४ मे सोशलिस्ट पार्टी के जार्ज फर्नांडीज[10] ने नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन रेलवेमैन को छोड़कर सभी ट्रेड यूनियनो के प्रतिनिधियो को लेकर रेलवे कर्मचारियों के संघर्ष के लिए एक राष्ट्रीय समन्वय समिति बनायी। नदय

यह था कि एक ऐसी रेल-हड़ताल संगठित की जाये जो "भारत के पूरे इतिहास को बदल दे और किसी भी समय रेल-यातायात को ठप करके इन्दिरा गांधी की सरकार को गिरा दे।"[१४] फर्नांडीज़ ने स्वयं ही इस बात की एक बहुत भयानक तस्वीर खींची थी कि इस तरह की हड़ताल का देश के अर्थतंत्र पर क्या असर पड़ सकता है।

"भारतीय रेलों की सात दिन की हड़ताल—देश का हर वह बिजलीघर जहाँ कोयला इस्तेमाल होता है, बंद हो जायेगा। भारतीय रेलों की दस दिन की हड़ताल—भारत में इस्पात का हर कारखाना बंद हो जायेगा और देश के उद्योग अगले साल भर के लिए ठप हो जायेंगे। एक बार जब इस्पात के कारखाने की भट्टी ठंडी हो जाती है तो उसे फिर से सुलगाने में नौ महीने लग जाते हैं। भारतीय रेलों की पंद्रह दिन की हड़ताल—देश भूखों मरने लगेगा।"[१५]

जब मई १९७४ में हड़ताल हुई तो सरकार की दमन शक्ति को अंतिम सीमा तक इस्तेमाल करके उसे बड़ी बेरहमी के साथ कुचल दिया गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। एक ही रास्ता था कि सारी माँगें मान ली जायें, लेकिन दुर्भाग्यवश, और जैसा कि हमेशा होता है, बेचारा (रेलवे) मजदूर दो युद्धरत शक्तियों के बीच फँसकर बुरी तरह दोहरी मार का शिकार हो रहा था। मुसीबतों तकलीफों और बेरहमी की दर्दनाक घटनाएँ सामने आ रही थीं। मिसाल के लिए, पुलिस एक मजदूर को पकड़कर ले गयी और बाकी पुलिस वालों ने, जो वहाँ रह गये थे, उसकी पत्नी के साथ बलात्कार किया। जब उसे पता चला कि उसके जारज सन्तान होने वाली है तो उसने जेल में अपने पति की रिहाई से पहले बच्चा गिरवाने की कोशिश की, लेकिन कोई डॉक्टर उसे हाथ लगाने को तैयार नहीं था। अंत में उसने आत्महत्या कर ली।

यह बहुत भयानक बात थी कि सामान्य स्थिति के दौरान, लोगों के हड़ताल करने के अधिकार को कुचलने के लिए कानून और सुव्यवस्था कायम रखने के नाम पर ऐसा किया गया; यह इस बात का भी संकेत था कि असामान्य परिस्थितियों में क्या हो सकता है। अच्छे शासन की पहचान है कि वह क्रूरता के बिना अनुशासन लाये; ऐसा लगता है कि कहीं भी कोई शासन ऐसा करने में सफल नहीं हुआ है। लेकिन तीन कारणों से इन्दिरा गांधी पर किसी तरह की आँच नहीं आने पायी: उनकी सत्ता को कोई ठेस नहीं पहुँची थी, उनकी साख अब भी बहुत ऊँची थी और उस वक्त तक, बहरहाल, अन्दर-ही-अन्दर लोगों के मन में यह इच्छा प्रबल होती जा रही थी कि देश के जीवन में विभिन्न मोर्चों पर कोई सख्त कदम उठाया जाना चाहिए।

इसके अलावा इन्दिरा गांधी यह खतरा भी नहीं झेल ले सकती थीं कि देश के अर्थतंत्र को, जिस पर यों ही पहले से बहुत बड़ा बोझ था, इतना गहरा आघात पहुँचे जैसाकि हड़ताल से निश्चित रूप से पहुँचता। गुजरात और बिहार में आंदोलन की लहर और आम विरोध के जयप्रकाश नारायण के नारे को देखते हुए यह भावना भी पैदा होती जा रही थी कि अगर और कुछ नहीं तो केवल अच्छे प्रशासन का ही यह तकाजा है कि श्रीमती गांधी की सरकार ज्यादा सख्ती से काम ले।

लेकिन उचित ढाँचे के बिना कुशल प्रशासन भी उतनी ही निरर्थक बात है जितनी सम्पूर्ण क्रांति। श्रीमती गांधी ने उस वक्त यह महसूस नहीं किया कि "एक बीस-सूत्री कार्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने" के लिए जनता को अपने

पक्ष में करना होगा; उधर जयप्रकाश नारायण ने भी इतना कहने के अलावा और कुछ नहीं किया कि अगर "गांधीजी कहते थे कि राष्ट्र के लिए एक कदम काफी है, तो हमारे लिए भी एक कदम काफी है। मैं गांधी तो नहीं हूँ लेकिन मैं भी यह नहीं चाहता कि बहुत बड़ा कार्यक्रम सामने रखूँ जिसे पूरा करने मे बहुत समय लग जाये।"[४] टक्कर होना अनिवार्य था। इन्दिरा गांधी ने जयप्रकाश नारायण की किसी भी माँग के बारे मे बातचीत करने से इंकार कर दिया, और उसके जवाब मे उन्होने भी चुनाव में अपनी किस्मत आज़माने के लिए अगले चुनाव तक इंतज़ार करने से इंकार कर दिया, जो डेढ साल बाद होने वाले थे।

जयप्रकाश नारायण की बगावत की बुनियाद यह थी कि अगर संसद या विधानसभा के लिए चुने गये सदस्य जनता का विश्वास खो दें तो उनकी अवधि पूरी होने से पहले ही जनता को उन्हे वापस बुला लेने का अधिकार है। श्रीमती गांधी महसूस करती थीं कि उनके साथ कोई काम की बातचीत नहीं हो सकती क्योंकि वह समझती थी कि जयप्रकाश नारायण क्रांति की आग को जनता के हित में नहीं बल्कि लोकतंत्र की संस्थाओं के खिलाफ भड़का रहे हैं। जयप्रकाश नारायण की दलील यह थी कि चुनाव की व्यवस्था की भी जड़ काट दी गयी है। बहुत पहले १९७३ में ही उन्होंने युवा पीढ़ी से 'यूथ फ़ॉर डिमॉक्रेसी' आंदोलन छेड़ने का अनुरोध किया था, लेकिन इसके साथ ही यह भी कहा था कि "स्वतंत्रता के बाद से जनता के लिए और लोकतंत्र की पूरी प्रक्रिया के लिए चुनाव अधिकाधिक निरर्थक होते जा रहे है।"[५] श्रीमती गांधी ने कहा कि जनता इस बात को खुद समझ सकती है कि हमारे मतदाताओ मे इतनी प्रौढ़ता है कि उन्होंने तीन राज्यों में, जहाँ उन्होंने चाहा, विपक्ष की सरकारें बनवायी, और उन्हें अपने इस अधिकार को इस्तेमाल करने से रोकने की कोई भी कोशिश नहीं की गयी है। इसके अलावा, आम चुनाव नियमित रूप से होते रहे है और अख़बारों को पूरी स्वतंत्रता है, उन पर किसी तरह का नियंत्रण नहीं है।

जहाँ तक श्रीमती गांधी का सवाल था, वह अब भी कोई सख्त कार्रवाई करना ज़रूरी नहीं समझती थीं।

जयप्रकाश नारायण १२ जून १९७५ तक उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, हैदराबाद, उड़ीसा, हरियाणा, मध्य प्रदेश, केरल, कर्नाटक और दिल्ली की चौबीस सार्वजनिक सभाओं मे पुलिस वालों और फ़ौज के सिपाहियों को ललकार चुके थे कि वे "ग़ैर-कानूनी आदेशो का पालन न करें।" उन्होंने शुरू में तो यह बात घुमा-फिराकर पटना के गांधी मैदान की एक मीटिंग मे ५ जून १९७४ को कही थी : "यह जनता का संघर्ष है। पुलिस वालों को भी बहुत कम तनख्वाह मिलती है। उन्हें महीने मे तीन या चार या पाँच सौ रुपये मिलते होंगे। लेकिन कुछ समय पहले के मुकाबले में अब रुपया बीस पैसे के बराबर रह गया है। उन लोगों को भी अपने परिवार का पेट पालना है, अपने बच्चों को पढ़ाना है, अपनी बेटियों की शादियाँ करना है। क्या वे इन बातो को नहीं समझते ? वे हुक्म ज़रूर मानें। अगर कोई हिंसा या तोड़-फोड़ करे तो वे उसे ज़रूर गिरफ़्तार करें। लेकिन उन्हें लोगों पर अंधाधुंध गोली नहीं चलाना चाहिए।"[६] १८ जून तक उन्होंने यह कहना शुरू कर दिया था कि अगर शासक पार्टी के आदेश जनता को संविधान मे दिये गये अधिकारों के खिलाफ़ हों तो उन्हें उन आदेशो को पूरा करने में अपने विवेक से काम लेना चाहिए।

जयप्रकाश नारायण ने यह नहीं बताया कि कोई सिपाही यह फ़ैसला किस

वक्त और कैसे करे कि कोई आदेश संविधान के अनुकूल है या नहीं। इस सुझाव का मतलब यह था कि शासन के अलग-अलग साधनों को अपनी अलग एक अधिकार-सत्ता हो जायेगी जो नीति-निर्धारक कार्यपालिका की सत्ता से स्वतंत्र होगी। अगर ऐसा हो जाता तो इसका कोई भरोसा नहीं था कि यह नयी अधिकार-सत्ता संविधान की रक्षा करने की आड़ में कार्यपालिका की सत्ता का तख्ता नहीं उलट देगी।

क्या जयप्रकाश को भारतीय मतदाता की क्षमता पर इतना भरोसा नहीं था कि वह किसी पार्टी की उस कार्यपालिका को सत्ता से हटा देगा जो उसके हित के खिलाफ काम कर रही हो? राज्यसत्ता के प्रभाव और पैसे की ताक़त के लगातार बढ़ते हुए तंत्र के बावजूद मतदाताओं ने १९६७ में भारत के आधे राज्यों में कांग्रेस को हटा दिया था और जब वे विपक्ष की मिली-जुली सरकारों से भी निराश हो गये तो फिर कांग्रेस को वापस ले आये थे; और जहाँ उन्होंने चाहा वहाँ विपक्ष की सरकारें चलने भी दीं—केरल में, तमिलनाडु में और बाद में गुजरात में। उनमें काफी समझ-बूझ थी कि केन्द्रीय पार्टी की हैसियत से तो उन्होंने कांग्रेस का समर्थन किया, लेकिन प्रदेशों के चुनावों में उसे उखाड़ फेंका।

इस बात की कोई वजह समझ में नहीं आती कि जयप्रकाश नारायण ने जनता को इस बात के लिए क्यों नहीं उभारा कि वह अपने हितों को एक जगह इकट्ठा करें, अपनी सारी शिकायतों को एक जगह जमा करें, सब लोग मिलकर एक मजबूत ताकत बन जायें और १९७६ में जब चुनाव हों तो वोट के बल पर कांग्रेस को हटा दें। उन्होंने कांग्रेस और इन्दिरा गांधी के विकल्प के रूप में कोई ठोस व्यावहारिक कार्यक्रम भी नहीं रखा। या तो उनको अपने-आप पर और जनता पर इतना भरोसा नहीं था, या फिर इतना धीरज नहीं था कि चुनाव की लड़ाई में राष्ट्र का नेतृत्व कर सकें। लेकिन उनका अपना एक दृष्टिकोण जरूर था, जो एक ऐसे देश की राजनीतिक स्थिति से ही उभरा था जिसमें एक ही पार्टी ने लगातार उनतीस साल तक शासन किया था, और इतने दिनों तक सत्ता की बागडोर सँभाले रहने की बदौलत उसमें न केवल स्थायित्व आ गया था बल्कि बहुत-सी बुराइयाँ भी पैदा हो गयी थीं। वह अधीर होकर पूछते, "भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और गरीबी के खिलाफ लड़ने के लिए जनता क्या कर सकती है, युवक क्या करें? अगले चुनाव तक चुपचाप इंतजार करते रहें? लेकिन अगर इसी बीच हालत बर्दाश्त से बाहर हो जाये तो फिर जनता क्या करे? हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहे और चुपचाप अपनी मुसीबतें बर्दाश्त करती रहे? यह लोकतंत्र की वह तस्वीर होगी जो श्रीमती गांधी के दिमाग में है: कब्रिस्तान की शांति।"

अगर जयप्रकाश नारायण ने एक परिपक्व होते हुए लोकतंत्र की दूसरी, कम तेज रफ्तार से चलने वाली कार्यनीति अपनायी होती तो इन्दिरा गांधी कुछ भी नहीं कर सकती थीं। १९७४ में वह कमजोर थीं। एक पुराने कांग्रेसी ने विश्लेषण करते हुए बताया: "खेती की जमीन की हदबंदी, संपत्ति के अधिकारों की व्यवस्था में हेर-फेर, सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, टैक्स की दर—ये सब ऐसे सवाल थे जिनका निहित स्वार्थ वाले सम्पन्न वर्गों पर ऐसा प्रभाव पड़ रहा था कि उन्होंने महसूस किया कि अगर उन्होंने उसी वक्त हमला न किया तो मौका उनके हाथ से निकल जायेगा। इसके साथ ही बढ़ती हुई कीमतों की वजह से गरीब लोगों में भी असंतोष पैदा हो रहा था।"

आर्थिक क्षेत्र में किये जाने वाले उपायों के सिलसिले में श्रीमती गांधी ने

जितनी भी टालमटोल की, जिसका हवाला ए० एम० खुसरो[43] पहले दे चुके है, लेकिन "एक मामले मे उन्होंने कोई झिझक नही दिखायी, और वह यह था कि १९७३ के अन्त मे और १९७४ के पूरे साल के दौरान मुद्रा-स्फीति को काबू में रखने की नीतियों के मामले में उन्होंने बहुत दृढ़ नेतृत्व प्रदान किया।" अचानक उन्होने लोगो की राय जमा की (डॉ० वी० के० आर० वी० राव[44] के जरिये, जिन्होंने पांच दूसरे अर्थशास्त्रियो के साथ मिलकर, जिनमें खुसरो भी एक थे, **मुद्रा-स्फीति और आर्थिक संकट**[45] नामक एक किताब लिखी थी), कैबिनेट की मीटिंगे की, विश्लेषण मे स्वयं सक्रिय रूप से भाग लिया और रिज़र्व बैंक, वित्त-मन्त्रालय तथा सरकार के दूसरे संगठनों के लिए नीति सम्बन्धित मार्ग-दर्शक निर्देश तैयार किये।

डॉ० खुसरो ने सचमुच इसकी धाराप्रवाह प्रशंसा की . "एक बार तो नीति मे आश्चर्यजनक दृढ़ता और सुसंगति आ गयी। उस समय उद्देश्य था चीजों की मांग को क़ाबू मे रखना, क्योंकि उस साल फसल खराब होने की वजह से चीजों की सप्लाई बढ़ायी नहीं जा सकती थी। इसलिए हमने ऋण देने पर अंकुश लगाया, ब्याज की दर बढ़ा दी गयी—इस तरह व्यापारियों की ऋण की मांग को सीमित कर दिया गया, केन्द्रीय सरकार के खर्च में बहुत कटौती की गयी, राज्यों को रिजर्व बैंक से पेशगी रकम देने का सिलसिला बंद कर दिया गया, अतिरिक्त वेतन तथा मज़दूरी सरकार के पास रोक रखने के अध्यादेश जारी किये गये मुनाफे मे कटौती के अध्यादेश जारी किये गये, इस्पात की दोहरी कीमतें निर्धारित की गयी और मांग को सीमित रखने के लिए और भी कितने ही उपाय किये गये। नतीजा यह हुआ कि कीमतों में आश्चर्यजनक ठहराव आ गया, कीमतों मे पच्चीस प्रतिशत की रफ्तार से होने वाली वृद्धि बिलकुल रुक गयी और कीमतें स्थिर हो गयी। इनसे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित दूसरी नीतियां भी अपनायी गयी, जैसे काले धन पर हमला, छिपा धन निकलवाने के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी दौलत बता देने की योजना और जखीरेबाजों और तस्करों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई।"

मैंने पूछा, "इन सब बातों को मिलाकर क्या आप यह नही कहेंगे कि ये नीति के क्षेत्र मे बहुत बड़े नये कदम थे ?"

"नही, दरअसल ऐसा नही है। नेहरू के दौर के शुरू मे जो ढर्रा बनाया गया था उसी को अपनाया जा रहा था।"

प्रधान मंत्री के मुख्य प्राइवेट-सेक्रेटरी का इसके बारे मे यह मत नही था। पी०एन० धर ने कहा कि श्रीमती गांधी को "अर्थतंत्र को पश्चिमी देशों के ढंग पर बंधन से मुक्त कर देना पड़ा।" उन्होने इस बात की पुष्टि की कि छः अर्थशास्त्रियों के दल ने जिन नीतियों का सुझाव दिया था उनके लिए यह ज़रूरी था कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के साथ सम्बन्ध रखने की आवश्यकताओं को पूरा कर सके ताकि कोई वित्तीय सहायता या ऋण दिये जाने से पहले अर्थ-व्यवस्था का स्थायित्व सुनिश्चित हो। जेरेमिआह नोवाक के अनुसार, "भारत को सहायता देने वाले पश्चिमी देशो का गँठजोड़, कुछ हद तक डैनिएल मोयनिहान के उकसाने की वजह से, इस बात पर अड़ गया कि श्रीमती गांधी अपनी अर्ध-समाजवादी नीतियों को त्याग दें (कम्युनिस्ट भी उनकी १९७४ से पहले की नीतियों को 'अर्ध-समाजवादी' कहते थे) और अधिक 'पश्चिमी ढंग की नीतियां' अपनाये—ऐसी नीतियां जो इस गँठजोड के सदस्यों के स्वभाव के अधिक अनुकूल हों क्योंकि वे सभी पश्चिमी प्रवृत्ति के है।"[46]

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने १ मई १९७४ को कहा कि वह इस बात पर सहमत हो गया है कि "मुद्रा-स्फीति की रफ्तार को कम करने, भुगतान के संतुलन को और अपनी पूरी अर्थ-व्यवस्था को आयात मूल्यों में हाल में होने वाली वृद्धियों के अनुरूप ढालने और आर्थिक विकास की संतोषजनक रफ्तार प्राप्त करने के उद्देश्य से बनाये गये कार्यक्रमों को सहारा देने के लिए" भारत सरकार २३ करोड ५० लाख एस० डी० आर० (स्पेशल ड्राइंग राइट्स—धन प्राप्त करने के विशेष अधिकार, जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से विभिन्न देशों को दी जाने वाली धन-राशि की इकाई है—अनु०) खरीद सकती है।" उन छः अर्थशास्त्रियों में से एक सी० एच० हनुमंतराव[11] के अनुसार, वी० के० आर० वी० राव और पी० एन० धर ने मिलकर जो आर्थिक सुझाव तैयार कराये थे उनका उद्देश्य वास्तव में भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के साथ बातचीत करने का आधार तैयार करना था।

नोवाक का तर्क यह है कि अप्रैल १९७४ में श्रीमती गांधी ने बंगलौर में अपने भाषण में अर्थतंत्र को स्थायित्व प्रदान करने के कुछ सुझावों की जो घोषणा की थी "वह एक शुरुआत तो थी लेकिन बाद में उन पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी।" उसके बाद जो विभिन्न कल्याणकारी उपाय किये गये उनका निहित स्वार्थ वाले सम्पन्न वर्गों की ओर से जबर्दस्त विरोध किया गया और यह कि तस्करों तथा जखीरेबाजों जैसे समाज-विरोधी तत्वों के खिलाफ जो मुकद्दमे दायर किये गये थे उन्हें अदालतों ने कानूनी बारीकियों की बुनियाद पर इस तरह खटाई में डलवा दिया कि श्रीमती गांधी को इमर्जेंसी का सहारा लेना पड़ा ताकि वह भारत के आर्थिक पुनरुत्थान का कार्यक्रम पूरा कर सकें।

मुहम्मद यूनुस कहते हैं, "अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की बात तो मैं नहीं जानता लेकिन उस वक्त जो कानून थे उनकी मदद से हाजी मस्तान[12] को कोई भी काबू में नहीं कर सकता था। अगर कानूनों को नहीं बदला जा सकता था तो इमर्जेंसी लागू करना जरूरी था। मुझे इमर्जेंसी के दौरान भारत के भूतपूर्व चीफ जस्टिस सीकरी[13] के साथ एक बातचीत की याद आती है। किसी ने उनसे पूछा कि आर्थिक अपराधियों से निबटने का क्या कोई दूसरा रास्ता हो सकता था। उन्होंने कहा था, 'कोई नहीं, आप उनको पकड़ ही नहीं सकते थे। कानून इसकी इजाजत ही नहीं देता था। वह दूसरे ही दिन रिट दायर करके या स्टे-ऑर्डर लेकर छूट सकते थे।'"

जैसा कि नोवाक कहते हैं, यह अलग सवाल है कि अर्थतंत्र को तेजी से अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के बताये हुए रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए श्रीमती गांधी को मजबूर होकर यह कदम उठाना पड़ा था या नहीं। नोवाक ने सुप्रीम कोर्ट में चुनाव के मुकद्दमे में श्रीमती गांधी की तरफ से सफाई के वकील अशोक सेन का हवाला दिया है कि उन्होंने कहा कि "अदालत में जो मुकद्दमा चल रहा था वही श्रीमती गांधी के दिमाग में सबसे ज्यादा छाया हुआ था, लेकिन कुछ दूसरी बातें भी थीं जिनकी वजह से उन्हें पूरा यकीन हो गया कि इमर्जेंसी लागू करना जरूरी है।"[14]

वाई० बी० चह्वाण, जो भारत के वित्त-मंत्री की हैसियत से इन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ बातचीत करते थे, यह महसूस करते हैं कि कर्ज देते समय दुनिया के किसी भी हिस्से का कोई भी मुद्रा-संबंधी संगठन अपने कुछ सुझाव रखता है और कुछ आश्वासन चाहता है। लेकिन सच तो यह है कि विकासशील देशों को

ब्याज की सुविधाजनक दर पर कर्ज देने के सवाल पर और उन्हे धन प्राप्त करने के विशेष अधिकार (एस० डी० आर०) के बारे मे इन संस्थाओ के खिलाफ बाकायदा एक जिहाद चलाया गया। चह्वाण ने कहा, "भारत,में सबसे बडी समस्या बढती हुई कीमतों की थी। कीमतें १९७४ में संसद के मानसून अधिवेशन के बाद ही गिरने लगी थीं, जब हमने पूरक बजट पेश किया था, जबरी बचत योजना लागू की थी और छः अर्थशास्त्रियो ने एक समवेत आर्थिक कार्यक्रम रखा था। मुझे याद है कि जब मैं ८ या ९ अक्तूबर को विदेश-यात्रा से लौटा तो हवाई अड्डे पर ही मुझे जो खबर दी गयी वह यह थी कि कीमतें गिर गयी हैं।" वह नही समझते कि इमर्जेंसी लागू किये जाने का अंतर्राष्ट्रीय दबाव के साथ कोई संबंध है। उन्होने बहुत दावे के साथ कहा, "श्रीमती गांधी के बारे मे और चाहे जो कुछ कहा जाये, लेकिन वह किसी भी तरह के दबाव मे आने वाली नही हैं।"

सच तो यह है कि अगर कडी कार्रवाई करने की बात सोचने का कोई वक्त था तो वह मई १९७४ में था, जब तीन बातें पूरे जोरों पर काम कर रही थी—रेलवे हड़ताल का खतरा, जयप्रकाश नारायण के आंदोलन का खतरा, और अर्थ-तंत्र को सुधारने के बारे मे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझाव जिन्हें एक तरह की धमकी भी कहा जा सकता है। लेकिन इन तीनों ख़तरों के मिल जाने से भी उनकी निजी साख के लिए कोई खतरा पैदा नही होता था। और जब तक इस तरह का कोई ख़तरा पैदा न होता तब तक उनका व्यवहार बिलकुल सामान्य रहता।

सच पूछा जाये तो १२ जून १९७५ तक इन्दिरा गांधी ने उस आखिरी हद तक अपने को काबू में रखा जिसकी कि आप किसी भी लोकतंत्रवादी नेता से आशा कर सकते हैं।

उस समय भारत में जिस तरह का समाज था उससे ज्यादा स्वतंत्र समाज की कोई कल्पना भी नही कर सकता। खुलेआम, घरों में बैठकर, अखबारो में और किसी गाँव या शहर में सरे-बाज़ार राजनीतिक नेताओं या सरकारी अफसरों को बे-रोकटोक गालियाँ दी जा सकती थीं। एक तरफ बांगलादेश की लड़ाई के बाद वाले स्वर्ण-युग मे इन्दिरा गांधी को देवी के समान पूजा जाने लगा था क्योंकि उस वक़्त हर हिंदुस्तानी गर्व से अपना सर ऊँचा करके चल सकता था, लेकिन दो साल तक लगातार अकाल पड़ने की वजह से जब अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और कीमतें चढने लगी तो उन्ही पर गालियों की बौछार होने लगी। अगर उन्होने अपनी सत्ता के आधार पर जो विकल्प उनके सामने थे उनका फायदा अपनी पार्टी के अंदर या देश के बाहर उठाने की कोशिश की तो उनको राजनीति मे अनैतिक आचरण के लिए लताड़ा गया। उस समय देश मे ८३५ अखबार और १३९२५ पत्रिकाएँ थीं जिन्हें इस बात की पूरी आज़ादी थी कि जिसे चाहें गाली दें, जिस पर चाहे कीचड उछालें, जिसकी चाहें तारीफ करें, या जिसे चाहें आसमान पर चढा दें। मानहानि के कानून ऐसे हैं और अदालत की कार्रवाई इतनी लंबी और महँगी है कि ज़बानी गाली या छपी हुई गाली के लिए कोई किसी पर आसानी से मानहानि का दावा दायर नही कर सकता।

इस बात के बावजूद कि श्रीमती गांधी के मन मे देश की अदालतों की भूमिका के बारे मे कुछ संशय थे—जिसके बारे में वह कितनी ही बार यह दलील दे चुकी थी कि उनकी भूमिका को बदलते हुए समाज के तकाजों के साथ मेल खाना चाहिए—और अप्रैल १९७३ में सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों का हक" मारकर चीफ जस्टिस की नियुक्ति की वजह से श्रीमती गांधी पर कानून की अनुल्लंघनीय पवित्रता

ते कायम न रखने का जो कलंक लगाया गया था उसके बावजूद उन्होंने कानून की मर्यादा का इतना सम्मान किया कि वह अपने खिलाफ मुकद्दमे में दस घंटे तक गवाही देने के लिए इलाहाबाद हाईकोर्ट में हाजिर हुईं।

यों तो इसके बारे में **न्यूयार्क टाइम्स** ने जो संपादकीय लिखा था उसमें दूसरी बातों की बुनियाद पर उनकी आलोचना की थी पर इस पहलू के बारे में उसने लिखा था "जिस अदालत ने उन्हें अब चुनाव के कानून तोड़ने का दोषी ठहराया है उसके सामने खुद अपनी सफाई में पेश होकर श्रीमती गांधी ने इस सिद्धांत को पूरी तरह मान लिया है कि एक स्वतंत्र समाज में कोई भी कानून से परे नहीं है। अगर सुप्रीम कोर्ट ने भी, जिसके सामने वह अपील करेंगी, इस अदालत के फैसले को उचित ठहरा दिया तो इसी सिद्धांत के अनुसार प्रधान मंत्री इस फैसले को मानने पर बाध्य हो जायेंगी, जिसका तकाजा यह होगा कि वह अपने पद से इस्तीफा दे दें।"

इस सबसे बढ़कर, उन्होंने खुद लगातार जनता के बीच भाषण देने की एक जबर्दस्त मुहिम चलायी, जिसने आम जनता को यह महसूस करने की प्रेरणा दी कि उसका महत्त्व क्या है, उसमें अपने अधिकारों की चेतना पैदा की और उसके मन में यह बेचैनी पैदा की कि हालत जैसी है वैसी नहीं रह सकती। हम चन्द्रशेखर की इस बात से सहमत हो सकते हैं कि इन्दिरा गांधी कभी भी उस यथास्थिति से खुली टक्कर लेने की शुरुआत करने को तैयार नहीं थीं। या हम कर्नाटक के मुख्य मंत्री देवराज अर्स की भी बात मानने को तैयार हैं जिन्होंने कहा था: "१९७१ में जब इन्दिराजी के नेतृत्व में पार्टी चुनाव के मैदान में उतरी उस वक्त उसकी साख थी। एक तरफ सिंडीकेट था, दूसरी तरफ प्रगतिशील थे। हमने उस वक्त दस-सूत्री कार्यक्रम अपनाया था। लोग यह विश्वास करते थे कि कांग्रेस परिवर्तन लाने का साधन है, कि अमीरों और गरीबों के बीच जो अंतर है उसे वह दूर करेगी, और सभी को सामाजिक न्याय मिलेगा। १९७२ के चुनावों के बाद हमने दस-सूत्री कार्यक्रम को और मजबूत किया, लेकिन जो अगली सूत्र थे वे कभी सामने आये ही नहीं—वे तो इमर्जेंसी के दौरान ही सामने आये। शायद इसके बीच के दौर में केन्द्र ने इसकी जरूरत नहीं समझी। हम निश्चिन्त हो गये, हमने जो वादे किये थे उनकी ओर हमने पूरी तरह ध्यान नहीं दिया। हम इतने बरसों तक आखिर चुप क्यों रहे? हमने समाजवाद को अपनाया है। यह बहुत कठिन मार्ग है। हम अब बहुत दिन तक यह दोमुंही चाल नहीं चल सकते। हम यह नहीं कह सकते कि अमीर के भी साथ रहें और गरीब के भी साथ रहें। अब सब इसका महसूस कर रहा है कि हम दोनों को एक ही पलड़े में रखने आये हैं।"[16]

लेकिन इन्दिरा गांधी तमाम वक्त, और बड़े विस्तार के साथ, हर शहर और हर गांव में, भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इसी की चर्चा चलती रहीं। भले ही यह सच है कि वह इस कार्यक्रम को उसकी सर्वांगीण परिणति तक नहीं ले जाना चाहती थीं और सामाजिक ढांचे को नहीं बदलना चाहती थीं, लेकिन उन्होंने भारत के गरीब लोगों के विशाल समुदाय को यह महसूस करा दिया कि भविष्य की संभावनाओं में उनका भी कुछ दांव पर लगा हुआ है। यह बात कि बाद में चलकर इसी अपार समुदाय ने न केवल इन्दिरा गांधी का बल्कि [illegible] [illegible] उनके शासन का एक [illegible] तख्ता उलट दिया जब उन्होंने सत्ता के [illegible] सभी [illegible] [illegible] थे, इस बात का सबूत है कि इमर्जेंसी से पहले उनके दस वर्ष के शासन ने लोगों को राजनीतिक रूप से सजग करने में इतना योगदान किया था

कि उन्होंने साहस तथा विवेक के इस उन्मादपूर्ण प्रयोग को आजमाने की अपनी क्षमता का परिचय दिया।

एक गरीब आदमी के लिए इस बात का कितना महत्त्व होता है कि कोई उसकी बात करे, इसका अंदाज़ा मुझे उस समय हुआ जब मैंने एक घरेलू नौकर से उस समय जब वह जून के चुनाव में वोट देने जा रहा था यह पूछा कि वह किसे वोट देगा। उसने अस्फुट स्वर में उत्तर दिया "मैं क्या जानूं, आप ही बता दीजिये न ?" मुझे उसकी इस दुविधा पर बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि अभी तीन ही महीने पहले वह जनता पार्टी का बहुत जोशीला समर्थक था। मैंने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?" उसने बहुत निराश भाव में उत्तर दिया, "बात यह है कि ये लोग इतने दिन से सरकार चला रहे हैं। इनमें से किसी ने हम गरीब लोगों की बात भी नहीं की है।" उसने वोट जनता पार्टी को ही दिया, लेकिन टूटती हुई आस्था के साथ। इसके विपरीत श्रीमती गांधी ने 'दबे-कुचले लोगों को', गरीबों को और 'समाज के पिछड़े हुए हिस्सों को' बचाने के अपने दावे की ऐसी हवा बांध रखी थी कि उनके प्रति इन लोगों की आस्था कई वर्ष बाद इमर्जेंसी के अत्याचारों के बाद ही जाकर टूटी।

वह कम्युनिस्ट पार्टी को भी रास्ते पर लगाये रखने में सफल रहीं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दिल्ली राज्य कौंसिल के सेक्रेटरी प्रेमसागर गुप्ता" ने कहा, "समाजवाद के लिए पहले यह ज़रूरी है कि बहुत विकसित स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था हो, जिसका मतलब है कि मशीनें बनायी जायें, और उन मशीनों से दूसरी मशीनें बनायी जायें, भारी और बुनियादी महत्त्व के उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना हो—इसीलिए हमने नेहरू का समर्थन किया था। श्रीमती गांधी ने भी वही बुनियादी दिशाएँ अपनायीं। १९६९ में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से यह उम्मीद बँधी थी कि पूँजी की ताकत की इजारेदारी की बुनियाद पर चोट पड़ेगी, लेकिन शर्त यह थी कि ऋण देने की नीति बदली जाये। रजवाड़ों का गुजारा-भत्ता बंद हो जाने से दूसरों के बल पर पनपने वाली सामंती व्यवस्था की बुनियादों को आघात पहुँचा। वह अदालतों के अधिकारों को बदलने के लिए संविधान में संशोधन करना चाहती थीं, ताकि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या प्रगतिशील ढंग से की जा सके। ये ऐसी नीतियां थीं जो हमारी राय में सही थीं। उन्होंने एक सामंती समाज को पूँजीवादी समाज में बदलने की कोशिश करने के लिए तो आवश्यक कदम उठाये, पर उन्होंने पूँजीवाद से समाजवाद की ओर अगला कदम कभी नहीं उठाया।"

उस वक़्त तक इन्दिरा गांधी की राजनीतिक चेतना इतनी तेज़ और संवेदनशील थी कि वह जनता के तेवर में छोटे-से परिवर्तन को फौरन भाँप लेती थी—यही वजह है कि कांग्रेसी लोग बार-बार बड़ी प्रशंसा के भाव से यह कहते हुए पाये जाते थे कि "इन्दिरा जी का हाथ जनता की नब्ज़ पर है।" वह जानती थीं कि भारत में सत्ता अपने हाथों में रखने के लिए वामपंथी रूप धारण करके ही जनता का समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि उन्होंने इतना ध्यान देकर अपना यह रूप लोगों के सामने रखने की कोशिश की।

शायद इन्दिरा गांधी खुद भी नहीं जानती थीं कि वह एक ऐसा दानव खड़ा कर रही हैं जिसे वह काबू में नहीं रख पायेंगी। शायद वह सोचती भी रही हों कि वह उसे काबू में रख सकेंगी और समय-समय पर शांत रखने के लिए उसे बहलाती रहेंगी और उसके मन में आशाएँ ही नहीं बल्कि कुछ भ्रम भी बनाये

रखेगी। इससे हम यही नतीजा निकालने पर मजबूर हैं कि जो सिद्धांत एक आदर्श सामाजिक-लोकतंत्रवादी का पथ-प्रदर्शन करते हैं उन पर वह उस समय तक सहर्ष चलने को तैयार थीं जब तक कि कोई उन्हें अपनी मर्जी से चलने दे; उनका दूसरा चेहरा तभी सामने आता था जब उन्हें कोई चिंता घेर लेती थी।

१२ जून के बाद उन्होंने महसूस किया कि उन पर चारों ओर से हमला किया जा रहा है, जो दिन-ब-दिन उनके निकट आता जा रहा है। सबसे पहले तो उन्हें हमेशा से इस बात का आभास था कि भारत एक-न-एक दिन अंतर्राष्ट्रीय ताकतों की खींचातानी का शिकार हो जायेगा और उनको उसका निशाना बनाया जायेगा। अंत में जब वह हार गयीं तो उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कांग्रेस में अपने साथियों से कहा, "जो कुछ हुआ है उसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है। मैं आप लोगों को हमेशा चेतावनी देती आयी थी कि कुछ ऐसी ताकतें हैं जो हमें काम नहीं करने देंगी, और अगर वे हमें नष्ट न भी कर पायें लेकिन कमजोर तो कर ही देंगी। कभी-कभी यह बात बहुत स्पष्ट नहीं होती है, और हमेशा ही बहुत गूढ़ रहती है। शायद यह अनिवार्य हो या कि ये सफल हो जायें। अगर इसमें हमने भी उनकी कुछ मदद की हो तो मुझे मालूम नहीं।"

इसके अलावा देश में विपक्ष की भी पार्टियां थीं, जिनका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण जैसा प्रतिष्ठावान आदमी कर रहा था। ये पार्टियां आपस में एक ताकतवर राजनीतिक दल का रूप धारण करती जा रही थीं, जिसके बारे में वह महसूस करती थीं कि उसका एकमात्र उद्देश्य उन्हें हटाना है। इन पार्टियों की विचारधारा एक-दूसरे से उतनी ही अलग थी जितनी कि उनकी वर्ग-संरचना, फिर भी गुजरात में उन्होंने मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता मोर्चे के रूप में एकताबद्ध होकर मई में कांग्रेस को चुनाव में हरा दिया था। यह इस बात का काफी स्पष्ट प्रमाण था कि अगर आम चुनाव भी हो तो भी विपक्ष के जीतने की संभावना उतनी ही है जितनी कि शासक दल के जीतने की, शर्त केवल यह है कि वह जनता को अपने चारों ओर जुटा सके। लेकिन उनमें उचित समय तक इंतजार करने का आत्म-विश्वास पैदा करने के बजाय गुजरात के चुनाव ने विपक्ष की सत्ता की प्यास को और भड़का दिया।

इसमें जितनी भी पार्टियां शामिल थीं उन्होंने पहले ही से फैसला कर लिया था कि वे विधानसभा, चुनाव, आंदोलन और रचनात्मक कार्य के मोर्चों पर भर-पूर दबाव डालेंगी। सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष जार्ज फर्नांडीज का यह मत था कि "संसदीय प्रणाली की अंदर से सुधार करने और नवोत्थान की क्षमता चूंकि बेहद सीमित होती जा रही है इसलिए संविधान की परिधि के बाहर कोई कार-वाई और जनता की पहलकदमी नितांत आवश्यक हो गयी है।" भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के ई० एम० एस० नंबूदिरीपाद ने कहा कि "मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और दूसरी वामपंथी पार्टियां इस बात को समझती हैं कि हमारे देश के सामने जो समस्याएं हैं उन्हें केवल चुनावों से और संसदीय मंच पर काम करके नहीं हल किया जा सकता। ठीक यही वजह है कि वे इस सिद्धांत को नहीं मानते कि हर समस्या को केवल संविधान में बताये गये तरीकों से हल किया जाना चाहिए।" फिर भारतीय जनसंघ के अटलबिहारी वाजपेयी की वक्तृता की प्रबल धारा थी—"सत्तारूढ़ नेतृत्व संसदीय प्रणाली को अपनी दूषित योजनाओं की रक्षा करने के लिए केवल एक आड़ की तरह इस्तेमाल कर रहा है। इसका जवाब केवल संसदीय स्तर तक सीमित नहीं रह सकता। यह

लड़ाई सडकों पर, संसद के सदनों मे और विधानसभाओं मे, सत्ता के गलियारों मे, शासनसत्ता के सभी महत्त्वपूर्ण केंद्रो मे लडनी होगी।"[४]

इसके बाद चरम-बिंदु आ गया। भारतीय जनसंघ, संगठन कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोकदल, क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी (आर० एस० पी०), अकाली दल और उन दूसरे मनोनीत नेताओं की राष्ट्रीय समन्वय समिति ने, जो नवंबर १९७४ मे जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में मिलकर एक हो गये थे, सोशलिस्ट पार्टी के सुझाव के अनुसार "अधिक-से-अधिक छः सप्ताह के अंदर आरंभ हो जानेवाले राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन" की योजना की ब्यौरे की बातों पर विचार करने के लिए अगले वर्ष अप्रैल में अपनी एक और मीटिंग बुलायी। इस योजना में "जनता को इस महान संग्राम के लिए तैयार करने के लिए" और "खुले आम गिरफ़्तार होकर संघर्ष छेड़ने के लिए" शीर्षस्थ नेताओं के देशव्यापी दौरों का कार्यक्रम शामिल था। २१ जून १९७५ को जयप्रकाश नारायण ने सशस्त्र सेनाओं का आह्वान किया कि वे इस संघर्ष को 'अपना संघर्ष' समझें।

बहुत पहले, जून १९७४ में ही **पायनियर** अखबार ने अपने एक संपादकीय लेख में टिप्पणी की थी: "सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण सचमुच बारूद से खेल रहे हैं। मंत्रिमंडल को गिराने के लिए, विधायकों का घेराव करने के लिए, पुलिस-दल के आम लोगों में सरकार के प्रति विद्रोह की भावना फैलाने और राज्य को 'टैक्स बंद' के तूफानी अभियान में फँसा देने के जिस आंदोलन की वह अगुवाई कर रहे हैं, उसके फलस्वरूप बहुत व्यापक पैमाने पर उससे बहुत पहले ही, जितनी कि आशंका है, हिंसा का दौर शुरू हो सकता है। कहने को तो उनका उद्देश्य सरकार की सारी बुराइयों को दूर करना है लेकिन वह जिन तरीकों की पैरवी कर रहे हैं वे अनुचित दबाव डालने वाले और अ-लोकतांत्रिक तरीके हैं।" फिर भी साल भर बाद जब सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी सविनय अवज्ञा की योजना सामने रखी तो **पायनियर** ने स्वीकार किया कि "राजनीतिक पार्टियों का ध्यान संघर्ष की ओर से हटकर चुनाव की तैयारियो पर केंद्रित होता जा रहा है," जिसमें यह आशय निहित था कि आंदोलन धीरे-धीरे खत्म होता जा रहा है।

इसलिए इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है कि जब इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला आया, तो विपक्ष ने आंदोलन के वेग को और तेज करने के लिए उसका फायदा एक मुँहमाँगे वरदान के रूप मे उठाया। जब प्रधान मंत्री की कोठी के सामने पहली मीटिंग हुई जिसमे इन्दिरा गांधी के पक्ष मे नारे लगाने का सिलसिला शुरू हुआ, उसी समय विपक्ष के नेताओ की एक टोली ने राष्ट्रपति भवन के सामने धरना दिया और उनके इस्तीफ़े की माँग करते हुए नारे लगाये। २२ जून तक भारतीय लोकदल, भारतीय जनसंघ, संगठन कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी और अकाली दल के प्रतिनिधियों की दस सदस्यो की एक समिति संघर्ष की योजना तैयार करने के लिए बना दी गयी। जनसंघ के अध्यक्ष नानाजी देशमुख[५] ने एक प्रस्तावित कार्यक्रम का सुझाव रखा जिसमे हर जगह आंदोलन समितियाँ स्थापित करने, जनता का उत्साह जगाने और उसे संगठित करने के लिए सभी राज्यों मे नेताओं के व्यापक दौरो, चंदा जमा करने, प्रचार साहित्य प्रकाशित करने, प्रधान मंत्री के इस्तीफे की माँग करने के लिए 'दिल्ली बंद' संगठित करने, अगर वह इस्तीफा न दें तो उनकी कोठी के सामने अनिश्चित काल के लिए धरना देने और दिल्ली मे जुलूसो, प्रदर्शनों और घेरावों के ज़रिये इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ एक ज़बर्दस्त हवा बाँध देने की योजना बनायी गयी थी। २५ जून की सुबह मोरारजी देसाई

की अध्यक्षता मे एक लोक सघर्ष समिति बनायी गयी जिसके सेक्रेटरी नानाजी देशमुख और कोषाध्यक्ष अशोक मेहता थे। इसका लक्ष्य २६ जून से ५ जुलाई १९७५ तक एक लोक शिक्षण सप्ताह सगठित करना था। यह काम फ़ौरन रैलियो, मीटिगो और आकाशवाणी के केंद्रो के बाहर आंदोलनो के रूप मे और प्रधान मत्री के इस्तीफे की मॉग करते हुए रोज उनकी कोठी के सामने सत्याग्रहियो की टोलियो के प्रदर्शनों के रूप मे शुरू कर देने की योजना थी।

मैं समझती हूँ कि विपक्ष का यह मांग करना बिलकुल उचित था कि श्रीमती गाधी इस्तीफा दे। विपक्ष का तो काम ही विरोध करना होता है। दूसरे, हलचल पैदा करने के लिए आदोलन की व्यापकता कुछ भी रही हो, उसकी योजना अहिंसा की सीमाओ के भीतर बनायी गयी थी। कोई कारंवाई तभी की जा सकती थी जब इन जुलूसों, प्रदर्शनों और घरनों के फलस्वरूप हिंसा भड़क उठती। वरना, जैसा कि जयप्रकाश नारायण ने कहा, कोई भी लोकतात्रिक समाज ऐसा नही हुआ है जिसमे जनता ने "अपनी दुर्दशा को बदलने के लिए पूरी तरह और केवल चुनावो का सहारा लिया हो। हडतालें, विरोध-प्रदर्शन, मोर्चे, बैठकी और घरने, आदि सभी जगह होते है...।" तीसरे, अगर कही हिंसा हुई भी थी तो उससे इमर्जेंसी लागू किये बिना भी निबटा जा सकता था। चौथे, अगर कोई कडी कारंवाई करने की ज़रूरत थी भी, तो वह केवल बिहार मे ही हो सकती थी, जो आदोलन का केंद्र था। इसलिए केवल बिहार राज्य मे इमर्जेंसी लागू की जा सकती थी। पाँचवे, अगर बिहार मे आदोलन सचमुच आम जनता के स्तर तक पहुँच चुका था, जैसा कि जयप्रकाश नारायण कहते थे, तो उसका गला घोंटने मे यों भी कोई तुक नही थी।

छठे, अगर दमन के कुछ उपाय करना जरूरी भी था, तो ये उपाय उस समय किये जाने चाहिए थे जबकि यह आंदोलन अपने पूरे जोर पर था, न कि जब उसकी लहर उतर रही थी। जिस प्रधान मंत्री का चुनाव भ्रष्ट तरीके अपनाने की बुनियाद पर रद्द कर दिया गया हो, भले ही वह बहुत मामूली कानूनी बारीकी का सवाल रहा हो, उसके इस्तीफे के लिए आंदोलन चलाना कोई राजद्रोह नही है, और न ही इसका अर्थ यह है कि विपक्ष उस पूरे जन-समर्थन को रद्द कर देने की मॉग कर रहा था जिसकी बदौलत काग्रेस को लोक सभा के चुनाव मे ३६१ सीटें मिली थी। हद-से-हद काग्रेस अपना कोई नया नेता चुन सकती थी।

अगर यह भी दलील दी जाये कि श्रीमती गाधी को इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के बाद भी स्टे-ऑर्डर की बुनियाद पर प्रधान मंत्री बने रहने का पूरा अधिकार था, और यह कि विपक्ष को उस स्टे-ऑर्डर का सम्मान करना चाहिए था और कोई आक्रामक कारंवाई नही करनी चाहिए थी, तब भी असल बात तो यह है कि इस मामले मे सुप्रीम कोर्ट का फैसला ही निर्णायक हो सकता था। विपक्ष की ओर से सगठित किये गये घरने, घेराव और प्रदर्शन भी उतने ही उचित थे जितनी कि श्रीमती गाधी के समर्थकों की ओर से सगठित की गयी मीटिंगें, जुलूस और प्रदर्शन। यह हथियारों की नही, एक-दूसरे को धका देने की लड़ाई थी।

अगर श्रीमती गाधी को हाईकोर्ट के फैसले के बाद यह आभास न होता कि अब उनकी इज्जत कम हो गयी है, तो विपक्ष के हथकंडो की वजह से कानून और सुव्यवस्था के लिए खतरा पैदा हो जाने की जो सभावना सामने आयी थी उससे वह अपनी उस पूरी सत्ता तथा शक्ति की भावना के साथ निपट सकती थी

जो उनमें अपनी पहले वाली अजेय स्थिति के कारण पैदा हुई थी। सुप्रीम कोर्ट से कुछ शर्तों के साथ ही स्टे-आॅर्डर मिलने की वजह से परिस्थिति और भी बिगड़ गयी थी, जिसमें यह अपमानजनक शर्त भी जुड़ी हुई थी कि वह संसद की कार्रवाई में न भाग ले सकती हैं और न वोट दे सकती है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ, १९७४ में उन्होंने इमर्जेंसी का सहारा लिये बिना इससे भी अधिक गंभीर परिस्थितियों पर काबू पा लिया था। १९७५ में भी वह ऐसा ही कर सकती थीं। लेकिन अब उनकी हालत ऐसी नहीं थी कि कोई उनका बाल बाँका न कर सके।

शांत स्वभाव वाले सिख नेता गुरदयालसिंह ढिल्लों** ने, जो अपनी काली दाढ़ी बहुत कसकर बाँधते हैं, और अपनी छोटी-सी तोंद को बड़ी सफ़ाई से छिपा लेते हैं, अपना अनुभव बताते हुए कहा, "लोकसभा के अध्यक्ष और मंत्री की हैसियत से मैं पूरे घटनाक्रम को बड़े ध्यान से देखता रहा हूँ, और मैं यह समझता हूँ कि हमारी सरकार ज़रूरत से ज्यादा उदार और ज़रूरत से ज्यादा नरम थी। मैं बहुत-से लोगों से, विदेशों के बड़े-बड़े लोगों और मंत्रियों से, मिला हूँ जिन्होंने मुझसे और श्रीमती गांधी से यह सवाल किया है कि वह इस अराजकता को कब तक बर्दाश्त करेंगी। लेकिन," उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "सवाल यह है कि इमर्जेंसी लागू करने के लिए हमें विपक्ष ने मजबूर किया या हमने ख़ुद अपने आपको इमर्जेंसी का सहारा लेने के लिए मजबूर कर दिया?"

जिस चीज ने इन्दिरा गांधी को इमर्जेंसी का सहारा लेने पर मजबूर कर दिया वह थी उनकी यह भावना कि वह सुरक्षित नहीं हैं।

जैसा कि चह्वाण ने कहा था, वह उन लोगों में से नहीं हैं जो अंतर्राष्ट्रीय दबाव से प्रभावित हो जायें। यह मानना अधिक तर्कसंगत होगा कि एक ऐसे विपक्ष के दबाव में आ जाने का सवाल तो और भी कम पैदा होता है, जो उस वक़्त तक अपने-आपको एक पार्टी के रूप में नहीं ढाल पाया था। उनके सामने कारगर कदम उठाने के जो रास्ते खुले हुए थे वे हाईकोर्ट के फ़ैसले की वजह से बंद हो गये। वह कार्य-कुशल तो रह सकती थीं लेकिन अपने नाम पर कलंक लगने के बाद वह मनमानी नहीं कर सकती थीं। सुप्रीम कोर्ट से कुछ शर्तों के साथ स्टे-आॅर्डर मिलने के बाद उन्होंने अपने पद पर बने रहने को उचित ठहराने की चाहे जितनी कोशिश की हो। पर वह यह जानती थीं कि उनकी साख उठ चुकी है और यह कि पार्टी के अंदर अब उनकी स्थिति कभी भी वैसी नहीं रह सकती जैसी कि पहले थी। उन्होंने इस बात को स्वयं भी बहुत गहराई से महसूस किया होगा, जभी तो, जैसा कि चंद्रजीत यादव उस समय की घटनाओं को याद करते हुए कहते हैं, "इस्तीफ़ा देने के सवाल पर उनके मन में दुविधा थी।"

लेकिन उनके लिए इस्तीफ़ा देने का उचित समय १२ जून का दिन नहीं था। उचित समय था २४ जून का दिन, जिस दिन सुप्रीम कोर्ट ने कुछ शर्तों के साथ उन्हें स्टे-आॅर्डर दिया था। ऐसा करने से न केवल उनके प्रति उनके साथियों का सम्मान और जन-साधारण की निष्ठा बनी रहती, बल्कि विपक्ष का सारा ज़ोर भी ख़त्म हो गया होता। उन्होंने विपक्ष से उसका एकमात्र ध्येय—'इन्दिरा हटाओ'—छीन लिया होता। उन सभी का उनको हटाने का प्रयास वह एकमात्र कारण था जो उन्हें एक मजबूत, एकताबद्ध और प्रभावशाली विपक्ष के रूप में ढल जाने के लिए प्रेरित कर रहा था। अगर वह दाँव-पेंच के रूप में भी यह कदम उठातीं तो उससे उन्हें फ़ायदा होता। श्रीमती गांधी का कहना था कि

विपक्ष जिस ढंग से काम कर रहा था उसका उद्देश्य सरकार को और अर्थतंत्र को ठप कर देना था, और इसलिए कोई कड़ी कार्रवाई करना जरूरी हो गया था। लेकिन अगर इस तरह का आंदोलन शांतिपूर्ण रहते हुए भी सरकार का कामकाज ठप कर देने में सफल हो जाये तो इसका मतलब तो यही है कि सरकार यह मान ले कि वह परिस्थिति पर काबू पाने में असमर्थ है और इस्तीफा दे दे।

उस मौके पर इन्दिरा गांधी के सामने सत्ता निश्चित रूप से अपने हाथ में रखने के लिए दो ही रास्ते थे। एक तो यह कि वह इस्तीफा दे देतीं, नया चुनाव करवातीं, जनता का फैसला अपने पक्ष में हासिल करतीं और भरपूर लोकतांत्रिक समर्थन के साथ पहले की तरह ही फिर सत्ता अपने हाथ में संभाल लेतीं। या फिर वह इमर्जेंसी लागू कर देतीं। उस समय तक वह हमेशा जनता के पास जाती रही थीं। इस मौके पर वह क्यों नहीं गयीं? सबसे पहली बात तो यह कि कुछ शर्तों के साथ स्टे-ऑर्डर मिलने की वजह से उनके नाम पर बट्टा लग चुका था। दूसरे, इस बात का कोई आश्वासन नहीं था कि अपने अंतिम निर्णय में सुप्रीम-कोर्ट उनके चुनाव को वैध ठहरा ही देगा। तीसरे, अगर उनको पार्टी के अंदर अपनी साख के बारे में पूरा भरोसा होता तो वह यह खतरा भी मोल ले सकती थीं।

उस समय इन्दिरा गांधी को स्वयं अपनी पार्टी के अंदर से सबसे बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा। १२ जून के बाद उनकी चिंता का कारण विपक्ष नहीं था। चिंता का कारण थी कांग्रेस।

कांग्रेस के अंदर एक वामपंथी गरोह था और कुछ लोग थे जो सत्ता अपने हाथ में लेना चाहते थे। आखिरकार यह देखकर कि उनकी साख बहुत कम हो गयी है, कांग्रेस के अंदर बड़े-बड़े नेताओं ने उनको बिलकुल ही खत्म कर देने के लिए दांव-पेंच शुरू कर दिये। उनकी हालत उन टिड्डों जैसी थी जो अपनी ही नस्ल पर हमला करते हैं। जैसे ही उनके प्रतिपक्षी को चोट लग जाती है या वह घायल हो जाता है, वे उसके मरने से पहले ही उसे खाना शुरू कर देते हैं। वह इन चालों को अच्छी तरह जानती थीं। कांग्रेस के अंदर उनके कुछ वामपंथी दोस्त भी उन पर काफी दबाव डाल रहे थे, जो चाहते थे कि इमर्जेंसी जनवरी १९७५ में ही लागू कर दी जाये। श्रीमती गांधी ने इन लोगों पर विश्वास करना छोड़ दिया था। उनका बेटा ही अब उनका सच्चा साथी था जिसने बार-बार उन्हें इन लोगों के बारे में चेतावनी देकर उनकी भावनाओं की पुष्टि की थी। वह उनसे कहा करता था, "आखिरकार ये लोग आपका तख्ता उलट देंगे, और आपकी समझ में यह बात आती नहीं है...।" जिन उद्देश्यों को लेकर श्रीमती गांधी काम करती थीं उनकी बुनियाद अगर जरा भी किसी विचारधारा पर होती तो जयप्रकाश नारायण उनके साथ होते क्योंकि वह भी यही महसूस करते थे।

जयप्रकाश ने जेल से लिखा, "एक वक्त ऐसा भी आ सकता है जब रूसी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस के अंदर छिपे हुए विभीषणों के जरिये श्रीमती गांधी का सारा रस निचोड़ लेने के बाद उन्हें इतिहास के घूरे पर फेंक देंगे...।"[६]

शशिभूषण का कहना है, "जयप्रकाश नारायण तो पेशेवर और वैज्ञानिक कम्युनिस्ट-विरोधी हैं। यही हाल संजय का है, जैसा कि उसने अपनी हरकतों से साबित कर दिया है।"

लेकिन हमेशा की तरह इस मामले में भी मैं चंद्रशेखर की राय को ही ठीक

समझती हूँ। वह बुद्धिसंगत बात करते है, ठंडे दिमाग मे सोचते है और चीजों का विश्लेषण करते है। वह चरमपथी नही है कि किसी व्यक्ति के लिए अपने समर्थन या किसी समस्या के प्रति विरोध की भावना के प्रवाह मे बह जायें।

जिस गरोह से श्रीमती गांधी को डर था उसके बारे मे चंद्रशेखर ने कहा, "ऐसा लगता है कि वे वामपंथी है और उनके दिमाग में वामपंथियो के सत्ता पर अधिकार करने के बारे मे कुछ धुंधले-धुंधले विचार है। मैं नही जानता कि वे किस तरह का मार्क्सवाद समझते हैं, क्योंकि मार्क्स ने तो कहा था कि पहले जनता को तैयार किया जाना चाहिए।" चंद्रशेखर ने उन्हें अस्पष्ट-सी 'रोमांटिक क्रांति' के भक्त कहकर कोई अधिक महत्त्व देने से इंकार कर दिया।

इन्दिरा गाधी का यह सोचना उचित ही था कि हर दिशा से अल्पकालीन और दीर्घकालीन चालें चली जाती रही थी, और इस मौके पर तो उनको मैदान से बिलकुल ही हटा देने के लिए ये चालें और तेज हो गयी थी। बात बस इतनी है कि अगर उन्होने इस्तीफा दे दिया होता तो वह इस अपमान से बच जाती कि उन्हें उसी शक्ति ने—जनता ने—मैदान मे हटा दिया जिसके सहारे वह यहाँ तक पहुँची थी।

•

आर० के० धवन बताते हैं, "इमर्जेंसी के लिए कोई खास तैयारी नही की गयी थी। मंत्री, ससद के सदस्य, लोगों के दल और अलग-अलग लोग २३ और २४ जून को भी हमेशा की तरह प्रधान मत्री की कोठी पर आये और उन्होंने परिस्थिति के बारे मे कुछ आम टिप्पणियाँ कीं। उन्होने कहा, 'मैडम बहुत गड़बडी मची हुई है। कुछ करना होगा।'" २४ तारीख को देवकांत बरुआ और सिद्धार्थशकर ने साफ-साफ शब्दो मे अपनी राय दी कि कोई सख्त कदम उठाया जाना चाहिए। उसी दिन तीसरे पहर इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले को बिना किसी शर्त के मुल्तवी रखने के बारे में श्रीमती गांधी की अपील पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला आया।

अवकाशकालीन जज श्री वी० आर० कृष्ण अय्यर[11] का शब्दजाल भी उनके दोटूक निर्णय को छिपा नही सका। माननीय जज महोदय ने अपने फैसले मे कहा, "न्याय के गौरवान्वित कक्षों को कुछ मात्रा मे तो इस महान सत्य से अवगत होना ही चाहिए कि मानव-इतिहास के व्यापक विस्तार का मार्गदर्शन ऐसी सामाजिक शक्तियाँ करती हैं जो क्षणिक कोलाहल अथवा कानून की बारीकियों के उतार-चढ़ावो की परिधि से बाहर हैं। जीवन का क्षेत्र कानून के क्षेत्र से अधिक व्यापक है।" और उन्होंने श्रीमती गाधी को आंशिक रूप से अपराधी ठहराया। वह प्रधान मंत्री के पद पर बनी रह सकती थी और इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में उनकी अपील का फैसला हो जाने तक वह जिस समय तक प्रधान मत्री या मंत्री रहें वह संसद मे इस हैसियत से अपना काम-काज करती रह सकती थी। परंतु लोकसभा के सदस्य की हैसियत से इन्दिरा गांधी को वोट देने, सदन की कार्रवाई में भाग लेने, या अपना वेतन भी लेने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

प्रधानमंत्री की कोठी मे एक बार फिर स्तब्ध सन्नाटा छा गया। नेता गंभीर मुद्रा धारण किये चुपचाप श्रीमती गांधी के कमरे मे इस तरह जाते मानो शोक प्रकट करने आये हों, लेकिन वहाँ से मुसकराते हुए बाहर निकलते। जब वह बाहर निकलकर आम लोगों से बातें करती तो उनके चेहरे खिल उठते। १२ जून को

तरह आज संशय का वातावरण नहीं था। बरुआ ने उस समय कहा था, "छोटी लडाई में हम भले ही हार गये हो पर युद्ध हमने जीत लिया है।" और फिर १८ जून को कांग्रेस संसदीय दल की मीटिंग में उन्होंने अपना वह प्रख्यात बयान दिया था : "इंडिया इज इन्दिरा, इन्दिरा इज इंडिया।" (भारत इन्दिरा है, इन्दिरा ही भारत है।) चह्वाण भी पीछे रहने वाले नहीं थे, लेकिन उनकी बात लोगों की जबान पर इतनी नही चढी। उन्होंने कहा, "उनके साथ जो कुछ होगा वह भारत के साथ होगा, और भारत के साथ जो कुछ होगा वह उनके साथ होगा।" यह फैसला कि अगर कुछ शर्तों के साथ भी स्टे-ऑर्डर मिले तब भी वह प्रधान मंत्री के पद पर बनी रहें, उनके वरिष्ठ साथियों ने बहुत पहले १५ जून को ही कर दिया था। उन्होंने विपक्ष की इन धमकियों पर भी अच्छी तरह सोच-विचार कर लिया था कि वह संसद में गतिरोध पैदा कर देगा और उन्होंने फैसला किया था कि संसद का अधिवेशन सुप्रीम कोर्ट का फैसला आने के बाद किया जा सकता है, जिसके बारे में आशा की जाती थी कि उसमें छः सप्ताह से अधिक का समय नहीं लगेगा।

दिखावटी चिकनी-चुपड़ी बातों की आड़ में कांग्रेस के अंदर श्रीमती गांधी के खिलाफ जो चालें चली जा रही थीं वे सभी २५ जून तक विफल हो चुकी थीं। जस्टिस अय्यर के फैसले पर विपक्ष फूला नहीं समा रहा था। विपक्ष के दलों की कार्यकारिणी समितियों की संयुक्त मीटिंग में बड़ी कटुता के साथ कहा गया : "श्रीमती गांधी की साख धूल में मिल चुकी है। उनकी लोकसभा की सदस्यता सीमित रह गयी है। उनका वोट देने का अधिकार फिलहाल छीन लिया गया है। वह किस तरह की प्रधान मंत्री हो सकती हैं?" इसके विपरीत भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने जोरदार पैरवी की कि "उन्हें दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों की धौंस-धमकियों के आगे आत्म-समर्पण नहीं करना चाहिए—और प्रधान मंत्री के पद पर बने रहना चाहिए।"

अगर विपक्ष युद्ध के लिए कमर कसकर मैदान में उतर चुका था, तो कांग्रेस के अंदर भी कुछ बातों की आलोचना हो रही थी, जिस तरह रैलियाँ संगठित की जाती थीं, जिस तरह सरकारी परिवहन का इस्तेमाल किया जाता था, और जिस भोंडे ढंग से भीड़ों का प्रदर्शन किया जाता था। तारकेश्वरी सिन्हा ने कहा, "मैं उनके बहुत निकट नहीं थी। मैं अभी कांग्रेस में दुबारा आयी ही थी। मैं समझती थी कि अभी मुझे पीछे ही रहना चाहिए, बहुत आगे आने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। सभी लोग जानते थे कि मैं श्रीमती गांधी की विरोधी रही थी। फिर भी उनकी कोठी के बाहर औरतों को भांगड़ा नाच वगैरह करते हुए देखकर मुझे भी उनके बारे में कुछ कहने का साहस हुआ। मैंने श्रीमती गांधी से कहा, 'ये सब बहुत बेतुकी बातें हैं। हम लोग आपकी कद्र करते हैं। यह देखना आपके सेक्रेटेरियट की जिम्मेदारी है कि कोई ऐसी बात न हो जो आपकी मर्यादा के खिलाफ हो।' मैंने सोचा इससे ज्यादा कुछ कहना मेरी ढिठाई समझी जायेगी। लेकिन असलियत यह थी कि इन्दिरा गांधी को इन रैलियों को देखकर न सिर्फ खुशी होती थी बल्कि जिस तरह उनके बेटे ने उनको संगठित करने में मदद दी थी उसके लिए वह उसकी तारीफ भी करती थीं। उन्होंने सोचा कि जनता की इच्छा, जो इतने स्पष्ट रूप से उनके पक्ष में व्यक्त हुई थी, उनका विरोध करनेवालों को कुछ सबक सिखा देगी। जिस तरह ये सार्वजनिक प्रदर्शन संगठित किये जा रहे थे उनके बारे में अगर वह स्वयं संवेदनशील होती तो वह निश्चय ही गृह-मंत्रालय के

सचिव निर्मलकुमार मुखर्जी[१] के खिलाफ़ इतनी जल्दी और इतनी सख्ती मे कार्रवाई न करती।

उनके निकटतम सहयोगी धवन का कहना है कि "२५ जून की सुबह तक इमर्जेंसी शब्द का ज़िक्र तक नही आया था।" लेकिन जिस तरह २२ जून को ही एन० के० मुखर्जी को उनके महत्त्वपूर्ण पद से हटाकर पर्यटन तथा नागरिक उड्डयन-मंत्रालय मे भेज दिया गया था, उससे पता चलता है कि काफी पहले ही कुछ गंभीर कदम उठाने का फैसला कर लिया गया था। संजय का इस सबमें बहुत हाथ था और इमर्जेंसी के दौरान लोगों को दड देने का जो तरीका अपनाया गया वह बहुत ऊँचे-ऊँचे सरकारी अफसरों के सिलसिले मे बहुत पहले ही शुरू कर दिया गया था। जिस बात ने फ़ौरन यह क़दम उठाने के लिए उकसावा दिया वह यह थी कि गृह-मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने गृह-मंत्रालय के सचिव को टेलीफोन किया कि प्रधान मंत्री के समर्थन मे मीटिंगें करने के लिए लोगों को सफदरजंग रोड के चौराहे तक पहुँचाने के लिए जिस तरह नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी और दिल्ली राज्य परिवहन निगम की तरफ से बसों की सुविधा दी जा रही थी उसकी लोगों मे इतनी आलोचना हो रही है कि यह बात बेहद शर्मनाक होती जा रही है। रेड्डी ने सुझाव दिया कि गृह-मंत्रालय के सचिव इसे रोकने के लिए कुछ कदम उठायें।

मुखर्जी ने फौरन गृह-मंत्रालय के उन पाँच सबसे बड़े अफसरों की मीटिंग बुलायी जो आमतौर पर इस तरह के मामलों को निबटाते हैं—एडिशनल सेक्रेटरी टी० सी० ए० श्रीनिवासवर्धन[२], केंद्रीय जाँच ब्यूरो (सी० बी० आई०) के प्रधान अनंत जयराम, खुफिया विभाग के डायरेक्टर डी० सेन और गृह-मंत्रालय के विशेष सेक्रेटरी, सीमा सुरक्षा दल के भूतपूर्व डायरेक्टर-जनरल, के० एफ० रुस्तमजी। मुखर्जी ने इन लोगों की राय लेने के लिए गृह-मंत्री का सुझाव मीटिंग में पेश किया। लगभग सभी इस बात से सहमत थे कि जिस तरह इन प्रदर्शनों का बंदोबस्त किया जा रहा था वह सचमुच शर्मनाक था, लेकिन यह मामला पूरी तरह दिल्ली प्रशासन के अधिकार-क्षेत्र में था, इसलिए सबसे अच्छा यही होगा कि इस मामले को लेफ़्टिनेंटगवर्नर किशनचद निबटायें। अकेले सेन ही ऐसे आदमी थे जिन्होंने कोई साफ़ बात नही की, वह बस हूं-हां करते रहे।

इन स्थिति के साथ एक और बहुत ही दिलचस्प बात भी जुड़ी हुई है। जहां तक प्रधान मंत्री या संजय गांधी पर प्रभाव का सवाल था, गृह-मंत्री रेड्डी अपने राज्य-मंत्री ओम मेहता से बहुत पीछे रह गये थे। मुखर्जी और रुस्तमजी दोनों ही ने यह भावना व्यक्त की कि अगर गृह-मंत्री का आदेश लेफ़्टिनेंट-गवर्नर तक पहुँचा दिया गया तो वह निश्चित रूप से उसे पूरा नहीं करेंगे। मीटिंग मे सभी इस सुझाव पर सहमत हो गये कि यह विचार गृह-मंत्री तक पहुँचा दिया जाये, और उनके लिए उचित यही होगा कि वह गृह-मंत्रालय के राज्य-मंत्री से कहें कि वह लेफ़्टिनेंट-गवर्नर से बात कर लें, क्योंकि वे ऐसा महसूस करते थे कि अगर यह बात लेफ़्टिनेंट-गवर्नर को समझा दी जाये कि इन बसों और लारियों को इस्तेमाल करना सरकार और प्रधान मंत्री के हित में नही है तो किशनचंद मान जायेंगे। इसलिए यह बात गृह-मंत्री तक पहुँचा दी गयी। ओम मेहता ने लेफ़्टिनेंट-गवर्नर से बात की और गाड़ियों का इस्तेमाल बंद कर दिया गया।

उस वक़्त तक गृह-मंत्री और उनके मंत्रालय के उन पाँच अफसरों के अलावा किसी को भी इस बात का पता नहीं था कि इस तरह की मीटिंग हुई है। फिर

भी प्रधान मंत्री और संजय गांधी के कानों तक उस बहस की एक-एक बात पहुँचा दी गयी कि किसने क्या कहा था। उस समय यह उम्मीद की जाती थी कि मुखर्जी के बाद श्रीनिवासवर्धन गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी बना दिये जायेंगे और बी० डी० पांडे के बाद, जो रिटायर होने वाले थे, सबसे पुराने आई० सी० एस० अफ़सर होने के नाते मुखर्जी कैबिनेट-सेक्रेटरी बना दिये जायेंगे। डी० सेन की उन दोनों में से किसी के साथ भी नहीं बनती थी, और शायद वह समझते थे कि उन लोगों के अपना-अपना नया पद सँभाल लेने के बाद वह भी ज़्यादा दिन तक खुफ़िया विभाग के प्रधान नहीं रह पायेंगे। अनुमान यह लगाया गया कि संजय और प्रधान मंत्री को खुश करके अपनी जगह पक्की कर लेना ही उन्होंने सबसे अच्छा समझा।

स्पष्टतः, ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर लेफ़्टिनेंट-गवर्नर किशनचंद ने दोनों ही से शिकायत कर दी कि राष्ट्रपति भवन के बाहर जो धरने दिये जा रहे हैं उनसे निबटने में वह बिलकुल लाचार हैं। कहा जाता है कि उन्होंने झुँझलाकर कहा, "मैं क्या करूँ, गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी सुनते ही नहीं। मुखर्जी कहते हैं कि इन लोगों को हटाने से क्या फ़ायदा; प्रधान मंत्री की कोठी के बाहर भी तो हर वक़्त भीड़ जमा रहती है। वह कहते हैं कि ये लोग (विपक्ष के लोग) वहाँ बहुत समय तक नहीं रहेंगे, और फिर राष्ट्रपति भी तो आजकल यहाँ नहीं हैं।"

इन धरनों में हिस्सा लेने वालों को हटाने के लिए लेफ़्टिनेंट-गवर्नर को गृह-मंत्रालय से सलाह-मशविरा करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। यह उनके अधिकार-क्षेत्र में था। लेकिन विपक्ष के प्रमुख नेताओं के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करने से पहले वह हमेशा या तो गृह-मंत्रालय से सलाह कर लेते थे या उनको सूचना दे देते थे। मालूम नहीं लेफ़्टिनेंट-गवर्नर ने गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी से बात की थी या नहीं, लेकिन ऐसा लगता है कि उन्होंने उसी दिन शाम को संजय गांधी को इस बात की सूचना ज़रूर दे दी थी कि गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी या तो टालमटोल कर रहे थे या वह कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं थे। रातोंरात २१ तारीख़ को राजस्थान के चीफ़ सेक्रेटरी एस० एल० खुराना दिल्ली बुलवाये गये। २२ तारीख़ को वह गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी नियुक्त कर दिये गये, एन० के० मुखर्जी पर्यटन-मंत्रालय में भेज दिये गये, और उसके कुछ ही समय बाद श्रीनिवासवर्धन ग्वालियर में राजस्व बोर्ड के अध्यक्ष बनाकर मध्य प्रदेश वापस भेज दिये गये, जहाँ से वह केंद्र में आये थे।

२५ तारीख़ को ११ बजे सुबह जब सिद्धार्थशंकर रे प्रधान मंत्री से मिले तो श्रीमती गांधी ने देश की हालत के बारे में उन्हें रिपोर्टों का एक पुलिंदा दिखाया। रे ने कहा, "प्रधान मंत्री का मूल्यांकन भी यही था कि कुछ करना ही पड़ेगा।"

उस वक़्त तो वह चले आये, लेकिन शाम को ४ बजे वह बहुत-सी किताबें और भारत का संविधान लेकर फिर वहाँ पहुँचे। उस वक़्त उन लोगों ने इमर्जेंसी के बारे में बातचीत की। "क्या कानून इसकी इजाज़त देता है ?" प्रधान मंत्री ने रे से पूछा। उन्होंने जवाब दिया, "हाँ, कानून दूसरी इमर्जेंसी की इजाज़त देता है।"[1] इसके बाद वे दोनों राष्ट्रपति के पास गये; वह भी बहुत-सी रिपोर्टें देख चुके थे। वह पंद्रह मिनट में राज़ी हो गये। धवन का कहना है कि प्रधान मंत्री की कोठी पर उस वक़्त सिर्फ़ पी० एन० धर और गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी थे। इमर्जेंसी लागू करने का सुझाव देते हुए राष्ट्रपति के पास भेजने के लिए पत्र का मसविदा तैयार करना था। पत्र की दो लाइनें तैयार होती थीं; और फिर श्रीमती गांधी उन्हें पढ़ लेती थीं। उस दिन की इस घटना के बारे में सिद्धार्थशंकर रे का कहना

है कि "इसमें इतनी देर इसलिए लग रही थी कि हर पाँच मिनट के बाद संजय दूसरे कमरे से अंदर आकर कहता था, ज़रा एक मिनट के लिए आइये, और वह बाहर चली जाती थी।" उस समय जो मुख्य मंत्री राजधानी में थे, या जो अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में थे, उन्हें संजय टेलीफोन कर रहा था, और हर बार वह अपनी माँ को उनसे बात करने के लिए बुला ले जाता था।

उस दिन शाम को साढ़े छः बजे तक कुछ उत्तरी राज्यों में चुने हुए घरों और दफ़्तरों में जल्दी-जल्दी टेलीफ़ोन किये जा रहे थे। हर जगह नमूना लगभग एक जैसा ही था। चीफ़ सेक्रेटरी, गृह-विभाग के सेक्रेटरी और पुलिस के इन्स्पेक्टर-जनरल के घर पर टेलीफोन की घंटी बजती—"मुख्य मंत्री ने आपको एक बहुत ज़रूरी मीटिंग के लिए बुलाया है।" मुख्य मंत्री के दफ़्तर में पूरी तरह गोपनीयता का वातावरण रहता। "देश में इमर्जेंसी लागू की जा रही है और विपक्ष के सभी लोगों को गिरफ़्तार कर लेना है। हर डिवीज़न के डी० आई० जी० को वायरलेस पर संदेश भेज दिया जाये कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्यों को और जनसंघ के ख़ास-ख़ास लोगों को पकड़ लिया जाये। अख़बारों को इसकी ख़बर न लगने पाये। सेंसरशिप लागू कर दी जाये। इन गिरफ्तारियों के बारे में कोई भी ख़बर न छपने दी जाये।"

"यह सब क्यों हो रहा है, साहब?" कोई अफ़सर पूछता।

"क्योंकि ऐसी हालत पैदा हो गयी है जबकि सरकार की सभी संस्थाओं के लिए ख़तरा पैदा हो गया है और बड़े पैमाने पर विद्रोह भड़क उठने वाला है। अगर लोगों को गिरफ़्तार न किया गया तो हम लोग परिस्थिति को काबू में नहीं रख पायेंगे। हर ज़िले के कलेक्टर और सुपरिंटेंडेंट-पुलिस को हिदायत भेज दी जाये कि वह अपने शहर में रहें और छुट्टी लेकर कहीं न जायें।"

भारत के हर ज़िले में फ़ौरन वायरलेस से संदेश भेज दिया गया। पुलिस विभिन्न अख़बारों के प्रेसों में गयी और कहीं-कहीं तो जो ख़बरें आयी थीं उनकी गैलियाँ तक नष्ट कर दीं ताकि सुबह कोई अख़बार न छपने पाये। संपादकों ने टेलीफोन करना शुरू किया। सबसे ऊपर के तीन-चार अफ़सरों को छोड़कर न पुलिस को पता था, न प्रशासन में किसी को पता था कि क्या हो रहा है। ज़िलों में या राज्यों की राजधानियों में जिन लोगों का भी इन कारंवाइयों से संबंध था उनमें से कोई भी उस रात नहीं सोया।

प्रधान मंत्री की कोठी से राष्ट्रपति के पास पत्र का जो मसविदा भेजा जाने वाला था वह बिलकुल तैयार हो चुका था। उसके बाद गृह-मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने उस पर हस्ताक्षर किये। रात को ११ बजकर २० मिनट पर राष्ट्रपति ने अपनी मंज़ूरी दे दी और इमर्जेंसी" लागू हो गयी।

केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्यों को भी नहीं मालूम था। मिसाल के लिए, उस दिन चह्वाण बहुत रात गये तक काम करते रहे। उस दिन शाम को रामलीला मैदान में विपक्ष की विशाल रैली में जयप्रकाश नारायण और दूसरे लोगों ने जो भाषण दिये थे, उनका ब्यौरा टेलीप्रिंटर पर आ रहा था; वह उसी को पढ़ रहे थे। उन्हें ठीक से तो नहीं मालूम था कि जयप्रकाश नारायण ने क्या कहा था, लेकिन जितना भी पता चल सका था वह काफ़ी ख़तरनाक मालूम हो रहा था। उन्हें बड़ी बेचैनी-सी होने लगी। सुबह साढ़े चार बजे टेलीफ़ोन की घंटी बजी। एक अनजानी आवाज़ ने कहा: "क्या मैं श्री चह्वाण से बात कर सकता हूँ?"

"मैं चह्वाण बोल रहा हूँ।"

"मैं सिर्फ यह जानना चाहता था कि आप घर पर हैं या नहीं," उस आवाज ने कहा और टेलीफोन नीचे रख दिया।

उसके बाद चह्वाण को नींद नहीं आयी। सुबह ५ बजे गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी का टेलीफोन आया और उन्होंने कहा कि सुबह ६ बजे कैबिनेट की मीटिंग होगी। इसके थोड़ी ही देर बाद एक और टेलीफ़ोन आया, इस बार उनके किसी दोस्त का, जिसमें जयप्रकाश नारायण की गिरफ़्तारी की सूचना दी गयी। इसके कुछ ही मिनट बाद मोरारजी की गिरफ़्तारी के बारे में टेलीफ़ोन आया। फिर चंद्रशेखर के बारे में। सुबह ६ बजे जिस वक़्त चह्वाण प्रधान मंत्री की कोठी पर पहुँचे, उन्हें गिरफ़्तारियों के बारे में तो मालूम हो चुका था—उससे ज्यादा और कुछ नहीं।

जब श्रीमती गांधी ने अपनी सरकार के मंत्रियों को देखा, जिन्हें इस तरह बे-वक़्त आधी नींद से जगवाकर जल्दी-जल्दी वहाँ बुलाया गया था, तो उस समय वह स्वाभाविक रूप से बहुत गंभीर थी। उन्हें उन लोगों पर इतना भरोसा नहीं था कि जो कदम उन्होंने उठाया था उसके बारे में पहले उनसे सलाह कर लेती। उन्हें यह समझाने में दस-पंद्रह मिनट लगे कि उन्होंने किस वजह से देश में इमर्जेंसी लागू कर दी है। स्वर्णसिंह ने श्रीमती गांधी को नहीं बल्कि गृह-मंत्रालय के सचिव को संबोधित करके बहुत नरमी के साथ पूछा कि क्या इसके बिना काम नहीं चल सकता था। कोई और नहीं बोला। उनके मन में सन्नाटा छा गया था। उस वक़्त चह्वाण टकटकी बाँधे उस औरत को देख रहे थे जिसने इस दौर के संघर्षों और उतार-चढ़ावों के बीच उनका नेतृत्व किया था, जिसके साथ कई बार उनका टकराव भी हुआ था पर जिसके प्रति वे निष्ठावान भी रहे थे, उस वक़्त उन्हें ऐसा लगा कि जैसे किसी ने अचानक उन्हें "अंधकार की एक अंतहीन सुरंग में ढकेल दिया हो...।"

उन्हें कुछ भी पता नहीं था कि उससे पिछली शाम को प्रधान मंत्री की कोठी पर क्या कुछ होता रहा था—कौन-कौन वहाँ मौजूद था और किस तरह फ़ैसला लिया गया था। लेकिन उस सारी हलचल के बीच संजय के व्यवहार से उन लोगों को, जो उस वक़्त वहाँ मौजूद थे, इस बात का संकेत मिल गया था कि क्या होने वाला है। वह मुख्य मंत्रियों को यह हिदायत भेजने की कोशिश कर रहा था, कम-से-कम उत्तरी राज्यों के उन मुख्य मंत्रियों को जिन्हें वह अच्छी तरह जानता था, कि वे हाईकोर्टों पर ताला डलवा दें और अखबारों के दफ़्तरों की बिजली कटवा दें। रे का कहना है कि उन्होंने बड़ी सख़्ती के साथ इस बात पर विरोध प्रकट किया, दोनों के बीच काफी झड़प हुई, और संजय चीख़कर कहने लगा : "आपको क्या मालूम कि देश का शासन कैसे चलाया जाता है...!"

टिप्पणियाँ

१. देशबंधु चित्तरंजन दास का देहान्त १९२५ में ५४ वर्ष की अवस्था में हुआ था। वह वकील थे और इन्दिरा के दादा मोतीलाल नेहरू के दोस्त थे। देशबंधु ने कांग्रेस के गया अधिवेशन की अध्यक्षता की थी, जिसमें सरकार में शामिल होने के सवाल पर पार्टी में फूट पड़ गयी थी, देशबंधु और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी बनायी, जिसमें 'परिवर्तन न। चाहने वालों' की बजाय 'परिवर्तन के समर्थक' थे।

२. पचास-वर्षीया, रूपवती माया रे ने इंग्लैंड मे शिक्षा पायी थी। उनके बोलने के ढंग मे गहरा विलायती अन्दाज है, लेकिन इसके बावजूद भारत से उनका लगाव भी उतना ही गहरा है। स्थायी रूप से वह वकालत और सामाजिक कार्य मे व्यस्त रहती हैं। राजनीति के बारे में वह कहती हैं, "मेरे पास हर वह चीज है जो मैं चाहती हूँ। मुझे उन चीजों का कोई लोभ नही है जिनकी वजह से दूसरे लोग राजनीति में आते हैं—प्रतिष्ठा और पैसा। मेरे पास वह पहले ही से है।" पिछले मार्च मे पश्चिम बंगाल सहित पूरे उत्तरी भारत मे जिस आँधी मे कांग्रेस उड़ गयी उसमे उन्हें भी अपनी लोकसभा की सीट से हाथ धोना पड़ा।

३ "दुर्गाप्रसाद धर का जन्म एक सामंती परिवार मे हुआ था और वह शाही मिजाज के आदमी थे, उन पर मार्क्स और नेहरू का प्रभाव था। उनका विशाल मित्रमंडल उन्हें प्यार से 'डी० पी०' कहता था। एक प्रशासक, कूटनीतिज्ञ, समझौते की बातचीत, राजनीति और संसदीय कार्य मे अत्यन्त शिष्ट तथा कुशल व्यक्ति के रूप मे उन्होंने ख्याति पायी।" सत्तावन वर्ष की आयु मे, जब वह सोवियत संघ मे भारत के राजदूत थे और उनका पद मंत्री के पद के बराबर माना जाता था, १२ जून १९७५ को जब नयी दिल्ली मे उनका देहान्त हुआ तो उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते समय उनका वर्णन इन शब्दो मे किया गया था।

एक कश्मीरी होने के नाते उन्होंने "उन सभी आंदोलनो मे भाग लिया था जिनके कारण कश्मीर भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम का इतना महत्वपूर्ण केन्द्र-बिन्दु बन गया। जब श्रीमती गाधी ने पहली बार उन्हें राजदूत बनाकर मास्को भेजा, उस समय तक वह कश्मीर के हर मंत्रिमडल मे मंत्री रह चुके थे। बाद मे वह केन्द्रीय योजना-मंत्री बनाये गये। १९३८ में नेहरू के साथ सपर्क डी० पी० के लिए एक निर्णायक मोड था।

४. दिल्ली मे १५ नवम्बर को भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल के छप्पनवें अधिवेशन में इन्दिरा गांधी के भाषण से।

५. मोहन मानिकचन्द धारिया का जन्म १९२५ मे नाटे (महाराष्ट्र) मे हुआ था। बहुत छोटी उम्र में ही उन्हें ट्रेड यूनियन आंदोलन से दिलचस्पी हो गयी। बहुत बाद मे जाकर १९६१ मे वह कांग्रेस मे शामिल हुए। वह वकील हैं। अर्थतन्त्र के बारे मे अपने दृढ विचारो के कारण वह एक युवा तुर्क बन गये और १९७१ मे वह श्रीमती गाधी की सरकार मे योजना राज्य-मंत्री बने। उन्होने एक बार (बहुत बाद मे) एक इंटरव्यू के दौरान मुझसे कहा था कि श्रीमती गाधी को किसी ठोस आर्थिक परिवर्तन मे दिलचस्पी नहीं थी, और वह उन्हें जो नोट तैयार करके भेजते थे उन पर कभी कोई कार्रवाई नही की गयी। उनके अन्दर चाहे जितनी आग भरी हो, पर देखने मे मोहन धारिया बहुत मृदु स्वभाव के लगते है।

६. टी० वी० कुन्ही कृष्णन्, चह्वाण ऐंड द ट्रबुल्ड डिकेड, (चह्वाण और संकटग्रस्त दशाब्दी), पृष्ठ १६४-६५। लेखक ने यह बात बहुत स्पष्ट रूप से कही है: "मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और मैसूर की कांग्रेसी सरकारों को रजवाडो से काफी समर्थन मिल रहा था। श्रीमती गाधी इस सवाल पर हठधर्मी का रवैया अपनाकर रजवाड़ो का समर्थन खो देने को तैयार नही थी। वह यह भी सोचती थी कि रजवाडो का गुजारा-भत्ता बंद कर देने से स्वयं

अपने देश में और विदेशों में सरकार के दिये हुए वचन पर से लोगों का विश्वास उठ जायेगा। गुजारा-भत्ता फौरन बंद कर देने के बारे में कुछ कांग्रेसी संसद-सदस्यों ने जो लिखित मांग रखी थी उससे वह और भी खीझ उठी।"

७. नयी दिल्ली में १० अप्रैल १९७१ को फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडियन चैंबर्स ऑफ़ कामर्स एंड इंडस्ट्री के चौवालीसवें वार्षिक अधिवेशन में इन्दिरा गांधी का उद्‌घाटन भाषण।

८. शहरी जमीन (हदबंदी तथा नियमन) अधिनियम १९७६, अंततः १७ फरवरी १९७६ को ग्यारह राज्यों तथा संघ क्षेत्रों में और बाद में छः और राज्यों में लागू हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य "शहरी जमीन का समाजीकरण कर देने की नीति को क्रियान्वित करना" है परन्तु इस कानून को लागू करने कि जिम्मेदारी हर राज्य पर है। क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा करने के लिए राज्यों तथा केन्द्र के प्रतिनिधियों की एक केन्द्रीय समन्वय समिति बना दी गयी थी। कठिनाइयां दूर करने में सहायता देने के लिए केन्द्र ने कुछ मार्गदर्शक निर्देश जारी किये थे, जिनके बारे में उसने शीघ्र ही यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "अधिनियम के प्रावधानों की परिधि के बाहर उनकी कोई कानूनी हैसियत नहीं है।"

९. मेरा खयाल है कि यह बात पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधान मंत्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो ने कही थी कि समझौते की बातचीत करने में उन्होंने अब तक सरदार स्वर्णसिंह से चतुर आदमी नहीं देखा, क्योंकि वह बड़ी नरमी से इस तरह बातचीत करते हैं कि उससे भ्रम होता है कि वह दूसरे पक्ष के साथ कुछ रिआयत करने को तैयार है, जिसमें वह खुद किसी बात के लिए वचनबद्ध नहीं होते लेकिन दूसरे पक्ष को उम्मीद बंध जाती है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्वर्णसिंह को १९६६ में रक्षा-मंत्री और फिर १९७० में विदेश-मंत्री बनाया। इमर्जेंसी के बाद उन्हें मंत्रिमंडल से हटा दिया गया क्योंकि उनके अनुशासित मन में भी महत्वाकांक्षा की लहरें उठने लगी थीं। बाद में कांग्रेस के प्रेसिडेंट ने जब संविधान में संशोधनों का सुझाव देने के लिए कमेटी बनायी तो वह उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये। संविधान में जो विवादग्रस्त संशोधन किये गये उनकी सिफ़ारिशें इसी कमेटी ने तैयार की थी। उन्होंने एक इंटरव्यू में मुझसे कहा, "समाज की आवश्यकता को व्यक्ति के अधिकार से बढ़कर माना जाना चाहिए, यही इन प्रस्तावित परिवर्तनों का आधारभूत सिद्धांत है।" सरदार स्वर्णसिंह सत्तर वर्ष के हैं।

१०. कृष्णकांत पचास वर्ष के हैं। वह अमृतसर के रहने वाले, १९६६ से राज्य-सभा के सदस्य और इस समय जनता पार्टी में हैं। वह कभी मंत्री नहीं रहे, लेकिन धारिया, चन्द्रशेखर तथा दूसरे लोगों के साथ मिलकर उन्होंने एक दल बनाया। वह छोटे कद के हैं और चश्मा लगाते हैं। देखने में वह बिलकुल उस सीधे-सादे किसान जैसे लगते हैं जो शहरी बन गया हो। वह भूमि-सुधार के विषय की विशेष जानकारी रखते हैं। पांच वर्ष पहले उन्होंने एक इंटरव्यू [illegible] "कोई भी [illegible] सकता।"

११. [illegible] कृत पुराने [illegible] थे।

१९६३ में केशवदेव मालवीय का सितारा डूब गया और १९७४ तक वह राजनीति से लगभग निर्वासित-से रहे, जब श्रीमती गांधी ने दुबारा उन्हें तेल तथा रसायन-मंत्री की हैसियत से अपने मंत्रिमंडल में स्थान दिया। वह बहुत छोटे डील-डौल के आदमी हैं, लेकिन मार्च के चुनाव में कांग्रेस के खिलाफ विद्रोह का शिकार हो जाने के समय तक उनकी महत्वाकांक्षाएँ छोटी नहीं थी।

१२. तिरेपन-वर्षीय के० वी० रघुनाथ रेड्डी वेल्लौर (आंध्र प्रदेश) के रहने वाले है और वह शांति सम्मेलन के रास्ते, विद्वत्ता के क्षेत्र के अपने सम्पर्कों के जरिये एक वकील की हैसियत से राजनीति में आये। १९६२ से वह लगातार ससद के सदस्य रहे हैं। पहले वह १९६७ में औद्योगिक विकास तथा कंपनी मामलों के राज्य-मंत्री बने और अन्ततः १९७३ मे श्रम तथा पुनर्वास-मंत्री बनाये गये।

१३. के० आर० गणेश उन लोगो मे से है जिन पर इमर्जेंसी के शीघ्र ही बाद कुठाराघात हुआ। वह १९७१ से १९७५ तक तेल तथा रसायन-मंत्रालय मे राज्य-मंत्री थे। उन्होने राजस्व तथा बैंकिंग के राज्य-मंत्री की हैसियत से तस्करों और जखीरेबाजों के खिलाफ जो मुहिम चलायी थी वह इमर्जेंसी के जमाने का एक शानदार कारनामा था। उनका जन्म १९२२ मे पोर्ट ब्लेयर मे हुआ था; अभी उनकी उम्र इतनी थोड़ी है कि वह फिर राजनीति के मैदान मे लौटकर आ सकते हैं।

१४. छप्पन-वर्षीय इतिहासकार नूरुल हसन १९७२ मे शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति के राज्य-मंत्री की हैसियत से राजनीति के क्षेत्र मे आये। पहले कम्युनिस्ट रह चुकने के बावजूद रामपुर के नवाब-घराने से उन्होने सम्बन्ध स्थापित करने में कोई संकोच अनुभव नही किया (नवाब की बहन से उनकी शादी हुई थी), और न ही विद्या के क्षेत्र से उनका पुराना सम्बन्ध उन्हें सत्ता की राजनीति के प्रलोभनों का शिकार होने से रोक सका। फिर भी स्वयं उनके कथनानुसार अपनी पिछली बुद्धिजीवी वृत्ति की याद उन्हें बहुत सताती थी। उन्होने मुझसे कहा कि इमर्जेंसी से पहले या उसके दौरान श्रीमती गाधी के गिर्द जो राजनीति चलती थी उसके बारे मे उन्हें कोई जानकारी नही थी। सत्ता के पद पर इतने वर्षों तक रहने के बाद उनकी बौद्धिक प्रतिभा कुछ कुंठित हो गयी है और उनके डील-डौल को देखकर सतृप्ति की स्थूलता का आभास होता है।

१५. बासठ-वर्षीय रजनी पटेल बहुत नामी वकील हैं और वामपंथी राजनीति के प्रति गहरी रुचि रखते हैं। चौथे दशक मे वह फीरोज गांधी और इन्दिरा के साथ लंदन मे थे। कांग्रेस मे उन्होंने अचानक बड़ी धूमधाम के साथ एक प्रमुख स्थान प्राप्त किया। बम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से वह बम्बई शहर के चौधरी बन गये और १९७३ के बाद से वह विशेष आमंत्रण पर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की मीटिंगों मे नियमित रूप से भाग लेने लगे।

१६. राममनोहर लोहिया यदि अपने जीवन के अन्तिम तूफानी दिनों को पार कर गये होते तो अब ६७ वर्ष के होते। मूलतः वह 'राजनारायण' थे, अन्तर केवल यह था कि वह अपने अक्खड़पन को और अपनी किसी भी सनक को उस हद तक नही ले जाते थे कि वह हास्यास्पद हो जाये। नौजवान पीढ़ी के

सोशलिस्टों के लिए वह भाई के समान थे। दिल्ली के कॉफी-हाउसों में वह
जिन हगामी बहसों के बीच अपना दरबार लगाते थे वे प्रेरणाप्रद भले ही न
होती हो पर उनमे उकसाने की क्षमता अवश्य होती थी। लोहिया कभी
अपने जीवन की विद्रोही अवस्था से बाहर नही निकल पाये, जिसकी बहुत
बड़ी वजह यह थी कि वह समझते थे कि भारत में अब भी बहुत-कुछ ऐसा
है जिसके खिलाफ विद्रोह करने की जरूरत है। वह आदर्शवादी थे, इस हद
तक कि लगभग हर चीज के प्रति निराश हो चुके थे। उन्होंने नेहरू को और
नेहरू के परिवार को भी, कभी इस बात के लिए माफ नही किया कि वे सारे
देश के और शुरू मे स्वय उनके हीरो क्यों बन गये। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी
या प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यो पर कभी उतनी गहरी छाप नही लगी,
जितनी कि उन लोगों पर जो स्वयं लोहिया के व्यक्तित्व से प्रभावित थे।
लोहिया-सोशलिस्टो का अपना अलग ही एक दल था।

१७. रामकृष्ण सिन्हा सत्तावन वर्ष के हैं। वह फैजाबाद के रहने वाले हैं, लखनऊ
विश्वविद्यालय मे पढे और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा सोशलिस्ट पार्टी से
सम्बन्धित रह चुके हैं। कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट फोरम की स्टीयरिंग
कमेटी के सदस्य और १९६९ में फ़ोरम के राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष की
हैसियत से उन्होने प्रमुखता प्राप्त की। अपने वामपंथी विचारो के कारण वह
उस दल मे शामिल हो गये जिसने १९६९ मे श्रीमती गाधी को प्रभावित
किया। सिन्हा १९६७ मे लोकसभा के सदस्य चुने गये। वह विदेशों की
समस्याओ मे खास दिलचस्पी रखते हैं।

१८. अमृत नहट्टा का किसी समय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बन्ध था, लेकिन
बाद मे वह कांग्रेस के इतने सक्रिय सदस्य बन गये कि १९६३-६६ मे राज-
स्थान प्रदेश युवक कांग्रेस की सलाहकार समिति के और उसके साथ ही
जोधपुर जिला कांग्रेस कमेटी के भी सदस्य रहे। अखिल-भारतीय शांति
परिषद से उन्हे पुराना लगाव था, और १९६९-७१ मे वह उसके सेक्रेटरी
बने। १९६७-७० मे वह लोकसभा के सदस्य भी रहे। उनका जन्म १९२८
में बाडमेर (राजस्थान) में हुआ था। उनके जीवन की पृष्ठभूमि मे ऐसी
कोई बात नही मिलती जिससे यह संकेत मिले कि वह आगे चलकर फिल्म
बना सकते है, और वो भी किस्सा कुर्सी का जैसी बहु-चर्चित फिल्म, जिस पर
इमर्जेंसी के बाद न केवल पाबंदी लगा दी गयी बल्कि जो ऐसा लगता है कि
बिलकुल गायब ही हो गयी—प्रिंट, निगेटिव, सब-कुछ। नहट्टा हिम्मत नही
हारे है और एक दूसरी फिल्म बनाने की योजना तैयार कर रहे हैं—किस्सा
नसबंदी का—जो शायद सिनेमा के पर्दे तक पहुँच सके।

१९. के० पी० उन्नीकृष्णन् का जन्म १९३६ में कोयंबतूर में हुआ था। वह
अविवाहित पत्रकार हैं और राजनीति उनकी नस-नस में बसी हुई है। शुरू
मे वह लोहिया के साथ रहे, फिर उनसे मोह-भग होने पर इन्दिरा गांधी के
साथ आ गये। वह कांग्रेस के सोशलिस्ट फोरम के भंग कर दिये जाने के
समय तक उसके साथ रहे और राज्य सभा के सदस्य बने। वह बहुत चुस्त
और फुर्तीले आदमी हैं, लेकिन आश्चर्य की बात है कि उनकी कुछ रुचियाँ
ऐसी हैं जिनमे बहुत अधिक सक्रिय रहने की जरूरत नही पडती—ताश
और शतरंज खेलना।

२०. पचपन-वर्षीय चिन्तामणि पाणिग्रही उड़ीसा के एक लेखक तथा पत्रकार हैं

और १९५७ से १९६२ तक लोक सभा के कांग्रेसी सदस्य थे। १९६७ में वह फिर चुने गये। वह प्रजातंत्र और दैनिक मातृभूमि के संपादक रह चुके हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने अपनी जितनी कार्य-शक्ति समाज कल्याण के क्षेत्र में लगायी है उतनी किसी और काम में नहीं।

२१. शशिभूषण, उम्र उनचास साल, लश्कर (मध्य प्रदेश) के रहने वाले हैं और १९७१ में दिल्ली से लोक सभा के सदस्य चुने गये। उससे पहले १९६७ से १९७० तक भी वह संसद के सदस्य रह चुके थे। वैज्ञानिक समाजवाद के बारे में, जिसकी वह कद्र करते हैं, बड़े विस्तार से बात कर सकते हैं, और साथ ही समाजवादी सिद्धांत के साथ लोगों के यथासुविधा लगाव के बारे में भी, जिसके कारण उस सिद्धात के कभी व्यवहार में पूरा हो सकने की संभावना एक मजाक बनकर रह जाती है। वह सक्रिय आंदोलन के रास्ते राजनीति में आये हैं। वह कई पुस्तकें लिख चुके हैं और सृजनात्मक साहित्य में अपनी रुचि के बावजूद उन्होंने संगठनात्मक काम करने की अपनी ख्याति बनाये रखी है।

२२. कांग्रेस फोरम फॉर सोशलिस्ट ऐक्शन को, जिसे 'जवाहरलाल नेहरू का आशीर्वाद' प्राप्त था, आम बोलचाल में सोशलिस्ट फ़ोरम कहा जाता था, वह कांग्रेस के अंदर वामपंथियों के एक दबाव डालने वाले दल के रूप में उभरा।

२३. कांग्रेस का फरीदाबाद अधिवेशन जो अप्रैल १९६९ में हुआ था। इस अधिवेशन में संगठन के वामपंथी तथा दक्षिणपंथी दलों के बीच परस्पर-विरोधी विचारधाराओं के आधार पर विचारों का जो टकराव अंदर-ही-अंदर चल रहा था वह खुले में आ गया।

२४. नेहरू फोरम की स्थापना १९७३ में सोशलिस्ट फोरम के प्रभाव की काट करने के लिए कांग्रेस के अंदर एक दूसरे दल के रूप में हुई थी।

२५. कोडरदास कालीदास शाह ने, जो इस समय उनहत्तर वर्ष के हैं, १९३० में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ महाराष्ट्र में राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया। वह पुराने ज़माने के आदमी हैं और दकियानूसी राजनीतिक विचार रखते हैं। आश्चर्य की बात है कि १९६७ में उन्हें सूचना तथा प्रसार-मंत्री बनाया गया और फिर तमिलनाडु का गवर्नर नियुक्त किया गया।

२६. बिहार के पचपन-वर्षीय भगवत झा आज़ाद मार्च १९६७-६९ में इन्दिरा गांधी के मंत्रिमंडल में शिक्षा के राज्य-मंत्री और १९६९-७१ के दौरान श्रम, रोजगार, और पुनर्वास के राज्य-मंत्री रहे।

२७. बलिराम भगत भी पचपन वर्ष के हैं। वह १९३९ से कांग्रेस के कार्यकर्त्ता हैं। उन्होंने 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भाग लिया और दो वर्ष तक अंडरग्राउंड रहे। वह १९५२ से लोक सभा के सदस्य और १९७१ तक केंद्रीय सरकार में किसी-न-किसी पद पर रहे, जब उन्हें इस्पात तथा भारी इंजीनियरी के मंत्री के पद से हटा दिया गया। बाद में वह लोकसभा के अध्यक्ष भी रहे।

२८. अड़सठ-वर्षीय जगन्नाथ राव को अपने खाली समय में पढ़ने, ब्रिज खेलने और बागबानी का शौक है। उनकी पृष्ठभूमि एक पक्के कांग्रेसी की पृष्ठभूमि कही जा सकती है—पार्टी के सदस्य, ए० आई० सी० सी० के सदस्य, लोकसभा के सदस्य और उसके बाद अपनी योग्यता के अनुसार मंत्री। १९७० तक राव ने ये सारी सीढ़ियाँ पार कर ली थी जब वह क़ानून और

समाज कल्याण के राज्य-मंत्री बने, लेकिन, जैसा कि धवन का कहना है वह वामपंथियों का शिकार हो गये।

२९. गोरे रंग के गोल चेहरे वाले किशोरलाल पेशावर के हिंदू पठान हैं। वह ट्रेड यूनियनों की राजनीति में आये और विशेष रूप से बैंकों की ट्रेड यूनियनों से संबंधित रहे। उन्होंने वामपंथियों से कभी कोई संबंध नहीं रखा। वह कांग्रेस के और दिल्ली कार्पोरेशन के सदस्य रहे और बुनियादी तौर पर प्रादेशिक नेता हैं। अब वह जनता पार्टी में हैं और मार्च के चुनाव में जीतने के बाद लोक सभा के सदस्य की हैसियत से उन्हें अपना राजनीतिक क्षेत्र अधिक विस्तृत करने का अवसर मिला है।

३०. गुलजारीलाल नंदा अब उन्यासी वर्ष के हैं। उन्हें दो बार अंतरिम प्रधान मंत्री बनने का निराशाजनक अनुभव हुआ है, क्योंकि इस रूप में उन्होंने उस स्वर्ग की झलक देखी जो कभी उनके हाथ न आ सका। कांग्रेस में उनके जीवन का आरम्भ उस ऐतिहासिक वर्ष में हुआ था जब १९२१ में महात्मा गांधी ने पहला असहयोग आंदोलन छेड़ा था; १९३२ में और १९४२-४४ में वह सत्याग्रह के सिलसिले में जेल गये और १९५२ के बाद से स्वतंत्र भारत में सत्ता के पदों पर रहे। वह लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में १९६४ से १९६६ तक गृह-मंत्री रहे। इसी जमाने में उन सारे मामलों की जाँच हुई थी जिसका जिक्र किशोरलाल ने किया है। नंदाजी की इन्दिरा गांधी के साथ दरअसल कभी निभी नहीं और वह उनके मंत्रिमंडल में अधिक समय तक नहीं रह सके।

३१ उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत जो अब पाकिस्तान में है; इस प्रांत के लोग अपनी अडिग वफादारी के लिए मशहूर हैं।

३२. अनंतप्रसाद शर्मा बिहार के रहने वाले हैं और इस समय अट्ठावन वर्ष के हैं। १९६८-७२ में वह बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। वह इमर्जेंसी के दौरान अचानक शिखर पर पहुँच गये। वह पहले तो उद्योग तथा नागरिक पूर्ति के राज्य-मंत्री थे और फिर अगस्त १९७६ से केवल उद्योग के।

३३. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय बारीसाल (बांगला देश) में प्रोफेसर थे। वह अभी केवल चवालीस वर्ष के हैं और १९७३ में केवल चालीस वर्ष की उम्र में वाणिज्य-मंत्री के प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त किये गये। अध्यापक का काम करने और कलकत्ता में एकाउटेंट-जनरल के दफ्तर में नौकरी के बाद यह सचमुच बहुत ऊँचा पद था। वह ठेठ बंगाली बुद्धिजीवी लगते हैं, परंतु वह वाणिज्य-मंत्रालय के काम में इतनी अच्छी तरह खप गये जैसे हमेशा से यही काम करते आये हों।

३४. कुलदीप नारंग पैंतीस-वर्षीय नौजवान उद्योगपति हैं। उनके दादा डॉ० गोकुलचंद नारंग देश के विभाजन से पहले पंजाब के नेता थे। नवयुवक नारंग की राजनीतिक महत्वाकांक्षा ने इमर्जेंसी में पहले और इमर्जेंसी के बाद पैसे के बल पर उन्हें सत्ता के केंद्रों तक पहुँचा दिया।

३५. बासठ-वर्षीय हरि रामचंद्र गोखले को राजनीति के क्षेत्र में श्रीमती इन्दिरा गांधी सीधे न्यायालय में लायी थीं। वह पहले वकालत करते थे और बाद में १९६६ तक बम्बई हाईकोर्ट के जज रहे। वह १९७१ में लोकसभा के सदस्य चुने गये और कानून, न्याय तथा कंपनी मामलों के केंद्रीय मंत्री

नियुक्त किये गये। इमर्जेंसी के बाद संविधान में जो संशोधन किये गये उन पर गुस्से की जो लहर उठी उसके प्रकोप से वह न बच सके और चुनाव में उनकी करारी हार हुई।

३६. एम० सी० खरे इलाहाबाद हाईकोर्ट के मुकद्दमे के दौरान श्रीमती इन्दिरा गांधी के एक सीनियर वकील थे।

३७. जगपत दुबे रायबरेली में श्रीमती इन्दिरा गांधी के चुनाव-एजेंट थे।

३८. उत्तर भारत में हिंदुओं की एक जाति है, जो मुगलों के दरबार में मुंशी थे और उनके पहनावे, बोलचाल और खाने-पीने पर इस्लामी संस्कृति का गहरा प्रभाव है।

३९. ऑल पार्टी हिल लीडर्स कान्फ्रेंस (सर्वदलीय पर्वतीय नेता सम्मेलन)।

४०. ए० आई० सी० सी० की केंद्रीय अभियान समिति १९७४ में बनायी गयी थी। इसके अध्यक्ष जगजीवनराम और सेक्रेटरी यशपाल कपूर थे। यशपाल कपूर ने इन्दिरा गांधी के शासन के दस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में गतिमान दशक के बहुमुखी प्रचार कार्यक्रम के लिए अपनी हमेशा जैसी संगठनात्मक प्रतिभा के साथ इसका इस्तेमाल किया।

४१. सत्तावन-वर्षीय ननी आर्देशिर पालकीवाला संविधान और टैक्स की समस्याओं से संबंधित मुकद्दमों के सुविख्यात वकील हैं। वह सुप्रीम कोर्ट में श्रीमती गांधी के चुनाव के मुकद्दमे की पैरवी करने आये थे। जब इमर्जेंसी की घोषणा के बाद उन्होंने पैरवी करने से इंकार कर दिया तो इसके बारे में व्यावसायिक शिष्टाचार के प्रश्न उठाये गये।

४२. पी० एन० हकसर ने मुझे बताया कि उनका उस मसविदे से कोई संबंध नहीं था, जबकि धवन का कहना है कि हकसर ने यह मसविदा बोलकर खुद उनसे शार्टहैंड में लिखवाया था। गुजराल बिलकुल ही दूसरी बात कहते हैं।

४३. राधारमण का जन्म १९०४ में हुआ था और वह १९१९ में कांग्रेस में भरती हुए। १९४८ से १९५१ तक वह दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी और १९६९-७२ में उसके अध्यक्ष रहे। १९७७ के चुनाव तक वह दिल्ली मेट्रोपोलिटन कौंसिल के मुख्य कार्यकारी पार्षद रहे।

४४. कर्णसिंह का जन्म १९३१ में हुआ था। १९४९ में वह अपनी भूतपूर्व रियासत जम्मू तथा कश्मीर के रीजेंट नियुक्त किये गये। १९६५ से १९६७ तक वह गवर्नर रहे और १९६७-७३ में पर्यटन तथा नागरिक उड्डयन-मंत्री के रूप में केंद्रीय राजनीति में आये। वह स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन के मंत्री थे, पर इमर्जेंसी के दौरान वह हर विवाद से दूर रहने में सफल रहे।

४५. टाइम्स ऑफ़ इंडिया, १ मई १९७५।

४६. चिमनभाई मीराभाई पटेल का जन्म १९२९ में चिकोधरा (गुजरात) में हुआ था। चिकना-चुपरा चेहरा, आंखों पर ऐनक—लेकिन देखने में यह नहीं लगता कि विद्या के क्षेत्र से उनका इतना निकट संबंध रहा है। वह गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद) में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर, सेंट जेवियर्स कॉलेज (अहमदाबाद) में प्रोफेसर और आर्ट्स फ़ैकल्टी के डीन, और अहमदाबाद में ही सरदार वल्लभभाई पटेल आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज के प्रिंसिपल रह चुके हैं। राजनीति के क्षेत्र में वह १९५४ के बाद से हैं। उनका मंत्रिमंडल टूटने के बाद उन्हें कांग्रेस के रवैये से इतनी निरा

हुई कि उन्होंने किसान मजदूर लोकपक्ष बन
चुनाव मे हार गये।

४७. एवरीमैंस वीकली, ३ अगस्त, १९७४।

४८. वही, २२ जून, १९७४

४९. वही।

५०. अमृत बाजार पत्रिका के दिलीप गांगुली को २०
गये एक इंटरव्यू में।

५१. लेखिका को व्हाट एल्स द सोशलिस्ट शीर्षक एक
की पृष्ठभूमि के बारे मे बहुत-सी बातें मालूम हु
छोड़ देने, सोशलिस्ट पार्टी मे शामिल होने, मज
और अपना ध्यान ट्रेड यूनियन आदोलन पर केंद्रित
राया है। वह १९६७ मे लोकसभा के सदस्य
सोशलिस्ट पार्टी के चेयरमैन बने। १९७४ मे जब
की हड़ताल सगठित की, उस समय वह ऑल इंडि
अध्यक्ष थे और सरकार के भरपूर दमन का शिकार
यह अंडरग्राउंड चले गये और उन पर बड़ौदा डाय
मुकद्दमा दायर किया गया। उनके एक मित्र ने, ज
रहे, बताया, "जार्ज बिलकुल बच्चों की तरह है।
दिमाग मे बैठ जाये तो वह उसे पूरा करके ही दम
इस बात का पक्का प्रबंध कर लिया था कि किसी
पहुँचने पाये।" जब जनता पार्टी ने सत्ता की बागडो
तो डायनामाइट कांड का मुकद्दमा वापस ले लिया
केंद्रीय मंत्रिमंडल मे शामिल किये गये। इस समय
अभी केवल सैंतालीस वर्ष के हैं, और उन्हें पहली बा
सँभालना पड़ा है। वह कहते हैं कि अपनी इस नयी
अटपटा महसूस करते हैं।

५२. नेशनल रेलवेमैंस यूनियन मे भाषण, अक्तूबर १९७३।

५३. मद्रास मे २६ मार्च १९७४ को भाषण।

५४. एवरीमैंस वीकली, २२ मार्च १९७४।

५५. युवकों के नाम ९ दिसंबर १९७३ को जारी किया गया

५६. एवरीमैंस वीकली, २१ जून १९७४।

५७ पी० एन० धर एक सुसंस्कृत व्यक्ति हैं, बोलते
कविता तथा कलाओं से गहरा लगाव रखते हैं। १९
इंस्टीट्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ के डायरेक्टर थे
यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर नियुक्त हुए। प्र
के बावजूद उनकी आर्थिक विश्लेषण की क्षम
अर्थशास्त्र के विषयों पर कई किताबें लिखी हैं।

५८. पी० के० आर० वी० राव धाराप्रवाह बोलते
अपने विचारों मे बड़ी ...
मत करते हैं; उनके विचार ... अनुकूल हैं। उनका
संस्थाओं के सर्वथा अनुकूल है। उनका
ब्रेन ट्रस्ट हैं और यही कारण है कि दिल्ली
पिता के समान माना जाता है। वह दिल्ली स्कूल

और पहले डायरेक्टर रहे और फिर इंस्टीच्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ के संस्थापक और पहले डायरेक्टर बने। १९६७ में वह लोकसभा के सदस्य चुने गये और, बड़ी विचित्र बात है, परिवहन तथा जहाज़रानी के मंत्री बनाये गये! १९६९ से १९७१ तक जब वह शिक्षा-मंत्री रहे तो यह काम उनके स्वभाव के अधिक अनुकूल था, लेकिन वह इस नतीजे पर पहुंचे कि सरकारी सत्ता में इतने बंधन और सीमाएं हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में भी अपने विचारों को लागू करना असंभव है।

५९. वी० के० आर० वी० राव तथा अन्य, **इनफ्लेशन एंड इकनॉमिक क्राइसिस**, नयी दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

६०. जेरेमिआह नोवाक (अमरीकी पत्रिका **एशिया मेल** के स्तंभ लेखक), **द रोल ऑफ़ आई० एम० एफ़०, वर्ल्ड बैंक।** "इमर्जेंसी इकनॉमिक पैकेज—१", **टाइम्स ऑफ इंडिया**, १ जुलाई १९७७।

६१. अड़तालीस-वर्षीय सी-एच० हनुमंत राव ने १९६६-६७ में शिकागो यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र में पी-एच०डी०के बाद की रिसर्च फेलोशिप प्राप्त की थी। १९६१ से वह इंस्टीच्यूट ऑफ़ इकनॉमिक ग्रोथ से संबंधित रहे हैं और सितंबर १९७६ से उसके डायरेक्टर हैं। उन्होंने भारत में कृषि के विभिन्न पहलुओं के बारे में कई किताबें लिखी हैं।

६२. काले बाजार के अर्थतंत्र के बादशाह हाजी मस्तान धड़ल्ले से भारत के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा अन्य नागरिकों की अपने यहां आवभगत कर चुके हैं। अंत में वह मीसा (आतंरिक सुरक्षा कानून) में गिरफ़्तार किये गये। जेल से छूटने पर वह सुधारवादी बन गये और इस क्षेत्र में अपने व्यापक अनुभव के आधार पर उन्होंने अपने अन्य मित्रों की सहायता से तस्करी का नाम-निशान मिटा देने का वचन दिया।

६३. सर्वमित्तर सीकरी पंजाब के एडवोकेट-जनरल थे; उसके बाद वह सुप्रीम कोर्ट में आये और १९७० में भारत के चीफ जस्टिस बने।

६४. जेरेमिआह नोवाक, **द रोल ऑफ़ आई० एम० एफ़०, वर्ल्ड बैंक।** "इमर्जेंसी इकनॉमिक पैकेज—२" **टाइम्स ऑफ़ इंडिया**, २ जुलाई १९७७।

६५. २३ अप्रैल, १९७३ को सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों, जस्टिस ए० एन० ग्रोवर, जस्टिस के० एस० हेगडे और जस्टिस जे० एम० शेलात का हक मारकर जस्टिस ए० एन० रे भारत के चीफ जस्टिस नियुक्त कर दिये गये। उस समय यह प्रश्न उठाया गया था कि यह चुनाव करने का अधिकार किसे होना चाहिए? सुप्रीम कोर्ट के बार असोसिएशन का कहना था कि सुप्रीम कोर्ट के सामने जितने मुकद्दमे आते हैं उनमें से साठ प्रतिशत में सरकार स्वयं एक पक्ष होती है, और इसलिए उसे अपनी पसंद के जज नियुक्त करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। लेकिन आगे चलकर उसने यह भी स्वीकार किया कि "सरकार का यह दावा कि जजों को चुनने का अंतिम अधिकार उसी को होना चाहिए, क़ानून की सत्ता के लिए इतना घातक सिद्ध न होता अगर सरकार पर यह भरोसा किया जा सकता कि वह केवल ऐसे जजों को चुनेगी जो अदालतों की व्यवस्था की स्वतंत्रता के पक्षधर हों...।" मुझे ऐसा लगता है कि जब तक जन-साधारण के राजनीतिक बोध में परिपक्वता नहीं आयेगी तब तक इसका आश्वासन नहीं होगा। संसद में अपने विशाल बहुमत के सहारे कांग्रेस स्वयं कानून को भी बदल सकती थी।

हुई कि उन्होंने किसान मजदूर लोकपक्ष बनाया। वह जून १९७७ के चुनाव में हार गये।

४७. एवरीमैंस वीकली, ३ अगस्त, १९७४।

४८. वही, २२ जून, १९७४

४९. वही।

५०. अमृत बाजार पत्रिका के दिलीप गांगुली को २० दिसंबर, १९७४ को दिये गये एक इंटरव्यू में।

५१. लेखिका को व्हाट एल्स द सोशलिस्ट शीर्षक एक निबंध से जार्ज फर्नांडीज की पृष्ठभूमि के बारे में बहुत-सी बातें मालूम हुईं। सचमुच, उनके पढ़ाई छोड़ देने, सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने, मजदूर वर्ग को संगठित करने और अपना ध्यान ट्रेड यूनियन आंदोलन पर केंद्रित करने का इतिहास काफी लंबा है। वह १९६७ में लोकसभा के सदस्य चुने गये और १९७३ में सोशलिस्ट पार्टी के चेयरमैन बने। १९७४ में जब उन्होंने रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल संगठित की, उस समय वह ऑल इंडिया रेलवेमेंस फेडरेशन के अध्यक्ष थे और सरकार के भरपूर दमन का शिकार हुए। इमर्जेंसी के दौरान वह अंडरग्राउंड चले गये और उन पर बड़ौदा डायनामाइट षड्यंत्र कांड में मुकद्दमा दायर किया गया। उनके एक मित्र ने, जो इस दौरान उनके साथ रहे, बताया : "जार्ज बिलकुल बच्चों की तरह हैं। अगर कोई बात उसके दिमाग में बैठ जाये तो वह उसे पूरा करके ही दम लेना चाहता है। हमने इस बात का पक्का प्रबंध कर लिया था कि किसी व्यक्ति को कोई हानि न पहुँचने पाये।" जब जनता पार्टी ने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में सँभाली तो डायनामाइट कांड का मुकद्दमा वापस ले लिया गया और फर्नांडीज केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल किये गये। इस समय वह उद्योग-मंत्री हैं। वह अभी केवल सैंतालीस वर्ष के हैं, और उन्हें पहली बार शासनसत्ता का भार सँभालना पड़ा है। वह कहते हैं कि अपनी इस नयी भूमिका में वह बहुत अटपटा महसूस करते हैं।

५२. नेशनल रेलवेमेंस यूनियन में भाषण, अक्तूबर १९७३।

५३. मद्रास में २९ मार्च १९७४ को भाषण।

५४. एवरीमैंस वीकली, २२ मार्च १९७४।

५५. युवकों के नाम ६ दिसंबर १९७३ को जारी किया गया खुला पत्र।

५६ एवरीमैंस वीकली, २१ जून १९७४।

५७ ए० एम० खुसरो मध्य सुसंस्कृत व्यक्ति हैं, बोलते बहुत अच्छा हैं और कविता तथा कलाओं से गहरा लगाव रखते हैं। १९७० से १९७४ तक वह इंस्टीट्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ के डायरेक्टर थे; उसके बाद वह अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर नियुक्त हुए। प्रशासन के काम में व्यस्त रहने के बावजूद उनकी आर्थिक विश्लेषण की क्षमता मंद नहीं पड़ी है। उन्होंने अर्थशास्त्र के विषयों पर कई किताबें लिखी हैं।

५८. वी० के० आर० वी० राव धाराप्रवाह बोलते हैं और समस्याओं का गहरा मनन करते हैं; उनके विचारों में बड़ी व्यापकता है जो उनकी संगठनात्मक संकल्पनाओं के सर्वथा अनुकूल है। उनसठ वर्ष की उम्र में उनमें आज भी बेहद उत्साह है और यही कारण है कि दिल्ली में अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उन्हें दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स के संस्थापक पिता के समान माना जाता है।

और पहले डायरेक्टर रहे और फिर इंस्टीच्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ के संस्थापक और पहले डायरेक्टर बने। १९६७ में वह लोकसभा के सदस्य चुने गये और, बड़ी विचित्र बात है, परिवहन तथा जहाजरानी के मंत्री बनाये गये! १९६९ से १९७१ तक जब वह शिक्षा-मंत्री रहे तो यह काम उनके स्वभाव के अधिक अनुकूल था, लेकिन वह इस नतीजे पर पहुंचे कि सरकारी सत्ता में इतने बंधन और सीमाएं हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में भी अपने विचारों को लागू करना असंभव है।

५९. वी० के० आर० वी० राव तथा अन्य, इनफ्लेशन एंड इकनॉमिक क्राइसिस, नयी दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

६०. जेरेमिआह नोवाक (अमरीकी पत्रिका एशिया मेल के स्तंभ लेखक), **द रोल ऑफ़ आई० एम० एफ०, वर्ल्ड बैंक।** "इमर्जेंसी इकनॉमिक पैकेज—१", **टाइम्स ऑफ़ इंडिया,** १ जुलाई १९७७।

६१. अड़तालीस-वर्षीय सी-एच० हनुमंत राव ने १९६६-६७ में शिकागो यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र में पी-एच०डी० के बाद की रिसर्च फ़ेलोशिप प्राप्त की थी। १९६१ से वह इंस्टीच्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ से संबंधित रहे हैं और सितंबर १९७६ से उसके डायरेक्टर हैं। उन्होंने भारत में कृषि के विभिन्न पहलुओं के बारे में कई किताबें लिखी हैं।

६२. काले बाजार के अर्थतंत्र के बादशाह हाजी मस्तान धड़ल्ले से भारत के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा अन्य नागरिकों की अपने यहां आवभगत कर चुके हैं। अंत में वह मीसा (आंतरिक सुरक्षा कानून) में गिरफ़्तार किये गये। जेल से छूटने पर वह सुधारवादी बन गये और इस क्षेत्र में अपने व्यापक अनुभव के आधार पर उन्होंने अपने अन्य मित्रों की सहायता से तस्करी का नाम-निशान मिटा देने का वचन दिया।

६३. सर्वमित्तर सीकरी पंजाब के एडवोकेट-जनरल थे; उसके बाद वह सुप्रीम कोर्ट में आये और १९७० में भारत के चीफ जस्टिस बने।

६४. जेरेमिआह नोवाक, **द रोल ऑफ़ आई० एम० एफ०, वर्ल्ड बैंक।** "इमर्जेंसी इकनॉमिक पैकेज—२" **टाइम्स ऑफ़ इंडिया,** २ जुलाई १९७७।

६५. २३ अप्रैल, १९७३ को सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों, जस्टिस ए० एन० ग्रोवर, जस्टिस के० एस० हेगडे और जस्टिस जे० एम० शेलात का हक मारकर जस्टिस ए० एन० रे भारत के चीफ जस्टिस नियुक्त कर दिये गये। उस समय यह प्रश्न उठाया गया था कि यह चुनाव करने का अधिकार किसे होना चाहिए? सुप्रीम कोर्ट के बार असोसिएशन का कहना था कि सुप्रीम कोर्ट के सामने जितने मुकद्दमे आते हैं उनमें से साठ प्रतिशत में सरकार स्वयं एक पक्ष होती है, और इसलिए उसे अपनी पसंद के जज नियुक्त करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। लेकिन आगे चलकर उसने यह भी स्वीकार किया कि "सरकार का यह दावा कि जजों को चुनने का अंतिम अधिकार उसी को होना चाहिए, कानून की सत्ता के लिए इतना घातक सिद्ध न होता अगर सरकार पर यह भरोसा किया जा सकता कि वह केवल ऐसे जजों को चुनेगी जो अदालतों की व्यवस्था की स्वतंत्रता के पक्षधर हों...।" मुझे ऐसा लगता है कि जब तक जन-साधारण के राजनीतिक बोध में परिपक्वता नहीं आयेगी तब तक इसका आश्वासन नहीं होगा। संसद में अपने विशाल बहुमत के सहारे कांग्रेस स्वयं कानून को भी बदल सकती थी।

अजीब बात है कि भारत के भूतपूर्व विदेश-मंत्री मुहम्मद करीम छागला, जो इस प्रकार की आलोचना करने मे सबसे आगे थे, जब बंबई हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस नियुक्त किये गये थे उस समय वह खुद तैतालीस जजो का हक मारकर इस पद पर पहुँचे थे।

६६. राजनीतिज्ञ के लिए धाराप्रवाहिता कोई विलासिता नही बल्कि बुनियादी आवश्यकता है। डॉ० देवराज अस की दलीलो मे तर्क के साथ ही संवेदनशील विश्लेषण भी होता है, जिसकी वजह से उनके मार्गदर्शन मे कर्नाटक की राजनीति अत्यंत तनाव की स्थितियों में भी विस्फोटक रूप नही धारण करने पायी है। बासठ वर्ष की अवस्था मे अब वह इतने व्यवहारकुशल और अनुभवी हो चुके है कि किसी भी स्थिति को अपने पक्ष मे मोड़ना भली-भाँति जानते है। वह १९७२ मे कर्नाटक के मुख्य मंत्री बने थे।

६७ ए० आई० सी० सी० ने दस-सूत्री कार्यक्रम अपने चुनाव मैनिफेस्टो के एक अंग के रूप में २३-२५ जून १९६७ को स्वीकार किया था। उसका सबसे विवादग्रस्त सूत्र, जिसे उस जमाने मे क्रांतिकारी समझा जाता था, बैंकों का कारोबार करनेवाली संस्थाओ का सामाजिक नियंत्रण था, परंतु उसके दूसरे सूत्रो मे से बहुत थोड़े सूत्रो को ही क्रियान्वित किया गया।

६८ मावलंकर हाल (नयी दिल्ली) में ५-६ मई १९७७ को ए० आई० सी० सी० के अधिवेशन मे।

६९. प्रेमसागर गुप्ता सुबातू (शिमला) की पहाड़ियो के ठंडे इलाके के रहनेवाले हैं। उनका जन्म १९१९ मे हुआ था। अपनी शिक्षा के दौरान अनेक परीक्षाओं मे सर्वप्रथम रहने के बाद वह कम्युनिस्ट राजनीति के तूफानी जगत मे आये। पाँचवें दशक के दौरान वह कभी जेल में रहे और कभी अंडरग्राउंड रहे, जिसके बाद वह तेरह वर्ष तक नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य रहे, ट्रेड यूनियनो की राजनीति मे भाग लेते रहे, पार्टी की तरफ से कई बार विदेश गये और अंत में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दिल्ली राज्य परिषद के सेक्रेटरी बने।

७०. मावलंकर हाल (नयी दिल्ली, ५-६ मई १९७७) में ए० आई० सी० सी० के अधिवेशन मे।

७१ दिसंबर १९७४ में सोशलिस्ट पार्टी के कालीकट सम्मेलन के एक प्रस्ताव का अंश।

७२. ई० एम० एस० नांबूदिरीपाद का जन्म १४ जून १९०९ को केरल के पट्टांबि नामक स्थान मे हुआ था। चालीस वर्ष बाद केरल की राजनीति पर इस घटना का काफी असर पडा। ई० एम० एस० ने, उन्हे लोग इसी नाम से जानते हैं, सविनय अवज्ञा आंदोलन मे भाग लेने के लिए कॉलिज की पढाई छोड दी और एक साल तक जेल मे रहे। वह १९३५ तक कांग्रेस मे रहे, जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संपर्क मे आने के कारण वह क्रांतिकारी विचारो की ओर आकर्षित हुए। १९३७ मे वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने और उसके बाद से निरंतर उन्नति करते हुए १९५१ मे पॉलिट ब्यूरो के सदस्य चुने गये। १९५९ मे जब श्रीमती गांधी ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से कम्युनिस्टों के खिलाफ वह जनव्यापी अभियान छिड़वाया जिसके फलस्वरूप वैध ढंग से निर्वाचित कम्युनिस्ट सरकार को इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया गया, उस समय वही वहाँ के मुख्य मंत्री

थे। उस समय ई० एम० एस० ने श्रीमती गांधी के हथकंडों की आलोचना करते हुए जो कुछ कहा था वही बात श्रीमती गांधी की वैध ढंग से निर्वाचित सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जयप्रकाश नारायण के हथकंडों के बारे में भी कही जा सकती है। उस समय उन्होंने कांग्रेस को ताना दिया था, "अगर विपक्ष (कांग्रेस) को इतना ही भरोसा है कि बहुमत सरकार के खिलाफ है तो उन्हें ऐसी जल्दी क्या पड़ी है। वे (अगले चुनाव तक) ढाई साल इंतजार कर सकते हैं जब उन्हें पूरा मौका मिलेगा।" फर्क सिर्फ यह था कि नंबूदिरीपाद की सरकार एक राज्य की सरकार थी और इमर्जेंसी नहीं लागू कर सकती थी। उसे इस्तीफा देना पड़ा।

७३. पीपुल्स डेमोक्रेसी, १२ जनवरी १९७५।

७४. अटलबिहारी वाजपेयी अभी केवल इक्यावन वर्ष के हैं। इनका जन्म ग्वालियर में हुआ था और वह एक मंजे हुए वक्ता हैं। वह भावनाओं से ओत-प्रोत शब्दों का प्रयोग केवल इस हद तक करते हैं कि उनकी बात दूसरे के मन में बैठ जाये, सुनने वालों को भावनाओं के प्रवाह में बहा ले जाने के लिए नहीं। वह भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य हैं, लेकिन वह अपने बारे में यह धारणा पैदा करने में सफल हो गये हैं कि वह उतने कट्टर नहीं हैं जितना कि उनकी पार्टी की नीतियों तथा रवैये के आधार पर आम तौर पर समझा जाता है। अपनी कॉलेज की शिक्षा के दिनों में वह कांग्रेस के साथ संबद्ध थे। १९३९ में वह छात्र कांग्रेस में आये और १९४५ में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में चलने वाले छात्र फेडरेशन में। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सोलह वर्ष की अवस्था में वह गिरफ्तार हुए, लेकिन उसके पैंतीस वर्ष बाद इन्दिरा के भारत में उन्नीस महीने की जेल से उन्हें फिर भी एक आघात-सा लगा।

अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी के तीन दैनिक अखबारों के संस्थापक-संपादक हैं—राष्ट्रधर्म, स्वदेश और वीर अर्जुन। १९५७ में वह जनसंघ संसदीय दल के नेता रहे हैं। केंद्र में जनता पार्टी की पहली सरकार में विदेश-मंत्री की हैसियत से उन्होंने विनोदप्रियता तथा शालीनता के अप्रका-शित गुणों का परिचय दिया है।

७५. हैदराबाद में सितंबर १९७४ में भारतीय जनसंघ के सम्मेलन में [illegible] एक व्याख्यान से।

७६. अट्ठावन-वर्षीय नानाजी देशमुख का जन्म पुराने मध्यप्रांत में [illegible] उन्होंने पिलानी में शिक्षा पायी। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के [illegible] कार्यकर्ता थे जब १९५२ में भारतीय जनसंघ के संस्थापक [illegible] १९६४ तक उत्तर प्रदेश जनसंघ के सेक्रेटरी रहे। [illegible] पार्टी के सेक्रेटरी बने, फिर उसके कोषाध्यक्ष और [illegible] इमर्जेंसी की घोषणा होने के बाद वह २६ जून को [illegible] अगस्त १९७५ में पकड़े गये। अब वह जनता पार्टी [illegible] पार्टी-संगठन में इतना महत्त्वपूर्ण केंद्रीय [illegible] में रुचि रखते हैं।

७७. गुरदयालसिंह ढिल्लों का जन्म १९१५ [illegible] हुआ था। वह वकील, पत्रकार और [illegible] १९३७ से १९४७ तक वकालत [illegible]

शेरे-भारत और पंजाबी के वर्तमान के प्रधान संपादक और नेशनल मिश न्यूज पेपर्स लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर रहे। स्वतंत्रता आंदोलन में वह दो बार जेल गये। जिला कांग्रेस कमेटी (अमृतसर) के अध्यक्ष से, विधानसभा के सदस्य, पंजाब विधानसभा में कांग्रेस पार्टी के चीफ़ ह्विप, डिप्टी स्पीकर और मंत्री के पद तक तो केवल एक कदम था। लंबी छलांग तो उन्होंने तब लगायी जब १९६७ में लोकसभा के सदस्य से १९६९-७१ में वह लोकसभा के स्पीकर बने। उसके बाद परिवहन तथा जहाजरानी के केंद्रीय मंत्री बने।

७८. जयप्रकाश नारायण, **मेरी जेल डायरी**, दिल्ली, राजपाल एण्ड संज, पृष्ठ १३।

७९. वी० आर० कृष्ण अय्यर का जन्म १९१५ में केरल में हुआ था। मद्रास यूनिवर्सिटी से उन्होंने कानून की परीक्षा पास की और १९५२ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर मद्रास विधानसभा के सदस्य चुने गये। १९५७ में वह केरल विधानसभा के सदस्य चुने गये और बाद में कम्युनिस्ट सरकार में कानून, गृह विभाग, समाज कल्याण और जेल के मंत्री रहे। १९५९ में जब कम्युनिस्टों को इस्तीफा देना पड़ा तो उन्होंने केरल हाईकोर्ट में वकालत शुरू कर दी। १९६८ में वह जज, १९७१ में कानून आयोग के सदस्य और १९७३ में सुप्रीम कोर्ट के जज बने।

८०. उन्नीकृष्णन् को अभी तक याद है कि "एक दिन हम लोग साहित्य में अनुप्रास पर चर्चा कर रहे थे, और बरुआ को, जो शब्दों के स्वभाव से भली-भाँति परिचित हैं, अचानक यह वाक्य सूझा। बात बस इतनी थी। उन्होंने सोचा कि वह उपयुक्त समय पर इसे इस्तेमाल करेंगे।"

८१. निर्मलकुमार मुखर्जी छप्पन वर्ष के हैं और पंजाब के आई० सी० एस० हैं। वह १९६३ में छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास कमिश्नर की हैसियत से केंद्र में आये और १९६४ में गृह-मंत्रालय में ज्वाइंट-सेक्रेटरी बने। १९७१ में वह जम्मू-कश्मीर सरकार के चीफ सेक्रेटरी और १९७३ से १९७५ में इमर्जेंसी लागू होने से पहले तक गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी थे। लंबे कद, नरम बोली, संगीत तथा कलाओं में रुचि रखने वाले मुखर्जी इस समय कैबिनेट-सेक्रेटरी हैं।

८२. टी० सी० ए० श्रीनिवासवर्धन, जो इस समय ५४ वर्ष के हैं, उस छोटी-सी अवधि को छोड़कर जब वह अपने राज्य मध्य प्रदेश में सरकार के सेक्रेटरी थे, लगभग बारह वर्ष केंद्रीय गृह-मंत्रालय में बिता चुके हैं। वह गृह-मंत्रालय में उस समय तक केंद्र तथा राज्यों के पारस्परिक संबंधों के विभाग में डिप्टी-सेक्रेटरी, ज्वाइंट-सेक्रेटरी और एडिशनल-सेक्रेटरी रहे जब तक कि श्रीमती गांधी ने उन्हें ग्वालियर में बोर्ड ऑफ रेवेन्यू का चेयरमैन बनाकर वापस मध्य प्रदेश नहीं भेज दिया। जनता पार्टी के सत्ता सँभालने के शीघ्र ही बाद वह गृह-मंत्रालय के सेक्रेटरी की हैसियत से फिर केंद्र में वापस आ गये और एन० के० मुखर्जी कैबिनेट-सेक्रेटरी बनाये गये, जिस पद पर उनकी नियुक्ति पहले भी होने की आशा की जाती थी।

८३. संभावित बाहरी खतरे से निबटने के लिए देश में इमर्जेंसी १९६२ से ही लागू थी।

८४. इमर्जेंसी संविधान के अनुच्छेद ३५२ के अंतर्गत घोषित की गयी थी, जिसमें कहा गया है : "यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हो कि ऐसी गंभीर आपात-स्थिति

मौजूद है जिसके कारण युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक उपद्रव के रूप में भारत की सुरक्षा के लिए खतरा है तो वह उदघोषणा करके इस आशय का ऐलान कर सकते है।" इसकी धारा ३ में कहा गया है कि इस प्रकार की आपात-स्थिति का ऐलान "युद्ध या इस प्रकार के किसी आक्रमण या उपद्रव के घटित होने से पहले भी किया जा सकता है यदि राष्टपति को विश्वास हो कि इस बात का तात्कालिक खतरा मौजूद है।"

३. संजय के कारिंदे

“मैं २५ तारीख की रात को लखनऊ में ट्रेन पर सवार हुआ और सुबह ७ बजकर २५ मिनट पर दिल्ली पहुँच गया। हर चीज हमेशा की तरह थी। मैं एक टैक्सी लेकर घर आया। सड़कों पर सन्नाटा था, लेकिन स्टेशन पर टैक्सियाँ थी। बस एक बात जरूर हुई थी कि गाजियाबाद स्टेशन पर जहाँ मैं हमेशा अखबार लेता था, उस दिन अखबार नही मिला था। पहला काम मैंने यह किया कि सीधे साउथ एवेन्यू लेन मे चंद्रशेखर के घर गया। वहाँ पता चला कि वह जयप्रकाश नारायण के साथ ही गिरफ्तार कर लिये गये है। कितना धक्का पहुँचा मुझे। मैं सोचने लगा, उन्हे क्यों पकड़ा, वह तो कांग्रेसी थे। वह तो मेरी तरह थे। वह मेरी भाषा बोलते थे। मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है।”

चंद्रप्रतापनारायण सिह पूर्वी उत्तर-प्रदेश मे पडरौना राज्य के ४२-वर्षीय राजकुमार थे और विधायक रह चुके थे। वह उस दिन सुबह जब दिल्ली पहुँचे तो उनके मन मे सिद्धांतों पर अटल रहने की सच्ची लगन थी और सचमुच वह राजनीतिक आदर्श की खोज मे वहाँ आये थे। उनके दादा ने इतना नाम और पैसा कमाया था कि उन्होने एक मुकद्दमे मे मोतीलाल नेहरू को वकील किया था; उनके बाप रफीअहमद किदवई[1] के गहरे दोस्त और समर्थक थे। १९६९ में भारतीय क्रांति दल के सदस्य की हैसियत से उत्तर प्रदेश विधानसभा का चुनाव जीतकर उन्होंने चरणसिंह[2] की छत्रछाया मे राजनीति मे प्रवेश किया था। १९७१ मे वह कांग्रेस मे आ गये और नौजवान पीढी के अधिकांश लोगों की तरह वह भी इन्दिरा गांधी के करिश्मे से मंत्रमुग्ध हो गये।

सी० पी० एन० सिह दिल्ली मे यह पता करने आये थे कि वह अपने राजनीतिक भविष्य को किस दिशा में मोड़ें।

इमर्जेसी का समाचार उन्हे इतना अचानक मिला था कि वह अपने उद्देश्य से विमुख भी नही हो सकते थे। २६ तारीख को ही वह मुहम्मद यूनुस से मिलने गये, जिन्हें वह लखनऊ से जानते थे।

“आप श्रीमती गांधी से क्यों नही मिलते?” यूनुस ने उन्हें सलाह दी और मिलने का वक्त तय कराने मे उनकी मदद की।

३ जुलाई को सी० पी० एन० सिह प्रधान मंत्री से मिले। उनका जोश उबला पड़ रहा था लेकिन उन्होने खरी-खरी बातें की। “हम

लोगों को आपसे बड़ी उम्मीदें है, लेकिन हालात को बदलना होगा। हमे जनता के सामने पार्टी का एक अच्छा, साफ-सुथरा रूप पेश करना होगा।"

"कैसे ?" प्रधान मंत्री ने अचानक पूछा।

"सही ढंग से संगठन बनाकर, मंत्रियो और मुख्य मंत्रियो के काम का सही-सही मूल्यांकन करके और चुनाव में सही उम्मीदवारों को खड़ा करके। मैं दिल्ली की या पूरे भारत की राजनीति तो नही जानता, लेकिन उत्तर प्रदेश मे तो निरी गुटबाजी है। और कमलापतिजी, बहुगुणा या के० सी० पंत[1] मे से किसी एक के गुट मे होना ही काफी नहीं है। आप किसी जगह पर तभी पहुँच सकते है जब आपकी पीठ पर सभी का हाथ हो, लेकिन इसके लिए सबके चारों ओर मँडराते रहना पड़ता है। काम तो कोई कसौटी है ही नही।"

"इसे रोकना तो बहुत मुश्किल है," श्रीमती गाधी ने कहा था।

"वहाँ तो मैं कुछ कर नही सकता, मैं चाहता हूँ कि यहाँ कोई काम मुझे सौंप दिया जाये," सी० पी० एन० सिंह ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा।

श्रीमती गाधी चुपचाप उन्हें देखती रही।

"आप कल संजय से मिल लीजिये," उन्होंने कहा।

"कांग्रेस के सगठन की बुनियाद का पतन उस वक्त शुरू हुआ जब १६६६ मे राधारमण को दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी का अंतरिम (एड-हॉक) अध्यक्ष बना दिया गया," दीपचंद शर्मा ने कहा। वह छप्पन वर्ष के बहुत स्वाभिमानी आदमी है, और संगठन को बनाना और सँभालना जानते है; पहले वह दिल्ली कार्पोरेशन में कांग्रेस विपक्ष के उपनेता थे और लगभग तीस वर्ष से ए० आई० सी० सी० के निर्वाचित सदस्य हैं। "चुने ठाकुर हुक्मसिंह गये थे, लेकिन मैं समझता हूँ कि प्रधान मंत्री की सलाह पर उन्हें हटा दिया गया, क्योंकि वह चौधरी ब्रह्मप्रकाश के आदमी थे।... १६६६ मे असली परीक्षा की घड़ी आयी।...जो लोग श्रीमती गांधी के साथ थे उन्हें भी शक की निगाह से देखा जाने लगा।"

शुरू-शुरू में दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के तीस निर्वाचित सदस्य थे। १६७३ तक यह संख्या बढ़कर पैंतालीस तक पहुँच गयी थी। दो साल बाद २४० सदस्य हो गये थे और सभी ऊपर से नामजद किये हुए थे! इमर्जेंसी के बाद एच० के० एल० भगत[2], जो एड-हॉक अध्यक्ष थे, निर्माण तथा आवास-मन्त्रालय के राज्य-मंत्री बना दिये गये, और उनकी जगह एक नये अध्यक्ष लाये गये—अमरनाथ चावला।[3]

"मुझे न तो किसी कामचलाऊ कमेटी का सदस्य बनने में कोई दिलचस्पी थी और न ही मैं लोकसभा की सीट के लिए कोशिश कर रहा था, लेकिन मैंने इस सारे मामले के बारे मे प्रधान मंत्री को दो नोट लिखे कि संगठन के कोई चुनाव नही हो रहे है। मुझे कोई जवाब नहीं मिला," शर्मा ने कहा।

इसके बाद, डेढ़ ही महीने के अंदर उन्हें पता चला कि सहयोग न करने के कारण उनके खिलाफ 'कीचड़ उछालने की मुहिम' चलायी जा रही है। शर्मा ने सोचा कि अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। उन्होंने कहा, "जहाँ तक अकेले श्रीमती गांधी का सवाल है, वह देश मे सबसे शक्तिवान व्यक्ति हैं।" लेकिन उन्हें बताया गया था कि दिल्ली के मामले वह नही देखती है।

"फिर कौन देखता है ?" उन्होंने पूछा।

जवाब मिला, "संजय से मिलिये।"

"सितंबर १९७५ में मुझे राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में जाकर यह पता लगाने को कहा गया कि बीस-सूत्री कार्यक्रम को पूरा करने का काम कैसा चल रहा है। मैं जब लौटकर आया तो मैंने प्रधान मंत्री को दी जानेवाली अपनी रिपोर्ट में लिखा कि पैसे वाले स्वार्थी लोग भूमिहीन खेत-मजदूरों को जमीन देने में बाधा डाल रहे हैं और क़र्ज़ों के रद्द कर दिये जाने के बाद कोई दूसरा ऐसा साधन नहीं है जहाँ से गाँव वालों को कर्ज मिल सके। यह रिपोर्ट प्रधान मंत्री की कोठी पर पहुँचा दी गयी, लेकिन कोई जवाब नहीं मिला," दिल्ली के पुराने अनुभवी ५६-वर्षीय कांग्रेसी नेता शिवचरण गुप्ता[१] ने कहा, जिनकी संगठन में काफी साख थी।

पंद्रह दिन बाद ग्रामीण बैंक स्थापित करने और भूमिहीन खेत-मजदूरों को जमीन देने के सवाल पर विचार करने के लिए मुख्य मंत्रियों की एक मीटिंग बुलायी गयी। इससे शिवचरण गुप्ता को कुछ नैतिक संतोष भले ही मिला हो लेकिन उनका मनोबल नहीं बढ़ा, क्योंकि वह केवल अटकल ही लगा सकते थे कि इसमें शायद उनकी रिपोर्ट की वजह से कोई सहारा मिला हो। पी० वी० नरसिंह राव[२] के कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी के पद से हटने के बाद, इस तरह की रिपोर्ट मँगाने का सिलसिला भी खत्म कर दिया गया। विभिन्न राज्यों से कांग्रेस के प्रमुख लोगों के लिए निमंत्रण आते रहे, लेकिन ऑल-इंडिया कांग्रेस कमेटी ने इसके लिए कोई सुविधा नहीं दी। या तो कार्यक्रमों की समीक्षा करने के लिए उन्हें 'ठीक' लोग नहीं मिल सके, या फिर इन दौरों के लिए पैसा देने में मुख्य मंत्रियों के स्तर पर कोई अड़चन पैदा हो गयी। लेकिन उस वक़्त तक यह विचार नहीं पैदा हुआ था कि सबसे निचले स्तरों पर काम करने के लिए युवक कार्यकर्त्ताओं की मदद ली जाये।

गुप्ताजी का कहना है, "इसके बाद मैंने गंदी बस्तियों की सफ़ाई के लिए कई चिट्ठियाँ लिखीं। सिर्फ़ एक ही चिट्ठी की प्राप्ति-सूचना मिली, वह भी प्रधान मंत्री के सेक्रेटेरियट के एम० हैदर की तरफ से। यहाँ तक कि इससे संबंधित मंत्रालय तक को इस मामले पर विचार करने के लिए कोई समय नहीं था। मैंने प्रधान मंत्री से प्रार्थना की कि वह मुझे मिलने के लिए कुछ समय दें। कुछ भी नहीं हुआ। फिर मैं मंत्रालय में गया—कोई नतीजा नहीं। आखिरकार जब मैं यह समझ गया कि ये मामले संजय देख रहा है तो मैं उसके पास गया...।"

जुलाई १९७६ में मांट्रियल के ओलिंपिक खेलों में भाग लेने के लिए भारतीय खिलाड़ियों का जो दल जा रहा था, वायु-सेना के प्रधान एयर-मार्शल ओ० पी० मेहरा उसके नेता थे। एक महीने पहले, जब हाकी के खिलाड़ी जा रहे थे, एयर-मार्शल मेहरा उनको प्रधान मंत्री से मिलाने के लिए ले गये। उनसे मिल चुकने के बाद यह सुझाव दिया गया कि ये लोग संजय गांधी से भी मिल लें।

"ज़रूर," एयर-मार्शल ने हामी भरी।

नौ-सेना के एक रिटायर्ड प्रधान इस संभावना के बारे में बातचीत करने के लिए प्रधान मंत्री से मिलना चाहते थे कि क्या उन्हें कोई दूसरा काम दिया जा सकता है। प्रधान मंत्री के बजाय उन्हें संजय गांधी से मिलने का वक़्त दिया गया।

"हमारे पास अभी तो आपके लायक़ कोई काम है नहीं," संजय ने एडमिरल से कहा, "लेकिन जब भी आप दिल्ली आयें तो मिलते रहिए। शायद आगे चलकर कुछ निकले।"

"अगर आप उससे मिलते रहें तो बहुत अच्छा रहेगा," प्रधान मंत्री की कोठी के एक खास आदमी ने उन्हें चुपके से सलाह दी।

चंद्रजीत यादव ने बताया, "मैं संजय से इन्दिराजी के साथ उस समय मिला जब बहुगुणा के इस्तीफे के बाद नारायणदत्त तिवारी को उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री बनाने की बात चल रही थी।"

"तिवारी को मुख्य मंत्री और शीला कौल को प्रदेश कांग्रेस कमेटी का प्रेसिडेंट बनाने के बारे में आपका क्या खयाल है?" प्रधान मंत्री ने पूछा।

"शीलाजी के खिलाफ तो तीन बातें हैं," यादव ने कहा, "एक तो वह ब्राह्मण हैं, दूसरे वह आपकी मामी हैं—यह बात उनके खिलाफ जायेगी—और वह बहुत लोगों को जानती भी नहीं।"

"और तिवारी?"

"वह मंत्री तो अच्छे थे, लेकिन वह नेता अच्छे नहीं हैं। वह कुछ अजीब गोल-मोल ढीले-ढाले आदमी हैं। हम लोग विधानसभा में साथ-साथ काम कर चुके हैं। हम दोनों विपक्ष में थे, मैं हमेशा कुछ विचारों की बुनियाद पर बहस करता था—वह कभी ऐसा नहीं करते थे।"

"नहीं, नहीं, वह बहुत अच्छे रहेंगे," संजय बीच में बोल उठा।

प्रधान मंत्री चंद्रजीत यादव से सहमत थीं। जब फैसलों का ऐलान किया गया तो शीला कौल तो अध्यक्ष नहीं बनायी गयीं, लेकिन तिवारीजी मुख्य मंत्री बन गये।

"क्या आपको यह अंदाजा था कि उस वक्त संजय किस स्तर पर और किस हद तक काम कर रहा था?" मैंने चंद्रजीत यादव से पूछा।

"था क्यों नहीं," उन्होंने जवाब दिया, "हम सभी लोग जानते थे। मुख्य मंत्री लोग उससे मिलकर आने के बाद हममें से एक-एक को बताते थे कि उसने क्या कहा और क्या-क्या हुआ।"

"आपकी राय में वह कौन-सा मौका था जिसके बाद से दक्षिणपंथ की ओर साफ तौर पर एक मोड़ आया?" मैंने राधारमण से पूछा।

"फैसले के बाद। उससे पहले इस तरह की कोई बात नहीं थी। जिन कार्डधारी कम्युनिस्टों को वह खुद लायी थीं उनसे उनके दिल में जो डर बैठ गया था, उसी की यह प्रतिक्रिया थी। उनकी मदद से ही १९६९ में वह जीत पायी थीं। उन्हीं की मदद से उन्होंने उत्तर प्रदेश को अपने कब्जे में रखा था। कम्युनिस्टों के बिना बिहार में वे टिक नहीं सकती थीं, और केरल में तो मिली-जुली सरकार थी ही...।

"संजय गांधी अपने अलग विचार लेकर आया। उस लड़के को कोई अनुभव तो था नहीं, राजनीति की समझ भी नहीं थी। वह एक निजी कारखाने का मालिक था; उस पर अपने इसी अनुभव का भूत सवार था, और वह अपनी राय बहुत मजबूती के साथ रखता था। घर पर हर वक्त उसकी बातें और दलीलें सुन-सुनकर मुमकिन है श्रीमती गांधी पर भी असर पड़ता हो। वह ऐसी कट्टर तो हैं नहीं, उन्हें भी नये सांचे में ढाला जा सकता है।"

"क्या आप समझते हैं कि वह उसे थाह लेने के लिए इस्तेमाल कर रही थीं?"

"सीधे-सीधे तो नहीं, लेकिन इतना मैं कह सकता हूँ कि वह नाखुश भी नहीं थी।"

"आप तो पुराने तजुर्बेकार कांग्रेसी हैं, आपने संजय को दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्यों और दिल्ली के राजनीतिज्ञों के सामने भाषण देने के लिए बुलाकर खास तौर पर उसे सामने लाने की कोशिश क्यों की?"

"लड़का होनहार था। उसके विचार बहुत अच्छे थे। मुझे उसका पाँच-सूत्री कार्यक्रम पसंद था। मैं समझता था कि नेहरू परिवार के किसी भी नौजवान को पूरा मौका दिया जाना चाहिए। इसलिए मैं उसे लाया। वह जो कुछ कहता था वह ठीक था। उसने कहा, नारेबाज़ी नहीं होना चाहिए, और काम पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। लेकिन उसका काम करने का ढंग बहुत तीखा था, बात गले से उतरती नहीं थी।"

"क्या आप समझते हैं कि वह खुद अपनी ताकत कायम करने के लिए बुनियाद तैयार करना चाहता था?"

"नीति के सवाल पर वह अपनी माँ से सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करता था। जब कम्युनिस्ट हड़तालों को बढ़ावा देते थे तो वह कहती थी, 'ये लोग हमेशा मेरा फायदा उठाते हैं।' सबसे पहले उसे इसी तरह की बातों से शह मिली। ज़ैलसिंह[2] और दूसरे मुख्य मंत्रियों को कम्युनिस्ट-विरोधी लहर पैदा करने के लिए संजय ने ही टेलीफ़ोन किया था...।"

•

जैसे-जैसे संजय की ताकत बढ़ती गयी, संसद के कई सदस्य यह महसूस करने लगे कि इन्दिरा गांधी जान-बूझकर विचारधारा के क्षेत्र में एक संतुलन कायम करने की कोशिश कर रही हैं। चूँकि उनका नाम वामपंथी नीतियों के साथ जुड़ गया था, इसलिए संजय के विचारों से पूँजीवादी देशों को यह सोचने का प्रोत्साहन मिल सकता था कि इन्दिरा शायद अपनी प्राथमिकताओं में कुछ हेर-फेर करें। वे सोचते थे कि श्रीमती गांधी चारों ओर हर तरह के संकेत भेज रही थीं, यह मानकर कि संजय और उसके साथी जो कुछ कहते हैं उससे वामपंथी नाराज़ नहीं होंगे और साथ ही दक्षिणपंथियों को उम्मीद भी बँध जायेगी।

राज्यसभा की उत्साहमयी युवा सदस्या मार्गरेट आल्वा[3] ने कहा, "हममें से बहुत-से लोग यह महसूस करते थे कि हमें श्रीमती गांधी और संजय में से एक को चुनना होगा, हमें चुनने पर मजबूर कर दिया जायेगा, जिस तरह १९६९ में कर दिया गया था। लेकिन हमने सोचा कि हम अपने विचारों को अपने तक ही रखें, नहीं तो हमारे ऊपर संजय के खिलाफ़ होने की मुहर लग जायेगी। श्रीमती गांधी के बिना उसकी यह हैसियत हो ही कैसे सकती थी? मेरे दिमाग में यही संघर्ष चल रहा था।"

जैसा कि मार्गरेट आल्वा ने खुद बयान किया, वह इन्दिरा गांधी की अंधी भक्त थीं। वह महसूस करती थीं कि १९६९ में उन्होंने संगठन की सत्ता से टक्कर लेकर नौजवान पीढ़ी के सामने एक चुनौती रखी थी। इन्दिरा ही थीं जिन्होंने पुराने नेताओं की गुटबंदी का डटकर सामना किया था, आम सदस्यों को अपनी प्रगतिशील नीतियों के पक्ष में कर लिया था, और कांग्रेस में उस नयी भावना का प्रतिनिधित्व करने लगी थीं जो उस समय तक मौजूद नहीं थी। इसी से प्रेरित होकर मार्गरेट उस समय कांग्रेस में आयी थीं। जैसा कि वह बताती हैं, वह १९७६ में दिल्ली आयीं "जिस वक्त कांग्रेस को भरपूर चुनौती का सामना करना पड़ रहा था," और नौजवान पीढ़ी के दूसरे लोगों की तरह वह भी महसूस करती थीं

कि राजनीति में वे जो कुछ भी हैं, श्रीमती गांधी की बदौलत हैं। मार्गरेट आल्वा ने कहा, "श्रीमती गांधी में एक आकर्षण था, वह नौजवान थी और न जाने कैसे वह हर आदमी में यह विश्वास जगा देती थीं कि अगर कोई उनके पास तक पहुँच जाये और उनका विश्वास प्राप्त कर ले, तो कुछ-न-कुछ होकर रहेगा।"

जुलाई १९७६ के आते-आते मार्गरेट आल्वा की समझ मे यह नही आ रहा था कि वह किधर जायें। एक बार उन्होंने ओम महता[*] से कहा था, "कम-से-कम हमे कुछ बताइये तो, हमे रास्ता दिखाइये। हमें क्या करना है? क्या हम लड़ें?" लेकिन न पार्टी ने कोई रास्ता दिखाया, और न प्रधान मंत्री ने। दक्षिण के कुछ मुख्य मंत्री बौखलाकर मार्गरेट के पास आने लगे।

वे कहते थे, "तुम तो दिल्ली मे रहती हो, तुम जानती होगी। हम लोग संजय की वाहवाही करें या प्रधान मंत्री को खुश रखें?"

सजय क्यों?

प्रधान मंत्री के इस छोटे बेटे में, जिसका जन्म १४ दिसबर १९४६ को हुआ था, ऐसी क्या खास योग्यता थी कि वह वामपंथियों का मुकाबला कर सके, जिनके बारे मे श्रीमती गांधी को यह खतरा पैदा हो गया था कि वे सत्ता हथिया लेंगे!

वह दून स्कूल और सेंट कोलंबस में पढा था, कुछ दिन वह लंदन मे रोल्स-रायस के कारखाने में अप्रेंटिस भी रहा था। पढने-लिखने से उसे ज़रा-भी रुचि नहीं थी, बुद्धिजीवियो जैसी उसमें कोई भी बात नही थी, और आम लोगों की नज़र में वह एक बिगड़ा हुआ आवारा लड़का था जिसे लडकियों का बहुत शौक था और जो मोटर का दीवाना था। कई बरसों के दौरान दिल्ली में उसके नाम के साथ कितने ही किस्से जुड़ गये। ऐयाशी और औरतो के बारे मे कितनी शर्मनाक कहानियाँ थी; तरह-तरह की हेरा-फेरी के, चोरी-छिपे लखनऊ या लंदन या कही भी चले जाने के किस्से सुनने मे आते थे; पछताती हुई लडकियों और उनके बिफरे हुए भाइयो के किस्से; इस तरह के किस्से कि सिर्फ मजा लेने के लिए कही किसी की मोटर उडा ली, कहीं राग-रंग की महफ़िल जमा ली। एक तरफ अगर इस तरह के किस्से थे कि वह किसी आलीशान होटल में शराब पिये हुए पाया गया तो दूसरी तरफ वह अपने मिस्त्री दोस्त अर्जुनदास[**] के अड्डे पर भी देखा जाता था, जहाँ वह बैठकर ट्रक ड्राइवरो और मोटर मेकैनिकों से गप लड़ाता था—उन लोगों के बीच बैठकर जो हर वक्त मरने-मारने को तैयार रहते थे, जिनके बारे मे आमतौर पर यह समझा जाता है कि उनका दिल सोने की तरह खरा होता है, लेकिन जैसा कि बाद में पता चला, उनके हौसले और ख्वाब और भी सुनहरे थे।

अडतीस-वर्षीय राज कौशिक[**] उन लोगों मे से एक हैं जिन्हे संजय का दाहिना हाथ समझा जाता था, वह इमर्जेंसी के दौरान बनायी गयी कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के सदस्य थे, और चंदा जमा करने के लिए आयोजित फिल्मी सितारों के कार्यक्रम गीतो भरी शाम के कर्त्ता-धर्त्ता थे, जिसके बारे मे बाद मे बहुत-से झगड़े पैदा हुए। वह बताते है, "मैं संजय से १९७१ में मिला था। मुझे उससे टिलू (के० एस० माखन, दिल्ली फ्लाइंग क्लब के सदस्य और ऑनरेरी इंस्पेक्टर) ने मिलाया था। वह गुलाबी बाग की एक गैराज मे काम कर रहा था। वह एक नौजवान, दुबला-पतला, खूबसूरत-सा लड़का था। मुझे बडी शर्म आ रही थी। मैं सोच रहा था कि इतने बड़े परिवार का लड़का और इसे ऐसी जगह में इस तरह

काम करने में कोई झिझक नहीं होती, और एक हम लोग हैं कि अपना उतना वक्त बर्बाद करते हैं। मैं उसे अपने समाजसेवा संगठन, विदूषक संघ का संरक्षक बनाना चाहता था। वह राजी हो गया। जब समय से पहले ही चुनाव कराने का ऐलान कर दिया गया तो मैं प्रधान मंत्री की कोठी पर गया। हमारे संगठन का किसी पार्टी से संबंध नहीं था लेकिन इन्दिराजी के 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम ने हमें बहुत प्रभावित किया था, और हम उसमें हाथ बँटाना चाहते थे। हम लोग संजय को कमलानगर ले गये। वह वहाँ भाषण देने लगा। इससे पहले कमलानगर में कभी इतनी भीड़ नहीं देखी गयी थी।"

मजे की बात यह है कि १९७१ के चुनाव में संजय ने शशिभूषण के लिए भी काम किया। शशिभूषण का संबंध उस वामपंथी ग्रुप के साथ था जिससे बाद में चलकर संजय नफरत करने लगा था। शशिभूषण शहर के दूसरे छोर पर दक्षिणी दिल्ली में खड़े हुए थे। वहाँ संजय लड़कियों के लेडी श्रीराम कॉलेज के सामने एक टूटी-फूटी चाय की दुकान में अपने लँगोटिया यारों के साथ बैठकर भद्दे-भद्दे मजाक किया करता था और लड़कियों पर इतनी ढिठाई से फिकरे कसता था कि एक दिन शशिभूषण के प्रचार-मैनेजर ने, जिसे वह 'चाचा' कहता था, उसे डाँट दिया। उस वक्त वह कोई कच्ची उम्र का छोकरा नहीं था। वह पच्चीस साल का अच्छा-खासा नौजवान था, मारुति लिमिटेड का मैनेजिंग डायरेक्टर था, वह उस कारखाने का मालिक था जिसमें जनता के लिए मोटरें बनने वाली थीं, जिसका सपना वह बचपन से देखता आया था और जो अब पूरा हुआ था।

सवाल यह है कि संजय खुद इस तरह के शर्मनाक किस्सों के पीछे भागता था या ये शर्मनाक किस्से उसका पीछा कर रहे थे?

सबसे पहली बात तो यह कि मारुति तो एक ऐसी मुसीबत थी जो जान-बूझकर मोल ली गयी थी। उसकी मंजूरी एक ऐसी माँ ने दी थी जो यह महसूस करती थी कि वह अपने बेटे को व्यापार करने के उसके वैध अधिकार से वंचित नहीं रख सकती। इस कारखाने की योजना बहुत बड़े पैमाने पर बनायी गयी थी, जिसमें भारत के कुछ बहुत बड़े-बड़े उद्योगपतियों का पैसा लगा हुआ था। वाम-पंथियों की दलील यह थी कि अगर प्रधान मंत्री के बेटे की योजना के साथ बड़े-बड़े उद्योगपतियों और व्यापारियों का इतना गहरा संबंध होगा तो जरूरत पड़ने पर वह इन बड़े-बड़े इजारेदार घरानों के खिलाफ कोई कार्रवाई कैसे कर सकेंगी? लेकिन यह कुनबा-परवरी का सवाल तो अलग बात थी—सवाल यह है कि, मिसाल के लिए, हरियाणा के मुख्य मंत्री बंसीलाल ने उसे जमीन क्यों दिलायी और यह जमीन उसे किस तरह मिली? जब इस बात के बारे में भी संदेह था कि वह मोटर बनाने के लिए तकनीकी जानकारी रखने वाले काफी लोग जमा भी कर पायेगा या नहीं, तो उसके नाम 'लैटर ऑफ इंटेंट' ही क्यों जारी किया गया? या मारुति राष्ट्र के बिगड़े हुए लाडले के हाथ का बनाया हुआ खिलौना होने वाला था?

तारकेश्वरी सिन्हा ने उन दिनों को याद करते हुए जब नेहरू प्रधान मंत्री थे, जोर देकर कहा, "फीरोजभाई" को इस बात की धुन थी कि उनके बेटे तकनीशियन बनें।" वह संजय के पिता को कितनी ही बार क्वीन विक्टोरिया रोड (अब डॉ० राजेंद्रप्रसाद रोड) वाले घर में अपने दोनों बेटों के साथ मिलते हुए देख चुकी थी। यह घर उन्हें संसद-सदस्य की हैसियत से मिला था, और वह दिन में यहीं रहते थे और कभी-कभी तीन मूर्ति भवन से दूर, जहाँ सारा परिवार साथ

रहता था, वह रात को भी यहीं रह जाते थे। तारकेश्वरी सिन्हा कहती हैं, "एक माँ होने के नाते मैं इन्दिराजी का रवैया समझ सकती हूँ। वह महसूस करती होंगी, 'मैं उसे वह एक चीज भी देने से इंकार कर दूँ जो वह चाहता है ?' मारुति के बारे में १९६८ से वहम चल रहा है। हर बार जब उन्हें संसद में सवालों का जवाब देना पड़ता था तो वह वित्त-मंत्रालय से और दूसरे मंत्रालयों से रिपोर्टें मँगाती थीं। किसी भी विभाग की रिपोर्ट से यह संकेत नहीं मिलता था कि उस योजना में कोई गड़बड़ी है।"

१९७२ के एशिया व्यापार मेले में हरियाणा राज्य के पैवेलियन में मारुति मोटरकार के एक नमूने को (जो बिना इंजन के वहाँ रखा गया था) देखने के लिए हरदम भीड़ लगी रहने लगी। लेकिन दिसम्बर १९७३ तक अरब देशों द्वारा तेल की कीमत बढ़ा देने की वजह से और नतीजे के तौर पर पेट्रोल के भाव बेतहाशा चढ़ जाने से मोटरकार उद्योग की प्रगति रुक गयी थी। मोटरों की माँग बहुत कम हो गयी, और मारुति भी, जो अभी पूरी तरह तैयार होने के कहीं निकट भी नहीं थी, ठप हो गयी। उसका सिर्फ एक ही नमूना दिखायी देता था, और वह शराब बनाने के कारखाने मोहन मीकिंग के शो-रूम में। यह मोटर मोहन मीकिंग के एक डायरेक्टर के पास थी—यह अकेली मारुति मोटर थी जो सड़कों पर चलती दिखायी देती थी, लेकिन इसमें भी हर वक्त कोई-न-कोई खराबी पैदा होती ही रहती थी, या तो इंजन बहुत गरम हो जाता था या गियर टूट जाता था।

मैंने सोचा कि यह विषय इतना दिलचस्प है कि इसके बारे में मैं अपनी पत्रिका **सर्ज** में, जो अब **सर्ज इंटरनेशनल** है, एक लेख छापूँ। मुझे स्वयं भी इसके बारे में जानने की उत्सुकता थी। मैंने सोचा कि क्यों न मैं खुद जाकर पता लगाऊँ कि मारुति और उसके बनाने वाले में कितना दम है। मैंने संजय से मिलने का वक्त तय किया। मेरी रिश्ते की बहन आशा नारंग, जो बहुत अच्छी तस्वीरें खींचती है, एक और फोटोग्राफर कांतिचंद्र सोनरेक्सा, एक मित्र सुदर्शन सेठ और मैं ५ मई को मारुति के कारखाने में गये।

सबसे पहले संजय ने हम लोगों को दिखाया कि यह मोटर चलती कैसे है। सेठ और सोनरेक्सा ने कारखाने को अंदर से जाकर देखने का फैसला किया। सफेद मारुति मोटर में आशा पीछे बैठी थी, मैं सामने बैठी थी और संजय गाड़ी चला रहा था। जाहिर है, पहले उसने अपने कारखाने की मुख्य इमारत के चारों ओर उसे चलाकर दिखाया। वह तूफानी रफ्तार से मोटर चला रहा था, कभी पक्की सड़क पर, कभी देहात की कच्ची सड़क पर, और कभी झाड़ियों, गड्ढों और पत्थर की चट्टानों के पार। सुई १०० किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार बता रही थी। वह बहुत इतमीनान से बैठा हुआ था और मैं सहमी हुई दम साधे बैठी थी। आशा का भी यही हाल था। मारुति भी सड़क को इसी तरह जमकर पकड़े हुए थी, लेकिन वह शोर बहुत करती थी। संजय ने कहा, "शोर तो होगा, नहीं तो दाम बहुत बढ़ जायेंगे।" शुरू-शुरू में उसकी योजना थी कि इस मोटरकार की कीमत १२,००० रु० होगी। उसने बताया कि अब बाजार की मंदी और सामान की बढ़ती हुई कीमतों को देखते हुए वह २५,००० रु० से कम नहीं हो सकती। उसका इरादा था कि दिसंबर १९७५ तक रोज ५० मोटरें बनने लगेंगी, और अंत में उसका इरादा रोज २०० मोटरें बनाने का था। उसकी योजना थी कि इस कारखाने के पास ही मोटर को जरूरत का दूसरा सामान बनाने के

देने का मेरा कोई इरादा नही था। जाहिर है कि स्वतंत्र पार्टी, जनमघ और भारतीय लोकदल जैसी कुछ पार्टियों मे इससे भी ज्यादा धनवान लोग है और उनमें भ्रष्टाचार भी ज्यादा है।" वह अपनी दृढ धारणाओ को पूरी तरह छोड़ने को तैयार नही था क्योंकि उसने यह भी कहा कि "मुझे गुस्सा इसलिए आया कि कुछ लोग, जो अपने को मार्क्सवादी कम्युनिस्ट कहते है और ऐसा जताते है जैसे वे दूसरो से बढकर है, सचमुच बहुत पैसे वाले है और ईमानदार भी नही है। मैं कम्युनिस्टो से सहमत नही हूँ, लेकिन मैं यह मानता हूँ कि उनके कार्यकर्त्ता बडी लगन से अपने ध्येय के लिए काम करते है और उसके लिए कुर्बानी देने को तैयार रहते है। हो सकता है कि वे किसी परिस्थिति का फायदा उठाते हो, लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रगतिशील नीतियो का, खासतौर पर उन नीतियो का जिनका असर गरीबों पर पडता है, समर्थन किया है और उनके लिए तन-मन से काम किया है।

"हालांकि उन्हे बदनाम किया गया और गालियाँ दी गयी, लेकिन वे कई पार्टियों के महान गठजोड के खिलाफ, जनता मोर्चे के खिलाफ और इस तरह के दूसरी गरोहबंदियों के खिलाफ लडे क्योंकि वे जानते थे कि ये लोग देश को हानि पहुँचा रहे है। मैं यहाँ भी साफ कह देना चाहता हूँ कि दूसरी बातों के बारे मे भी मैंने जो कुछ कहा वह मेरे निजी विचार थे।""

यह कहने पर मजबूर किये जाने पर वह तिलमिला गया होगा।

उसी दिन तीसरे पहर मैं उससे मिलने गयी। उसका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने पूछा, "वह इंटरव्यू सभी राष्ट्रीय दैनिको के डाक संस्करण मे तो छप ही गया है, वह सारी दुनिया मे छप चुका है। फिर मेरी पत्रिका को न बिकने देने मे क्या तुक है?"

उसने अफसोस तक जाहिर नही किया। मैं नही समझती कि उसे इस बात की कोई विशेष चिंता थी कि मेरी पत्रिका को बिकने से रोक दिये जाने की वजह से मुझे बहुत बडी रकम का नुकसान होगा—बदनामी होगी सो अलग। वह खुद अपनी बदनामी से परेशान था।

"नही, यह तो किया ही नही जा सकता," उसने कहा।

"क्या मैं किसी और से इसके बारे मे नही पूछ सकती? यह तो बिलकुल बेतुकी बात है।"

वह कुछ बेचैन-सा था। उसने अपना गुस्सा दबाकर धीमे स्वर मे कहा, "*बरुआ और उनके लोगों के जरिये कोशिश क्यों नही कर देखती? वही लोग* कुछ कर सकते है।"

ऐसा लगता था कि कांग्रेस में विभाजन रेखा बिलकुल साफ खिंच गयी थी। संजय के विचारों मे, जो अब सबके सामने व्यक्त किये जा चुके थे, सरकार की नीति की कड़ी आलोचना की गयी थी और वे उस नीति के खिलाफ थे। वामपंथी गुस्सा होकर कह रहे थे कि संजय को खुद सेंसर के और इमर्जेंसी के दौरान आचरण के नये कानूनों को तोडने के अपराध मे मीसा के तहत सजा हो सकती है। हो सकता है कि इसी बात से डरकर श्रीमती गाधी ने उसे सफाई देने पर मजबूर किया हो।

लेकिन प्रतिक्रिया उससे कही अधिक तीव्र हुई थी, जितनी कि उन्होंने महसूस की थी। अगर इसके खिलाफ सिर्फ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने तूफान उठाया होता तो शायद वह कभी हथियार न डालती। लेकिन खुद उनकी पार्टी मे ऐसे

लोग थे जो उन पर विश्वासघात का आरोप लगाकर उनकी निंदा करने को तैयार थे। इमर्जेंसी को लागू हुए अभी इतना समय नहीं हुआ था कि विरोध करने की शक्ति बिलकुल ही खत्म हो जाती; और न ही श्रीमती गांधी खुली टक्कर लेने के लिए पूरी तरह तैयार थीं।

वामपंथ के सिद्धांतवेत्ताओं पर सचमुच इसकी इतनी गहरी प्रतिक्रिया हुई कि उनमें से जो जिस हद तक गुस्सा था उसके अनुसार उसने संजय को अमरीकी जासूसों का एजेंट, उनके हाथ का खिलौना या उनका पिट्ठू कहा। एक दल लगातार मेरी इसलिए निंदा करता था कि "मैं उसे एक मंच प्रदान करके राजनीतिक क्षेत्र में सामने लाने के लिए षड्यंत्र कर रही थी," दूसरा दल लगातार मेरी प्रशंसा करता था कि मैंने संजय के वास्तविक विचारों को सामने रखा और "स्वयं प्रधान मंत्री के बेटे के रूप में समाजवाद के घने अंधकार से निकलकर पूँजीवादी स्वतंत्रता में" पहुँचने के रास्ते की कुछ उम्मीद बँधायी। बम्बई और कलकत्ते के बड़े व्यापारियों के दूत मुझे सर्ज की एक प्रति के लिए एक सौ से पाँच सौ रुपये तक देने को तैयार थे।

पत्रिका को इस तरह बेचने का तो खैर कोई सवाल ही नहीं था लेकिन मुझे इस पर बहुत हँसी आयी, क्योंकि उन्होंने कहा कि उन्होंने इंटरव्यू तो अखबारों में पढ़ ली थी, लेकिन अपनी आँखों पर विश्वास करने के लिए वह उसका मूल प्रकाशन देखना चाहते थे। मुझे यह भी बताया गया कि कुछ व्यापारियों ने अखबारों से यह इंटरव्यू काटकर शीशे में मढ़वा ली थी, जबकि कुछ और लोगों ने उसे दूसरे उद्योगपतियों के बीच बँटवाने के लिए किताब के रूप में छपवा लिया था।

ये तो एक ऐसी समस्या के साथ जुड़ी हुई छोटी-छोटी बातें हैं जिसका अर्थ बहुत गूढ़ था और जिसे यह कहकर टाला नहीं जा सकता था कि यह राजनीति के क्षेत्र में कदम रखने वाले एक गैर-जिम्मेदार नौजवान का आकस्मिक उद्गार था।

बुनियादी सवाल यह था कि क्या श्रीमती गांधी जानती थीं कि संजय आर्थिक नीति के बारे में क्या विचार व्यक्त करने जा रहा है?

हाँ, वह जानती थीं।

पहली बात तो यह कि खाने की मेज पर जो बहसें होती थीं वह इतनी खुलकर और एक-दूसरे को उकसाने वाली होती थीं कि परिवार के सभी सदस्यों को एक-दूसरे के विचार अच्छी तरह मालूम रहते थे। उनके जीवन का ढंग ऐसा नहीं था जैसा कि आमतौर पर संयुक्त परिवारों में होता है, जहाँ बहन के साथ भाई के सम्बन्ध इस तरह के नहीं होते कि उसे मालूम हो सके कि उसकी बहन के विचार पुरुषों और विभिन्न समस्याओं के बारे में क्या हैं, या बाप को लाजिमी तौर पर अपने बेटे की सारी हरकतों का पता हो। गांधी-परिवार एक नये प्रकार का संयुक्त परिवार है, जिसमें परिवार का प्रधान, जो इस उदाहरण में एक माँ है, ऐसा नहीं होता कि सब लोग उससे डरें, जो परिवार के सदस्यों को खुलकर बातचीत करने, आपस में हँसी-मजाक करने, बहस करने, या एक-दूसरे से झगड़ा तक करने से रोकता हो। जब कांग्रेस के बाकी नेता और सारा देश श्रीमती गांधी से डरने लगा था, उस समय भी परिवार में वही पहले वाली बात रही।

इसके अलावा, संजय गांधी के मिजाज की भी बात थी। उसके बचपन की पृष्ठभूमि और उसके बाद के विकासक्रम में यही संकेत मिलता है कि नये-नये ढंग

की शरारतें, साहस और अपने मन की बात करना उसके स्वभाव का अभिन्न अंग थे। संजय की यह भी एक आदत है कि वह कोई बहुत ही चुभने वाली बात कहकर बहस में कूद पड़ता है। श्रीमती गांधी खुद एक बार की बात बताती हैं जब सामाजिक चहल-पहल में अपना सारा समय व्यतीत करने वाली एक महिला ने उन्हें डांटा कि वह राजनीति में उलझे रहने के कारण अपने बच्चों की देखभाल के लिए काफी समय नहीं देती थीं। संजय, जो उस समय छोटा ही था, पास ही खड़ा था। फौरन अपनी माँ का पक्ष लेते हुए उसने गुस्से में उन महिला से कहा, "आप भी तो दिन भर ताश खेलती रहती हैं, आपका बेटा खुद मुझसे शिकायत कर रहा था।" एक पुराना नौकर, जो पंडित नेहरू को रोज शाम को कुछ समय निकालकर तीन मूर्ति भवन में नातियों के साथ खेलता हुआ देख चुका था, बताता है कि दोनों में से संजय हमेशा से ज्यादा चंचल था। उसने संजय के शराब पीने के बारे में—कम-से-कम तीन मूर्ति भवन में—सारी अफवाहों को गलत बताया। वर्षों बाद जब दोनों लड़के बड़े हो गये थे और वही नौकर मेहमानों के लिए शराब लेकर जाता था और ट्रे लेकर संजय के सामने से गुजरता था तो संजय कहता था, "यह तो बड़े भाई को दिखाओ।"

यशपाल कपूर, जिन्होंने दोनों लड़कों को दस और बारह बरस की उम्र से बड़ा होते देखा है, बताते हैं, "अगर राजीव से किसी बात के बारे में कह दिया जाता कि वह नहीं हो सकती तो वह मान लेता था। लेकिन संजय हमेशा बहस करता था।"

यह मान लेना तर्कसंगत लगता है कि संजय उस तरह का आदमी नहीं था जो अपने विचारों को छिपाता, बल्कि मारुति के बारे में भी जो बहसें होती होंगी उनमें वह एक व्यापारी की हैसियत से अपने अनुभवों के बारे में और उसके रास्ते में आने वाली अड़चनों के बारे में बातें करता होगा। संजय ने मेरी इंटरव्यू के दौरान अपने जो विचार व्यक्त किये वे एक ऐसे उद्योगपति के विचार थे जो सामाजिक समानता के अधिक व्यापक लक्ष्यों को या दूसरी समाजशास्त्रीय बारीकियों की ओर रत्ती-भर भी ध्यान दिये बिना केवल उपयोगिता और लाभ के आधार पर ही हर बात को उचित ठहराते हैं। उसके अनुसार इसके लिए सबसे उचित ढांचा उन्मुक्त कारोबार की व्यवस्था थी।

और केवल इतना ही नहीं। वह मल्टीनेशनल कंपनियों के भी पक्ष में था। बाद में किसी मौके पर उसने साठे से कहा था, "उनका होना अच्छा ही है। उनके साथ सहयोग से पैसा तो आयेगा।" लेकिन इसके साथ ही उसे भारत की आर्थिक स्थिति का ज़रा भी ज्ञान नहीं था। जब साठे ने उसे बताया कि देश में चालीस प्रतिशत लोग कंगाली का जीवन बिताते हैं और उन्हें चालीस रुपये की भी आमदनी नहीं होती—जिन आँकड़ों का खंडन संसद तक में नहीं किया गया था—तो संजय ने पलटकर बड़े दावे से साथ कहा, "यह आँकड़ा गलत मालूम होता है। मैं तो जब चारों ओर नजर डालता हूँ तो मुझे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता जो २०० रु० महीने से कम कमाता हो।"

बहुत कुछ ऐसी ही बात उसने अपने एक सहयोगी से कही थी—वह समझता था कि उत्तर प्रदेश के गाँवों में व्यापार ऊँटों पर होता है। साठे ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा, "श्रीमती गांधी ने सोचा होगा कि कुछ समय में उसे अनुभव हो जायेगा और तब वह आसमान के तारे भी तोड़ लायेगा।"

इन्दिरा गांधी को मालूम था कि संजय ने अपनी इंटरव्यू में क्या कहा था,

समझ सके, कुछ सीख सके।"

मैंने चंद्रजीत से पूछा, "जब आप जानते थे कि उसके विचार क्या हैं और आप उन विचारो को ठीक नहीं समझते थे तो फिर आपने यह सुझाव क्यों दिया ?"

चंद्रजीत यादव ने जो उत्तर दिया उससे बहुत-से रहस्यों पर से परदा हट गया—श्रीमती गांधी को खुश करने की इच्छा, उनके रवैयों के बारे में शंकाएँ, पार्टी की ज़रूरतों के खिलाफ जाने वाली निजी महत्वाकांक्षाएँ, सामयिक उपयोग के मूल्यांकन जिनका विचारधारा के तकाजों से टकराव होता था और संजय का भविष्य बनाने के लिए परस्पर-विरोधी कदमों का उठाया जाना, जिसकी वजह से एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जिसके लिए कांग्रेस तैयार नहीं थी और जिसकी उसके नेताओं ने कभी कल्पना भी नही की थी। चंद्रजीत ने बहुत शांत भाव से उत्तर दिया : "हम समझते थे कि हम उसे कुछ सिखा सकेंगे। हमे नौजवान लोगो की ज़रूरत थी। वह उनका केंद्र बन सकता था।"

अगर श्रीमती गाधी समझती थी कि वह संजय को इस्तेमाल कर सकती हैं तो दूसरे लोग समझते थे कि वे उसे इस्तेमाल कर सकते हैं। श्रीमनी गांधी उसे दक्षिणपंथी धारा का प्रतीक बनाना चाहती थी। दूसरे नेता उसे अपनी सत्ता का साधन बनाना चाहते थे।

चंद्रजीत यादव के इस अविश्वसनीय सुझाव पर उस समय श्रीमती गांधी ने जो उत्तर दिया था वह लगभग बिलकुल एक झूठ जैसा था, "मैं नहीं चाहती कि संजय राजनीति मे आये।"

स्पष्टतः चार बातें थी जिनकी वजह से इन्दिरा गांधी ने इमर्जेंसी लागू करने का रवैया अपनाया। एक तो वह वामपंथी गुट से चिढ़ी हुई थी, जिसके बारे में वह समझती थीं कि वह उन पर हावी होने की कोशिश कर रहा है और उनका यह डर बढ़ता जा रहा था कि ये लोग उन्हे हटा देंगे। दूसरे, वह संजय को दक्षिणपंथी प्रवृत्ति का केंद्र बनाने की राजनीति अपनाना चाहती थी, ताकि उनकी साख पर कोई आँच आये बिना दोनों पलड़े बराबर हो जायँ और संजय इतना शक्तिशाली हो जाये कि जनता पर अपना प्रभाव डाल सके। तीसरे, वह चाहती थी कि वह अपने पद पर बनी रहे और विपक्ष के दबाव के कारण वह अपना पद छोड़ देने के जाल मे न फँस जायँ। और चौथे, उनकी यह धारणा थी कि वह आर्थिक सुधार के इतने काफी कार्यक्रम लागू कर सकेंगी कि जनता संतुष्ट रहे।

अगर श्रीमती गाधी ने संजय की यह सब-कुछ कर सकने की क्षमता के बारे में गलत अंदाजा न लगाया होता तो वह अपनी इस योजना में सफल भी हो सकती थीं। जब सत्ता उनके हाथ मे नहीं थी उस समय वह कहा करती थी कि अपने बेटों को राजनीति मे नही लाना चाहतीं। कुछ लोगों का कहना है कि बहुत बाद में जब उनके मन मे यह विचार उठने लगा तो वह सोचती थी कि अगर दोनों मे से किसी को राजनीति में लाना ही है तो वह राजीव होगा। उसने इस तरह की कोई इच्छा व्यक्त नहीं की; वह इंडियन एयरलाइंस मे अपनी पाइलट की नौकरी से ही बहुत खुश था। श्रीमती गांधी के चरित्र के निर्माण को जवाहरलाल नेहरू के विचारों का, महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के विविध प्रभावों का सहारा मिला था। बचपन से ही वह राजनीति के क्षेत्र मे आ गयी

थी। यहीं उनकी वास्तविक शिक्षा थी जिसके सहारे उनके आचार-विचार में धीरे-धीरे प्रौढ़ता आयी। वह सत्रह साल तक अपने पिता के साथ सत्ता के बीच रही थी और उनके पति भी राजनीति में थे। लेकिन जब उनके अपने बेटे संजय का सवाल आया तो उन्होंने उसे इन कसौटियों पर नहीं परखा।

संजय की पृष्ठभूमि में इस तरह की कोई बात नहीं थी, और न ही उसकी प्रवृत्ति इस ओर थी। संजय राजनीति के क्षेत्र में छुटे साँड़ की तरह घुसा। उसे ऊपर से थोपा गया था, और आते ही उसे मान्यता मिल गयी। १२ जून के बाद से वह राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में सीधे ही केंद्रीय मंत्रियों से निबटने लगा। उसका पहला ही अनुभव टकराव की राजनीति का था, कुछ तो उस समय की वजह से जब उसने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया और कुछ स्वयं उसके अपने स्वभाव की वजह से। शायद श्रीमती गांधी ने सोचा हो कि यह राजनीति नहीं है। निश्चित रूप से यह आचरण राजनीतिक था भी नहीं।

संजय के एक साथी उन दिनों को याद करके बताते हैं, "राजनीति के बारे में, राजनीति के क्षेत्र के लोगों के बारे में, काम करने के ढंग के बारे में उसे कुछ भी पता नहीं था। उसे भारत के भूगोल की भी जानकारी नहीं थी। वह सचमुच यह तक नहीं जानता था कि गाँवों में लोग रहते किस तरह हैं। दिल्ली को वह अच्छी तरह जानता था—और हाँ, यह भी जानता था कि मिस्त्रियों की ज़िंदगी कैसी होती है।" सी० पी० एन० सिंह से श्रीमती गांधी ने संजय से मिलने को कहा था, और उन्होंने देखा था कि वह किस तरह इतना ताक़तवर बन गया, उनका कहना है, "लेकिन वह दूसरों की बात बड़े ध्यान से सुनता था और नयी बातों को जानना चाहता था। मुझे ऐसा लगा कि वह काम करना चाहता था और गरीबों की हालत सुधारना चाहता था। वह मेरी यह बात मानता था कि बहुत-सी ग़लतियाँ हुई हैं। मैंने कहा, खुशामदी और चापलूस लोग ही सारा काम बिगाड़ते हैं। उसने यह बात मान ली। वह बहुत सीधा-सादा और खरा आदमी था, और..." इतना कहकर सी० पी० एन० सिंह कुछ झिझके।

"मोटी अकल वाला ?" मैंने पूछा।

"नहीं, बिलकुल नहीं। लेकिन समझ कुछ कच्ची थी।"

कच्ची समझ और सत्ता। कैसा घातक मेल था ! सत्ता के ढाँचे पर उसने परदे के पीछे रहकर प्रभाव डाला था। लेकिन इसके लिए जनता के समर्थन की ज़रूरत थी। यह भी गैर-राजनीतिक समस्याओं के ज़रिये मिल गया। इस मामले में भी श्रीमती गांधी का कहना ठीक ही था। संजय का काम राजनीतिक नहीं था। उसके दिमाग में इस बात का नक़शा बिलकुल साफ था कि वह पहले दिल्ली में और फिर दूसरी जगहों में सड़कों को चौड़ा करने, बसों वग़ैरह की उचित व्यवस्था, सफाई, शहर को सुंदर बनाने, गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था, दूध के वितरण और दूसरी नागरिक सुविधाओं के सिलसिले में क्या करना चाहता है। उसके दिलचस्पी लेने से छोटे-बड़े सभी अफसरों में एक हलचल-सी पैदा हो गयी, और वे सोचने लगे कि अगर कोई फ़ैसला प्रधान मंत्री के बेटे के स्तर पर ले लिया जाये तो गाड़ी आगे बढ़ सकती है। संजय राजनीति के क्षेत्र के लोगों, रेहड़ी वालों और आइसक्रीम बेचने वालों से लेकर पत्रकारों, व्यापारियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं तक सभी तरह के लोगों से मिलने लगा। जल्दी ही यह बात बिलकुल साफ हो गयी कि श्रीमती गांधी ने दिल्ली का इलाका एक तरह से उसके हवाले ही कर दिया था। जो चीज साफ़ नहीं हुई वह यह थी कि इसके पीछे

क्या राजनीति थी। राजनीतिक तो इन्दिरा गांधी थी, वह नहीं था। उनका पूरा इरादा था कि अगर जरूरत हुई तो वह संजय को समाज-सेवा के क्षेत्रों और समाज-कल्याण की संस्थाओं पर राजनीति का रंग चढाने में मदद देंगी।

यह बात उस वक़्त फौरन उभरकर सामने आ गयी जब अगस्त १९७५ में कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति बनायी गयी। यह संस्था, जिसे बहुत-से अधिकार दे दिये गये थे, सरकारी संस्थाओं और स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व के काम को समन्वित करने के लिए स्थापित की गयी थी। इस समिति के सदस्य दिल्ली के सभी बड़े-बड़े सरकारी अफसर थे—लेफ्टिनेंट-गवर्नर, चीफ सेक्रेटरी, डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस, दिल्ली कार्पोरेशन के अध्यक्ष, और दिल्ली विकास अधिकरण (डी० डी० ए०) के उपाध्यक्ष और बहुत-से दूसरे लोग। श्रीमती ताजदार बब्बर[18] को छोड़कर, जिन्हें श्रीमती गांधी का नामजद किया हुआ कहा जा सकता है, बाकी सभी लोगों के नाम संजय गांधी के सुझाव पर शामिल किये गये थे—अंबिका सोनी[19], अजीतसिंह चड्ढा[20], जे० के० जैन[21], अर्जुनदास और राज कौशिक। सी० पी० एन० सिंह इसके ऑनरेरी सेक्रेटरी बन गये, लेकिन वह इन सबसे अलग ही रहे। नौजवान पीढ़ी के लोगों में अकेले वही ऐसे थे जिन्हें राजनीति का ठोस अनुभव था। संजय को यह भी मालूम था कि उनके नाम की सिफारिश मुहम्मद यूनुस ने की थी। वह 'यूनुस चाचा' की इतनी अधिक इज्जत करता था कि वह न तो सी० पी० एन० सिंह को चुटकियों में उड़ा सकता था और न ही उनके साथ बहुत सख्ती से पेश आ सकता था। इस कमेटी में पुराने कांग्रेसियों में से बस दो ही आदमी थे—एक थे कमेटी के अध्यक्ष एच० के० एल० भगत और दूसरे चौधरी हीरासिंह[22], जो कार्यकारी पार्षद थे और कार्पोरेशन में विकास का विभाग उनके जिम्मे था। ये दोनों ही उस वक़्त तक संजय को नहीं जानते थे, लेकिन जल्दी ही उनका सीधे उसके साथ संपर्क स्थापित हो गया। इस कमेटी का उद्देश्य था बीस-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर निगरानी रखना और लोगों की शिकायतें सुनना।

यह कमेटी बनने के एक महीने के अंदर ही कुछ दूसरी विस्फोटक समस्याओं की ओर ध्यान दिया जाने लगा—झुग्गी-झोंपड़ियों को गिरा देने की ओर, जहाँ-तहाँ गैर-कानूनी ढंग से बरसाती पौधों की तरह उग आने वाली वह टूटी-फूटी, बदसूरत, कामचलाऊ छप्परदार झोंपड़ियाँ जिनकी वजह से हिंदुस्तान के हर शहर में गंदी बस्तियाँ बस जाती हैं; और नसबंदी, यानी कीड़ों-मकोड़ों की तरह गरीब, भूखे और कमजोर बच्चों की पैदाइश को रोकने की ओर, जो प्रगति की रफ़्तार को आबादी के अनुसार तेज करने की कोशिशों को एक मजाक बनाकर रख देते हैं। अकेले दिल्ली में ही कई लाख लोगों को हटाकर किसी दूसरी जगह ले जाकर बसाना था, और हमारी आबादी में हर साल १ करोड़ २० लाख बच्चों की पैदाइश की वजह से जो वृद्धि हो रही थी उसे रोकना था! यह काम बहुत बड़ा और बहुत जरूरी था और उसे फौरन करना था।

झुग्गी-झोंपड़ियों को गिराने और लोगों को नयी जगहों पर ले जाकर बसाने के काम की जिम्मेदारी नगर निगम को उसके कमिश्नर बहादुरराम टमटा[23] की देखरेख में और दिल्ली विकास प्राधिकरण को उसके उपाध्यक्ष जगमोहन[24] की देखरेख में सौंप दी गयी। संजय खुद इस काम की निगरानी करता था और उसमें भाग लेता था।

घुंघराले बालों वाले, बातूनी, पचपन-वर्षीय परिवेश-विशेषज्ञ जगमोहन

काम करने के ढंग से जहाँ एक ओर उत्साह मिलता था, वहीं दूसरी ओर वह विवाद की जड़ भी बन जाता था, क्योंकि उनकी सीधे संजय के पास पहुंच जाने की आदत की वजह से उनका इतना दबदबा था कि कोई उनकी तरफ़ उँगली उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता था। बहादुरराम टमटा भी बहुत टेढ़े क़िस्म के आई० ए० एस० अफसर थे जिनके साथ संजय ने सीधा संपर्क स्थापित कर लिया था। जगमोहन और टमटा दोनों ही संजय के कारिंदों के गरोह में शामिल हो गये। यह राजनीतिज्ञ, प्रशासक और युवक कांग्रेस कार्यकर्ता की वह नयी पौध थी, जो इमर्जेंसी के दौरान उभरी, जिसके मन में कुछ कर दिखाने की उमंग और महत्त्वाकांक्षा थी। ये बहुत प्रखर बुद्धि के ऐसे लोग थे, जिनकी कार्य-कुशलता को कभी अपनी प्रतिभा का परिचय देने का अवसर नहीं मिला और जिनका अहंभाव उन्हें बहुत जल्दी श्रेय प्राप्त कर लेने के लिए प्रेरित करता था। जब संजय जैसा आदमी ख़ुद काम की रफ़्तार तय करे और मानदंड निर्धारित करे, और जो ख़ुद इस तरह सोचता और काम करता हो जैसे वह प्रशासक, राजनीतिज्ञ, आर्किटेक्ट और नगर-नियोजक सभी कुछ है, तो ऐसे आदमी को जिसमें सौंदर्य-रस की अधिक समझ-बूझ हो अपनी प्रतिभा का परिचय देने का मौका नहीं मिलता, और मनुष्य की दशा के प्रति संवेदनशीलता तो एक फुटकर समस्या मात्र बनकर रह जाती है।

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के अधिकांश ग़ैर-सरकारी सदस्य लगभग रोज़ ही जाकर संजय को अपनी कारगुज़ारी बताते थे। दूसरे लोग प्रधान मंत्री की कोठी के उन दोनों छोटे कमरों में बैठकर उससे मिलने का वक्त तय होने का इंतज़ार करते थे। एक बार प्रधान मंत्री ने इस पर अपनी नाराज़गी भी ज़ाहिर की थी क्योंकि कभी-कभी तो ऐसा होता था कि जब वह किसी से मिलना चाहती थीं तो बात करने के लिए कोई जगह ही नहीं होती थी। लेकिन जब टमटा और जगमोहन जैसे बड़े-बड़े अफसर रोज़ सुबह ८ बजे सलामी देने और दिन-भर के लिए आदेश लेने आने लगे तो वातावरण में पहली बार कुछ बेचैनी के चिह्न दिखायी दिये। टमटा ने बाद में अपने एक मित्र को बताया कि वह अजीब चक्कर में फँस गये थे—उनकी नौकरी का सवाल था। जो कुछ उनसे करने को कहा जाता था उसे करते हुए भी उन्हें डर लगता था, और न करते हुए भी उतना ही डर लगता था। एक साहब जिनका प्रधान मंत्री की कोठी के साथ बहुत निकट संबंध था, बताते हैं, "यह सब बकवास है। कोई उन्हें आने को मजबूर नहीं करता था। जिस दिन वह किसी वजह से संजय से मिल नहीं पाते थे उस दिन वह ख़ुद सर-कटी मुर्ग़ी की तरह छटपटाने लगते थे, और हर आदमी से पूछते फिरते थे कि वह कहाँ है और उससे किस वक़्त मिला जा सकता है।"

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के कुछ सदस्यों को संजय से इतना डर नहीं लगता था। जब कोई नया कदम उठाने और जाकर उससे सलाह करने का सवाल आता तो संजय कहता, "हाँ, क्यों नहीं। लेकिन पहले मैं प्रधान मंत्री से पूछ लूँ... ।" एक सदस्य ने बिना किसी लाग-लपेट के साफ शब्दों में कहा, "आम तौर पर लोग जैसा समझते हैं, बात बिलकुल उसकी उल्टी थी। संजय का अपना कुछ नहीं था। उससे तो जो कुछ करने को कहा जाता था वही करता था।" ज़ाहिर है कि इन्दिरा गांधी अपने बेटे को रास्ता दिखा रही थीं। संजय के हाथ में कभी इतनी ताकत आ ही नहीं सकती थी कि दिल्ली प्रशासन में लेफ्टिनेंट-गवर्नर से लेकर नीचे तक हर आदमी उसके आदेशों का उस तरह पालन करे जिस

तरह वे राजधानी मे कर रहे थे। और न ही उसमें इतनी राजनीतिक क्षमता थी कि वह सारे भारत मे योजना के अनुसार वामपंथियों के असर को कम कर सके जैसा कि इमर्जेंसी के दौरान हुआ, जब तक कि उसकी माँ उसे रास्ता न दिखाती।

शायद यह कोई संयोग की बात नही थी कि गैर-राजनीतिक क्षेत्र में संजय की पहली टक्कर एक ऐसे आदमी से हुई जो कम्युनिस्ट रह चुका था। उसका नतीजा यह हुआ कि खामोश रहने वाला, लगन से काम करने वाला लेकिन अपनी धुन का पक्का आदमी, जो जामा मस्जिद के इलाके को सुधारना अपना सामाजिक ध्येय बना चुका था, जेल में पहुँच गया।

इमर्जेंसी लागू होने पर राजनीतिक नेताओं की गिरफ्तारी के बाद राजधानी मे खौफ की पहली लहर सत्तावन-वर्षीय इंदरमोहन की गिरफ्तारी से पैदा हुई, जो देखने से ही ऐसा लगता है कि वह एक मक्खी का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता, क्योंकि इसमें इस बात का संकेत छिपा था कि अब गैर-राजनीतिक विरोध करने से भी आदमी की निजी आजादी के लिए गंभीर खतरा पैदा हो सकता है।

इंदरमोहन की मिसाल इमर्जेंसी के बाद भारत मे जो कुछ भी हुआ उसका प्रतीक है, जब राजनीतिक आचरण के सारे मानदंडों में, कानून को लागू करने के ढंग मे, और महत्त्वाकांक्षा के बंधे-टँके तकाजो मे एक जहरीला परिवर्तन आ गया। इंदरमोहन भारत-सरकार के प्रथम श्रेणी के एक गजेटेड अफसर थे। वह पुराने राजनीतिक कार्यकर्त्ता रह चुके थे और उनके साथी देश मे सबसे ऊँचे पदो पर बैठे हुए थे, जैसे इंदरकुमार गुजराल, और ओम मेहता भी, जो न केवल उनके दोस्त थे बल्कि उन दिनों गृह-मंत्रालय में राज्य-मंत्री थे और संघ-क्षेत्रो के मामले वही देखते थे। ओम मेहता खुद कहते हैं, "दिल्ली का हर पुलिस वाला जानता था, मैं इंदर के बहुत करीब हूँ। लेकिन गृह-मंत्रालय ने इमर्जेंसी के शुरू ही मे मार्गदर्शन के लिये कुछ मोटे-मोटे सिद्धांत तय कर दिये थे। गिरफ्तारी का हुक्म दरअसल दिल्ली प्रशासन जारी करता था।"

इंदरमोहन ने जो सवाल उठाया था वह वही चिंगारी थी जो धधकती हुई आग की तरह पूरे उत्तरी भारत मे फैल गयी, जिसकी लपटों ने कांग्रेस की बुनियाद को जलाकर राख कर दिया और बाद में उसके नेता भी उसकी लपेट मे आ गये। जब इंदरमोहन १६ सितंबर १९७५ को संजय से मिलने गये तो बात बहुत सीधी मालूम हो रही थी। उन्होंने सोचा था कि वह बस सारी हालत समझा देंगे और किसी भी समझदार संवेदनशील आदमी की समझ मे बात आ जायेगी।

इस इलाके को साफ़ करने और खूबसूरत बनाने के इरादे से, जिसे सरकारी भाषा मे 'जामा मस्जिद की गंदी बस्ती' कहा जाता था, दो योजनाओं को मंजूरी मिल चुकी थी। इस इलाके में ज्यादातर मुसलमान रहते थे और उनके मन में यह बात बैठ गयी थी कि एक-दूसरे के पास-पास रहने मे ही उनकी खैरियत है। एक योजना तो यह थी कि दूकानों को हटाकर पाइवालान के बाजार मे पहुँचा दिया जाये; दूसरी योजना यह थी कि वहाँ के रहने वालो को मिंटो रोड और माता सुंदरी रोड के इलाके मे ले जाकर बसा दिया जाये, जो जामा मस्जिद और कनाट सर्कस के बीच में पडता है; सोचा यह गया था कि यह जगह इतने पास होगी कि लोग आसानी से अपने काम पर जा सकेंगे। लेकिन इसमें कुछ मानवीय और सांप्रदायिक समस्याओ का दखल था, और इन योजनाओं को लोगो की

भावनाओं को पूरी तरह ध्यान में रखकर और उनके सहयोग से ही पूरा किया जा सकता था।

ओम मेहता ने, जो उस समय निर्माण तथा आवास-मंत्रालय के राज्य-मंत्री थे, एक मीटिंग बुलायी और इन स्कीमों को जल्दी पूरा करने के बारे में बाकायदा एक प्रस्ताव पास कर दिया गया। ३१ जनवरी और १ फ़रवरी को एक विचार-गोष्ठी में भी सबकी सहमति से यही निर्णय स्वीकार किया गया। इमर्जेंसी लागू होते ही प्रशासन के खून में गर्मी आ गयी। योजना यह बनायी गयी कि इन लोगों के लिए दूसरी दूकानों या दूसरे मकानों का बंदोबस्त किये बिना ही इन दूकानों और मकानों को गिरा दिया जाये। लोग हक्का-बक्का रह गये और इंदरमोहन ने प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी के पास एक फ़रियाद भेजी।

जब इंदरमोहन ने उसके बारे में पूछा तो एन० के० शेषन् ने कहा, "मैंने वह प्रधान मंत्री को दिखा दी, लेकिन शायद वह संजय को दे दी गयी होगी क्योंकि दिल्ली के सारे मामले वही देखते हैं।"

शेषन् ने इंदरमोहन को संजय का सीधा टेलीफ़ोन नंबर बता दिया। "सुबह नौ बजे से पहले किसी वक़्त टेलीफ़ोन कर लीजिये। अगर मुझसे पूछा गया तो मैं जो कुछ भी जरूरी होगा बता दूंगा।"

इंदरमोहन ने टेलीफोन किया और संजय ने खुद टेलीफोन उठाया।

"शाम को चार बजे आ जाना," उसने कहा।

"कहाँ ?" इंदरमोहन ने पूछा।

"नं० १ सफ़दरजंग रोड।"

"मेरे पास मोटर तो है नहीं, और वहाँ सिक्योरिटी का बहुत इंतज़ाम रहता है।"

"उसकी फ़िक्र न करो।"

इंदरमोहन को सचमुच उम्मीद थी कि इस मुलाकात से कोई ठोस नतीजा निकलेगा। संजय बड़ी नरमी से मिला; वह बड़े इतमीनान से चुपचाप सुनता रहा। दस मिनट में इंदरमोहन ने इस पूरे क़िस्से की पृष्ठभूमि बता दी। जब उन्होंने कहा कि ये दुकानदार और दूसरे लोग वक़्फ़ बोर्ड[१] के किरायेदार हैं और और उन्हें वहाँ से इस तरह नहीं उजाड़ा जाना चाहिए, तो संजय ने बहुत अधीर होकर कहा, "हाँ, यह सब मैं जानता हूँ।"

"लेकिन यह तो सिर्फ़ एक पहलू है," इंदरमोहन ने अपनी बात समझाने की कोशिश की। "कुछ दूसरे मसले भी हैं। वहाँ बहुत-से दस्तकार और गवैये रहते हैं, परदा करने वाली औरतें रहती हैं, मर्दों और औरतों के बीच एक दीवार है, आर्थिक सवालों के अलावा बहुत-से सवाल और भी है जिनका संबंध उनकी भावनाओं और उनके सोचने-समझने और महसूस करने के ढंग से है।"

"मुझे तो बस यह बताओ कि इस वक़्त क्या किया जाये," संजय अपनी बात पर अड़ा।

"उनके घर ढाये जा रहे हैं," इंदरमोहन ने पैरवी करते हुए कहा।

"जहाँ हम उन्हें भेजेंगे उन्हें जाना पड़ेगा," संजय ने कहा, "अगर हम पहले बाज़ार बना दें और ये लोग न जायें और उसी बीच इमर्जेंसी उठा ली जाये, तो सारा पैसा डूब जायेगा।"

"उनके न जाने का कोई सवाल ही नहीं है। वे तो मार्केट बनने का इंतज़ार कर रहे हैं। आपको जो गारंटी चाहिए ले लीजिये। आप मेरे साथ चलकर देख

लीजिये।"

"मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ ? मैं वहाँ खुद जाता रहा हूँ।"

"कभी-कभी इलाके में काम करने वाले किसी आदमी के साथ जाना अच्छा होता है," इंदरमोहन ने कहा, "अगर फैसला ठीक हो और उनके हित में हो तो लोग हमेशा उसे मान लेते हैं, इमर्जेंसी हो या न हो।"

संजय मुस्कराया और उसने बड़ी बेदर्दी से कहा, "मार्केट बनाने पर जो एक करोड़ अस्सी लाख रुपये खर्च होंगे वह हमें दिलवा दो तो फिर हमें कोई मतलब नहीं कि लोग वहाँ जायें या न जायें।"

इंदरमोहन दंग रह गया। क्या इस आदमी को सिर्फ पैसे की फिक्र है ?

"जहाँ तक हमें मालूम है, लोगों से जहाँ भी जाने को कहा जायेगा वे चले जायेंगे," संजय कहता रहा, "सारी गड़बड़ी तुम्हारे जैसे नेता फैलाते हैं।"

"मैं तो नेता नहीं हूँ, मैं तो सिर्फ काम करता हूँ," इंदरमोहन ने शांत भाव से उत्तर दिया, "अगर मैं चाहता तो नेता बन सकता था, मेरे लिए इसका पूरा मौका था।"

"वह कैसे ?" संजय अपनी उत्सुकता को न दबा सका, उसने पूछ ही लिया।

"मैंने १६४२ में साढ़े तीन साल जेल में काटे। मेरे बहुत-से साथी किसी-न-किसी जगह पर पहुँच गये, लेकिन मैंने एक मामूली कार्यकर्त्ता ही बना रहना पसंद किया। अगर मैं नेता होता तो आपकी खुशामद करता रहता और आपकी हाँ-में-हाँ मिलाता रहता।"

संजय मुस्कराया, लेकिन जाहिर था कि वह अंदर-ही-अंदर खौल रहा था। थोड़ी देर तक खामोशी रही।

आखिरकार संजय ने कहा, "जो आप लोग चाहते हैं वही कीजिये।"

उसका स्वर सपाट था। कहीं से यह पता नहीं चलता था कि वह हुक्म चलाने की कोशिश कर रहा है।

"मेरा कोई ओहदा नहीं है, कोई हैसियत नहीं है। इसके अलावा मैं आपकी बात को सही नहीं समझता, इसलिए मैं कोई काम कैसे करवा सकता हूँ !" इंदरमोहन ने साफ-साफ कह दिया।

यह सुनकर संजय उठ खड़ा हुआ, हाथ जोड़कर नमस्ते की और कमरे के बाहर चला गया।

अगले दिन सुबह इंदरमोहन ओम मेहता से मिले। उस जमाने में हर सरकारी आदमी लेफ्टिनेंट-गवर्नर का नाम लेकर बात करता था, संजय का नाम कभी नहीं लेता था, जो परदे के पीछे से काम करता था। जब मेहता ने महसूस किया कि इंदरमोहन को सारी बातें मालूम हैं तो वह हँस पड़े।

"देखिये," इंदरमोहन ने गंभीर भाव से कहा, "इस तरह तो पहले जितने भी फैसले किये गये थे सब बेकार हो जायेंगे।"

"तुम फिक्र न करो," ओम मेहता ने जवाब दिया, "मैं अभी प्रधान मंत्री के पास जाता हूँ और सब-कुछ ठीक करा दूँगा।"

"मैंने सुना है कि जो भी उससे टक्कर लेता है वह गिरफ्तार कर लिया जाता है," इंदरमोहन ने कहा।

ओम मेहता फिर हँसे। इसी वक्त यशपाल कपूर अंदर आ गये।

"कौन गिरफ्तार किया जा रहा है ?" उन्होंने हमेशा की तरह बड़ी बे-तक-ल्लुफी से पूछा।

"आपकी इमर्जेंसी मे शायद मैं ही पकड़ लिया जाऊँ," इंदरमोहन ने कहा।

कपूर ने इस बात को मजाक समझकर टाल दिया। "अगर किसी को गिरफ़्तार करना हो तो खुद हमारे कुछ लोग इस लायक हैं कि उन्हें गिरफ़्तार किया जाना चाहिए," उन्होंने मजाक करते हुए कहा।

१९ तारीख की दोपहर को इंदरमोहन डी० डी० ए० की अट्ठारह-मंजिला इमारत विकास मीनार में जगमोहन से उनके लंबे-चौड़े आलीशान दफ्तर में मिले।

"मैं कल संजय से मिला था," इंदरमोहन ने डी० डी० ए० के कर्ता-धर्ता से कहा और पिछले दिन की बहस का सारा ब्यौरा उन्हें सुना दिया। "अब आपकी क्या योजना है? अब हमारी क्या स्थिति है?"

"मैं तो आपको ढूँढ़ने की कोशिश कर रहा था," जगमोहन ने कहा, "मैं समझता हूँ कि आपकी गिरफ़्तारी का तो फैसला कर भी लिया गया है। मैं चाहता था कि आपको पहले से चेतावनी दे दूँ कि जाकर ओम मेहता से कहकर कुछ करवा लीजिये।"

"मैं उनसे जाकर यह नहीं कहना चाहता कि वह मुझे बचायें। उन्हें सब-कुछ मालूम है। आप तो मुझे यह बताइये कि आपने जामा मस्जिद के लोगों के बारे में क्या फैसला किया है?"

"मैं समझता हूँ कि संजय से आपकी मुलाकात किसी मद्रासी ने तय करायी थी," जगमोहन ने कहा।

"किसी मद्रासी ने नहीं, धेपन् ने। उन्होंने कहा था कि मैं संजय से मिल लूँ, बस इतनी-सी बात है।"

"संजय को तो आपसे मिलने की याद भी नहीं है," जगमोहन अपनी ही हाँकते रहे।

आखिरकार इंदरमोहन का धीरज टूट गया।

"देखिये, जगमोहन साहब, संजय साहब बहुत ज्यादा अक्लमंद न हों, पर वह इतने बेवकूफ भी नहीं हैं। हमने पैंतालीस मिनट तक अकेले में बातचीत की और प्रधान मंत्री की कोठी पर हर बात दर्ज कर ली जाती है।"

उसी दिन आधी रात के कुछ ही देर बाद, कस्तूरबा गांधी रोड की कई-मंजिला इमारत की पहली मंजिल पर किसी ने इंदरमोहन का दरवाजा खट-खटाया।

इंदरमोहन ने जब दरवाजा खोला उस वक्त वह कुर्ता और लुंगी पहने थे। सात हट्टे-कट्टे आदमी सादे लिबास में दनदनाते हुए घर में घुस आये, और उनमें से दो ने इंदरमोहन को गुद्दी से पकड़कर दीवार से भिड़ा दिया।

"हमें आपकी अच्छी तरह खबर लेने का हुक्म मिला है," उन लोगों ने कहा।

इतने में एक आठवाँ आदमी आया, वह वर्दी पहने था। इंदरमोहन को पता चला कि पुलिस के दूसरे अफसर नीचे इस बात पर कड़ी नजर रखने के लिए खड़े थे कि वह पकड़ जरूर लिये जायें। पुलिस वालों के तेवर बहुत ही खराब थे। उन्होंने इंदरमोहन को न कपड़े बदलने दिये, न अपने घर में ताला लगाने दिया, तब भी नहीं जब उन्होंने उन लोगों को बताया कि वह वहाँ अकेले रहते हैं।

"आप अकेले क्यों रहते हैं?" उनमें से एक ने बड़ी ढिठाई से पूछा।

"आपसे मतलब?" इंदरमोहन ने तड़ककर जवाब दिया।

इतने मे चार आदमियो ने उनके हाथ पकड़े और चार ने टाँगें और खाली पैसेज से होते हुए उन्हें सीढ़ियों से नीचे ले जाकर बाहर खड़ी हुई जीप में डाल दिया। उन्हें ले जाकर दरियागंज के थाने में हवालात में डाल दिया गया, जहाँ एक टूटे-फूटे पाखाने में गंदगी का इतना ढेर था कि बदबू बर्दाश्त नहीं होती थी। कोई भी संवेदनशील आदमी उस वातावरण में कुछ भी खा-पी नही सकता था। इंदरमोहन ने भूख हड़ताल कर दी। वह चार दिन वहाँ रखे गये और इन चार दिनों में चार पेशेवर मुजरिम वहाँ उन्हें डराने-धमकाने के लिए भेजे गये, जिनमे से एक पुलिस का मुखबिर भी था। चौथे दिन सुबह दिल्ली मेट्रोपोलिटन कौंसिल के अध्यक्ष मीर मुश्ताक[14] इंदरमोहन से मिलने गये। थाने के इंचार्ज सुपरिंटेंडेंट-पुलिस ओहरी थे; वह उनके साथ नही गये। ओहरी रोटरी क्लब मे इंदरमोहन के साथी थे और उनके दोस्त भी थे। उन्हें इंदरमोहन के सामने जाते शर्म आ रही थी। मीर साहब ने इंदरमोहन को बताया, "पहले तुम्हें अदालत ले जाया जायेगा, फिर तिहाड़ जेल। तुम भूख हड़ताल खत्म कर दो।"

गिरफ्तारी के दूसरे दिन सुबह जब इंदरमोहन को तीस हजारी की अदालत में ले जाया गया, तब वहाँ जामा मस्जिद के कुछ लोगों से उनकी मुलाकात हुई। इन लोगों ने दूसरो को भी खबर दे दी थी, खास तौर पर उनके एक पुराने दोस्त और वकील दानियाल लतीफो[16] को। इंदरमोहन को आखिरकार तिहाड़ जेल भेज दिया गया जहाँ हालत बस थोड़ी ही अच्छी थी। दो बार जब उन्हें अदालत ले जाया गया, तो उन्हें आम मुजरिमों की तरह हथकड़ी डालकर सड़कों पर घुमाया गया।

जगमोहन ने इंदरमोहन को गिरफ्तारी के बाद बताया, "आपको इसलिए गिरफ्तार किया गया है कि आप हिंदू हैं। मुसलमानों को ईद के बाद गिरफ्तार किया जायेगा।" उसी दिन जगमोहन इंदरकुमार गुजराल से मिले, जिन्होंने इंदरमोहन के बारे मे बहुत दुखी होकर कहा, "वह बहुत ईमानदार आदमी है और अच्छा काम करने वाला है। लेकिन उसने बस एक गलती की, उसे संजय से लड़ना नही चाहिए था।"

जब ओम मेहता को इंदरमोहन के साथ इस शर्मनाक बरताव का पता चला तो उन्होंने इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस भवानीमल को टेलीफोन किया।

"सर," आई० जी० ने कहा, "उनकी गिरफ्तारी का हुक्म दिल्ली प्रशासन ने दिया है।"

"कुछ भी हो, लेकिन उन्हें सरे-बाजार इस तरह नही ले जाना था।"

भवानीमल को खुद नही मालूम था कि इंदरमोहन को क्यों गिरफ्तार किया गया था, और जहाँ तक ओम मेहता का सवाल है उन्होंने कई महीने बाद, जब मैंने इसके बारे में उनसे बात की, बड़ी बेशर्मी के साथ अपनी लाचारी जताते हुए कहा, "उन्हें छोड़ना मेरे हाथ मे नही था... ।"

जब मीर मुश्ताक दिल्ली के लेफ्टिनेंट-गवर्नर किशनचंद[17] से मिलने गये तो उन्होंने मीर साहब को झाड़ा, "आप लोगो ने उसे हीरो बना दिया है।"

बहरहाल, इंदरमोहन को सताया जाता रहा। खैर, यह तो वह जानते ही थे कि उन्हें अपनी नौकरी मे हाथ धोना पड़ेगा, लेकिन जिस बात पर वह सचमुच हैरान थे वह यह थी कि ये लोग कितनी बेरहमी के साथ उनकी ईमानदारी को खत्म करने की कोशिश कर रहे थे। न सिर्फ यह कि उन पर सी० आई० ए० का

एजेंट या नक्सलवादी होने की छाप लगा देने के लिए एक पूरा प्रचार-तंत्र सक्रिय कर दिया गया था, बल्कि इस दावे के सबूत जुटाने के लिए दफ़्तर में उनके बारे में एक झूठी फ़ाइल भी खोल दी गयी थी। इंदरमोहन का कहना है कि पुराने दोस्त और साथी या तो इस जाल में फँस गये, या फिर, "सुभद्रा जोशी" की तरह उन्होंने दोरुख़ी भूमिका अदा की।"

सुभद्रा जोशी इन्दिरा गांधी की पुरानी और जोशीली साथी थीं, और देश के बँटवारे के बाद दिल्ली में दंगों के दिनों में प्रधान मंत्री के साथ काम कर चुकी थीं। वह वामपंथी थीं और श्रीमती गांधी की विचारधारा की लीक में बिलकुल खप गयी थीं। वह इमर्जेंसी के पक्ष में थीं, लेकिन साथ ही वह इंदरमोहन की पृष्ठभूमि से भी इतनी अच्छी तरह परिचित थीं कि वह इतना तो जानती ही थीं कि राजनीति की हद तक वह उनकी अपनी पृष्ठभूमि जैसी ही थी। फिर भी उन्होंने दानियाल लतीफ़ी को टेलीफ़ोन किया।

"मैंने सुना है कि आप इंदर की पैरवी कर रहे हैं।"

"जी हाँ," उन्होंने कहा।

"मैं अपनी कांस्टीच्युएंसी में इतना काम करती रही हूँ," सुभद्रा जोशी ने बड़े दयनीय भाव से कहा, "न जाने क्यों वह मोहल्लों में आकर अपनी टाँग अड़ाता है ? मैं समझती हूँ कि वह सी० आई० ए० और नक्सलवादियों के साथ है।"

लतीफ़ी को बेहद गुस्सा आया। "आप उसे लाहौर से जानती हैं। मैं समझ सकता हूँ कि आपको अपनी कांस्टीच्युएंसी की बड़ी फ़िक्र है। लेकिन हमारे मुल्क की परंपरा यह है कि जब कोई आदमी जेल में होता है तो लोग उसका साथ देते हैं। वह जेल में है, आप नहीं हैं।" उन्होंने कहा और झल्लाकर टेलीफ़ोन रख दिया।

इसके बाद सुभद्रा जोशी के सहयोगी और उनकी पत्रिका **सेक्युलर डेमोक्रेसी** के संपादक डी० आर० गोयल ने लतीफ़ी को टेलीफ़ोन किया।

"मैं समझता हूँ कि इंदरमोहन इमाम" का एजेंट है," उन्होंने जामा मस्जिद का हवाला देते हुए कहा, जिन्होंने उसी साल के शुरू में सरकार के ख़िलाफ़ एक दंगा लगभग भड़का ही दिया था।

लतीफ़ी ने गोयल को भी उतनी ही रुखाई से जवाब दिया। "मैं जानता हूँ और आप भी जानते हैं कि इंदर क्या है," उन्होंने कहा।

अगर इन्दिरा गांधी एक ओर संजय को अफ़सरशाही से निपटने की पूरी छूट दे रही थीं, तो दूसरी ओर वह यह भी जानती थीं कि उसने जिन दो कामों का बीड़ा उठाया था—पुराने मकानों को गिराना और लोगों को दूसरी जगह ले जाकर बसाना—उनकी वजह से अंदर-ही-अंदर बहुत असंतोष उबल रहा था। अभी शुरुआत ही थी, फिर भी इंदरमोहन वाली घटना होने से पहले ही उन्होंने मुहम्मद यूनुस से कहा कि वह इस मामले के बारे में छानबीन कर लें। यूनुस उस वक़्त तक विशेष दूत नियुक्त नहीं हुए थे। एक साल पहले, जब वह वाणिज्य-मंत्रालय के सेक्रेटरी की हैसियत से रिटायर हुए थे उसके फ़ौरन बाद उन्हें राजनीति के क्षेत्र में लाने की कोशिश की गयी थी, लेकिन बरसों तक सरकारी अफ़सर की हैसियत से काम कर चुकने के बाद और राजनीति के क्षेत्र की चिकनी-चुपड़ी मक्कारी बर्दाश्त न होने की वजह से उन्होंने महसूस कर लिया था कि उनके लिए बाहर रहना ही बेहतर है।

बेशक बाद में श्रीमती गांधी ने उन्हे अलग-अलग संगठनों मे "उन्हे ज़रा ठीक-ठाक कर देने के लिए" इतनी विभिन्न हैसियतो से रख दिया कि एक बार किसी पार्टी मे दिल्ली के बडे उद्योगपति लाला चरतराम ने उनसे बड़ी हमदर्दी के साथ कहा, "क्या मैडम आपको मार डालना चाहती हैं!"[११]

असल में वह पालम में एक लंबी-चौडी कल्याणकारी योजना के काम मे इतनी बुरी तरह फँसे हुए थे कि इस फालतू काम के लिए वह एक दिन सुबह साढे पाँच बजे ही थोड़ा-सा वक़्त निकाल पाये। शाहनवाज खाँ[१२] जो केंद्रीय सरकार मे औकाफ के मंत्री थे, उनके साथ गये थे। वहाँ जामा मस्जिद मे ही उनकी मुलाकात मीर मुश्ताक अहमद से हुई। उन लोगों ने और किसी से बात भी नही की। युनुस ने बताया, "मैंने बस उस इलाके को देखा और यह अंदाज़ा लगाया कि वहाँ क्या हो सकता है। उसके बाद मैंने जाकर प्रधान मन्त्री को बता दिया। मेरी सिफारिश यह थी कि सिर्फ ४०० दुकानों के बजाय, जिन्हे बनाने की बात सोची जा रही थी, पाईवालान के इलाके मे १,००० दुकानें बनायी जायें और यह कि उर्दू बाज़ार के नीचे दुकानो की एक पूरी कतार हो सकती है।"[१३]

"हाँ, लेकिन लोगों का क्या होगा? आपने उनके बारे मे नही बताया कि उन्हे कहाँ भेजा जाये?"

"मैं ये दूसरी दुकानें वहाँ के मुकामी लोगों के लिए ही चाहता था। मैंने उनको बताया कि उस इलाके के सारे बचे हुए दुकानदारों को जामा मस्जिद के आस-पास करीब ही जगह दी जा सकती है। शाहनवाज और मीर मुश्ताक दोनों ही मेरी इस बात के हक में थे।"

"फिर श्रीमती गांधी ने क्या कहा?"

"लेकिन जिन पुराने दुकानदारों से उनकी दुकानें छिन गयी थीं उन्हें आपके सुझाव के मुताबिक वहाँ नहीं बसाया गया। जाहिर है कि संजय ने आपकी सलाह के सिर्फ़ एक पहलू पर ध्यान दिया था।"

"हो सकता है।"

"आपने बाद में यह पता लगाने की कोशिश नहीं की कि आखिरकार हुआ क्या? यह तो बहुत बुनियादी मसला था।"

"देखिये," यूनुस ने कहा, "लोग शायद यह बात भूल गये हैं कि मैं तीस साल तक सरकारी नौकर रह चुका हूँ। यह आपको अपने काम से मतलब रखना सिखा देता है। जिन लोगों को सरकार में काम करने का तजुर्बा है वही इस बात को समझ सकते हैं। कोई टूरिज्म के सेक्रेटरी से कॉमर्स के मसलों की छानबीन करने को नहीं कहता, या कॉमर्स के सेक्रेटरी से रेलों के बारे में सलाह नहीं लेता, लेकिन उनमें से किसी से भी, मिसाल के लिए, किसी दंगे की जाँच करने को कहा जा सकता है। आप जाँच पूरी करके फिर अपने काम पर वापस चले जाते हैं। मैं हर चीज़ के बारे में बातें नहीं करता। यह एक बात है जो मैंने तीस बरस में सेक्रेटेरियट में सीखी है—किसी दूसरे के मामले में टाँग न अड़ाना...।"

"प्रधान मंत्री के मामलों में भी नहीं।"

"जी हाँ। उन कामों में नहीं जो मुझे करने को न दिये गये हों।"

"फिर आपको उन्होंने इन मामलों में क्यों उलझाया जिन्हें मैं आपके दायरे के बाहर के काम कहूँगी।"

"हो सकता है कि वह किसी की आजाद राय चाहती हों। मुझे वह वाकया याद आता है जब १९६४ में दस साल बाद शेख अब्दुल्ला[॰] रिहा किये गये थे। पंडितजी[॰] ने मुझसे हवाई अड्डे पर जाकर उनसे मिलने को कहा। उस वक़्त मैं विदेश मंत्रालय में महज़ ज्वाइंट सेक्रेटरी था। लेकिन जब मुख़ालिफ पार्टियों ने इस पर बहुत शोरगुल मचाया, तो पंडितजी ने कहा कि इस बात को ज़रूरत से ज्यादा महत्त्व देने की कोई जरूरत नहीं है, बात सिर्फ़ इतनी थी कि वह मुझे जानते थे और यह जानते थे कि मैं शेख साहब को अच्छी तरह जानता था। जब मौलाना आजाद[॰] मरे तब भी यही हुआ। उनका कोई रिश्तेदार था नहीं और आजादी से पहले के दिनों से वह मुझे खान अब्दुल गफ्फार खाँ[॰] के सेक्रेटरी की हैसियत से, और फिर आजादी की लड़ाई के दौरान से जानते थे और मेरे साथ बड़ी मुहब्बत के साथ पेश आते थे। जब वह मरे उस वक़्त तो मैं फॉरेन सर्विस में सिर्फ़ डायरेक्टर था, लेकिन मुझसे उनके घर पर सारा इंतजाम करने को सिर्फ़ इसलिए कहा गया कि उनके साथ मेरे ताल्लुकात थे।"

"शायद लोग एक अफसर की हैसियत से और एक सियासी आदमी की हैसियत से आपके काम में ठीक से फ़र्क नहीं कर पाते।"

"हो सकता है। लेकिन मेरे दिमाग में बात बिल्कुल साफ़ थी। मुझसे भी चलने को कहा गया था, लेकिन इसी वजह से मैं चंडीगढ़ और गौहाटी में कांग्रेस के अधिवेशन में हिस्सा लेने नहीं गया। मैं उससे अलग रहना चाहता था।"

"लेकिन लोग यह भी जानते थे कि आप ज़ाती तौर पर पंडित नेहरू के करीब थे, और अब इन्दिरा गांधी के करीब हैं।"

"जी हाँ, यह चालीस साल पुराना साथ है। इसी वजह से हर आदमी यह समझता था कि हर बात में मेरा दख़ल होगा।"

"इस जामा मस्जिद वाले मामले में, इस बात के बावजूद कि आप इतने

अरसे तक सरकारी अफसर के साँचे मे ढल चुके हैं, क्या आपने कभी एक शहरी की हैसियत से भी यह मालूम करने की कोशिश नही की कि आपने जो सुझाव दिया था उसका क्या हश्र हुआ ?"

"देखिये, अगर आदमी के हाथ मे दर्जन-भर काम हों, तो क्या वह इससे ज्यादा कुछ कर सकता है ? हर काम के साथ सरकारी काम-काज की जिम्मेदारी जुड़ी हुई थी। मुझे उन जगहों पर देखना था कि क्या हो रहा है, क्या नही हो रहा है, और क्या करना है, न कि उस जगह जहाँ कि मुझसे सिर्फ एक रिपोर्ट पेश करने को कहा गया था और जिम्मेदारी दूसरे लोगों की थी। बीच-बीच मे जब लोगों को कर्ज लेने की जरूरत पड़ती थी या कोई दूसरी दिक्कत होती थी तो वे मेरे पास मदद के लिए आते रहते थे। मैं उनकी तरफ से उन अफसरों को या दूसरे हाकिमों को टेलीफोन कर देता था ताकि वे जाकर उनसे मिल लें। मैंने इंदर-मोहन के दोस्तो से भी कहा था कि मेरा इससे कोई लेना-देना नही है, कि वे जाकर सम्बद्ध अफसरों से मिलें। मेरी समझ मे नही आता था कि लोग ऐसे कामों के लिए मेरे पास क्यो आते रहते थे जिनमें मेरा कोई दखल नहीं था।"

"क्या आप उसके ख्यालात की वजह से उसके खिलाफ थे ? मेरा मतलब है कि क्या आप उस वक्त वामपंथियों के खिलाफ थे ?"

"मुझे इससे कुछ लेना-देना नही था कि उसके ख्यालात क्या थे या क्या रह चुके थे। जाती तौर पर वह कभी मेरा दोस्त नही रहा था। लेकिन चूंकि पहले मैं भी सियासत मे रह चुका था, इसलिए हर जगह मेरे दोस्त थे। जिन्हें आप बाय बाजू के लोग या वामपंथी कहती हैं उनमे से ज्यादातर, जब मैं विदेश मंत्रालय में था, मेरे पास सियासी जानकारी हासिल करने के लिए आया करते थे; उनमें से ज्यादातर मेरे बहुत अच्छे दोस्त थे, जिन्हें मैं लाहौर के जमाने से जानता था, उनमें मर्द भी थे और औरतें भी जिनसे मेरी जान-पहचान चालीस साल से भी ज्यादा पुरानी थी—सज्जाद, अरुणा, मजहर (जो अब पाकिस्तान मे हैं), मोहन, पेरिन, रमेश, रेणु, निखिल, या पार्वती[11] और डॉ० अहमद[12]—जिनमे हिरेन मुखर्जी[13] भी शामिल हैं। उस बात का इससे कोई मतलब नही था।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीमती गांधी ने इस अरसे में एक बहुत ही वामपंथ-विरोधी दौर में कदम रखा, और वह अपने चारों ओर ऐसे लोगों को रखना चाहती थीं जो उनकी मौजूदा मनोदशा से मेल खाते हों...।"

"बहरहाल, मैंने कभी यह महसूस नही किया कि कम्युनिस्टों की हर बात बुरी है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उनमे मेरे बहुत अच्छे दोस्त थे। मैंने हमेशा महसूस किया है कि वे बहुत लायक और बड़ी लगन से काम करने वाले लोग है, लेकिन मैंने उनकी सियासत को कभी सही नहीं समझा, खास तौर पर उनकी दूसरे मुल्कों से हिदायतें आने का इंतजार करने की आदत को। १९४२ मे इन लोगो ने यही किया और अभी हाल में १९७६ मे बजट के बारे में उनका यही रवैया रहा। शुरू में तो उन्होंने उसकी बहुत बुराई की, लेकिन जब सोवियत संघ ने उसकी तारीफों के पुल बाँध दिये तो उन्होंने भी वैसा ही राग अलापना शुरू कर दिया। १९६८ मे जब बादशाह खाँ हिंदुस्तान आये थे, उस वक्त का मुझे एक बहुत अच्छा वाकया याद आता है। जब वह कलकत्ते मे ज्योति बसु[14] से मिले तो बादशाह खाँ ने उनसे पूछा, 'यह क्या बात है कि यहाँ हिंदुस्तान मे सभी चीजें दो-दो हैं, कांग्रेस पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, यहाँ तक कि कम्युनिस्ट पार्टी भी ?' ज्योति बसु ने उन्हें सारी दुनिया मे कम्युनिस्टों के बीच फूट पड़ने की सारी बात समझाने की कोशिश की।

बादशाह खाँ ने फ़ौरन फ़िक़रा कसा : 'अच्छा, तो क्या रूस में भी दो कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं और चीन में भी दो कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं ?' जब हम लोग कमरे से बाहर निकल रहे थे तो ज्योति बसु ने बड़ी हैरत से मुझसे कहा, 'बूढ़ा बहुत तेज़ है, है न ?' मैं समझता हूँ कि इसके बारे में जितनी मेरे दिल मे निन्दा है उतनी किसी और के नहीं।"

"उन्होंने इमर्जेंसी का सहारा क्यों लिया यह तो मुझे मालूम नहीं," कम्युनिस्ट नेता प्रेमसागर गुप्ता ने कहा, "लेकिन हम लोगों ने (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने) उसका समर्थन इसलिए किया कि हम दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों की केन्द्र में राजनीतिक सत्ता पर जबर्दस्ती कब्जा करने की चाल को नाकाम करना चाहते थे।" शायद उस वक़्त तक यह बात इतनी स्पष्ट होने के लिए अभी बहुत जल्दी थी कि इन्दिरा गांधी अपनी हद तक यह समझती थी कि वह सब-कुछ ठीक इसकी उल्टी शक्तियों की हरकतों की काट करने के लिए कर रही थी—यानी वामपंथी पराक्रमवादियों के ख़िलाफ़, जैसा कि वह उन्हें उस वक़्त कह सकती थीं। दोनों ही तरह से यह सत्ता हथियाने का खेल था, और सबका सभी कुछ दाँव पर लगा हुआ था। मज़े की बात तो यह थी कि यह सब-कुछ होते हुए भी यह लड़ाई बहुत ऊपरी सतह पर लड़ी जा रही थी—जामा मस्जिद की सड़कों पर, शहरों के मोहल्लों के फुटपाथों पर, और उन लोगों के नसबंदी के कैंपों में जिन पर राजनीति का नया-नया भूत सवार हुआ था। यह भारतीय घटनाक्रम को इतनी अविश्वसनीय हद तक ग़ैर-राजनीतिक बना देने का एक ऐसा सिलसिला था जैसा कि अब तक किसी ने नहीं देखा था। संजय गांधी अपनी माँ का एक ऐसा वाक्य दोहराने लगा था जो उन्हें बहुत प्रिय था और जिसे वह हर उस मौक़े पर इस्तेमाल करती थीं जब वह किसी कठिनाई मे फँस जाती थीं : "वामपंथ और दक्षिणपंथ जैसी कोई चीज नहीं है। हमें मतलब सिर्फ़ इस बात से है कि हम इन सिद्धांतों को भारत में किस तरह लागू करते हैं।" बिहार में २० फ़रवरी १९७६ को पटौल नामक स्थान में संजय गांधी ने एक पब्लिक मीटिंग मे इस सवाल के बारे में शायद अपना पहला बयान दिया। उसने पुराने अनुभवी कांग्रेसियों से कहा, "वामपंथ और दक्षिणपंथ पर झगड़ा करना छोड़ दीजिये और जनता के कल्याण में अपना समय लगाइये।"

ठीक इसी सवाल पर—जनता के सवाल पर—दिल्ली के पूरे शहर में गुस्से की एक लहर दौड़ना शुरू हो गयी थी। इमर्जेंसी के दुरुपयोग के बारे में प्रेमसागर गुप्ता ने प्रधान मंत्री के नाम और लेफ़्टिनेंट-गवर्नर के नाम अपना पहला पत्र ५ अगस्त १९७५ को लिखा था—इमर्जेंसी लागू होने के दो महीने के अंदर। यह पत्र उन तमाम बातों के बारे में था जो जनता के साथ हो रही थीं—बिना किसी व्यवस्था के, और ऐसा लगता था कि काम-चलाऊ आधार पर। हज़ारों ग़रीब परिवारों को जबर्दस्ती उनकी झुग्गी-झोंपड़ियों से जिस तरह उजाड़ कर उन इलाकों में ले जाकर छोड़ दिया गया था जो उन्हें बसाने के लिए तय किये गये थे और जिनकी स्कूलों, अस्पतालों, बाज़ारों और मकानों वग़ैरह की सारी योजनाएँ अभी तक काग़ज़ पर ही थीं। बीमार और गर्भवती औरतों को, बिलखते हुए बच्चों को, बूढ़ों को और कड़ियल जवानों को मुर्दा पोटलियों की तरह ले जाकर वहाँ पटक दिया गया था, उन्हें उनके पच्चीस-पच्चीस गज़ के ज़मीन के टुकड़े दिया दिये गये थे, जिन पर निशान लगाकर उन्हें अलग-अलग प्लाटों में बाँट दिया गया था, और दिल्ली की भरी बरसात में उनसे कह दिया गया था : "यह रहा

तुम्हारा प्लाट, चाहो तो इस पर अपना घर बना लो।"

संजय के सरकारी गुर्गों ने जो दलील दी थी, और जैसा कि संजय ने खुद इंदरमोहन से कहा था, वह यह थी कि इस तरह का काम सिर्फ़ इमर्जेंसी की हालत में किया जा सकता है, जब लोगों को वह सब काम करना पड़ता है जो सरकार उनसे करने को कहती है। गंदी बस्तियों में रहने वालों को दूसरी जगह ले जाकर बसाने और शहरी इलाकों की सफाई करने की इससे पहले जो कोशिश की गयी थी वे इसलिए नाकाम रही कि ये परिवार रहने के लिए दूसरी जगह ले तो लेते थे, लेकिन उसे किराये पर उठाकर फिर अपनी पुरानी जगहों में ही रहने लगते थे। फिर से एक गंदी बस्ती बस जाती थी जो 'भारत की राजधानी की खूबसूरती' पर एक धब्बा बन जाती थी।

गंदी बस्तियाँ गंदी ही रहती थी, उनमे सफ़ाई का कोई बंदोबस्त नही होता था, वे बीमारी, अपराध और आपसी झगड़ों के ऐसे अड्डे बन जाती थी जो इंसानों के रहने के लायक नही होती थी। नागरिक प्रशासन की संस्थाएँ उन्हें बुनियादी सुविधाएँ नही देती थी क्योंकि वे गैर-कानूनी होती थी, और पूरी-की-पूरी पीढ़ियाँ पेशाब की बदबू के बीच और मुंह मे मिट्टी और गंदगी का स्वाद लिये पलती-बढ़ती रहती थी। फिर भी वे वहीं रहते थे क्योंकि वहीं वे अपनी रोज़ी कमाते थे, क्योंकि वे इमारती मजदूर थे जो पैसे वालों के लिए आलीशान हवेलियाँ बनाते थे, आधुनिक युग के गगनचुंबी स्वप्नों को साकार करते थे, उन धनवानों और ऊँची हैसियत वाले लोगों के लिए, जो आस-पास की शानदार कॉलोनियों में रहते थे, या उन बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्रों के लिए जहाँ वे अपनी सेवाएँ मिट्टी के मोल बेच सकते थे।

प्रेमसागर गुप्ता का आखिरी निजी खत १० फरवरी १९७७ का था जो उन्होंने पी० एन० धर के नाम लिखा था। जब पुरानी बस्तियों में रहने वालों के एक नये समूह को उनके पुराने मकानों से निकालकर नयी बस्तियों मे बसाने के लिए ले जाया जा रहा था तो पी० एन० धर ने प्रेमसागर गुप्ता को मिलने के लिए बुलाया। प्रेमसागर गुप्ता ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी राजेश्वर राव से कहा, "मुझे दाल मे कुछ काला लगता है।" किसी ने श्रीमती गांधी से शिकायत कर दी थी कि वह इमर्जेंसी के खिलाफ थे। कई बार उनके खिलाफ मीसा में वारंट भी निकल चुके थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि इस बार भी वही बात होगी। लेकिन धर ने उनकी सारी बातों को ब्यौरे के साथ दर्ज किया और फिर उनसे पूछा, "क्या इसे प्रधान मंत्री को दिखाने के लिए मुझे आपकी इजाज़त है?"

"ज़रूर, ज़रूर।"

कुछ दिन बाद धर ने फिर टेलीफोन करके उन्हें बताया कि प्रधान मंत्री इस बात की ठोस मिसालें चाहती हैं कि जो लोग अपने घरों से हटाये गये हैं उनमें से किन-किन लोगों के रोज़गार पर असर पड़ा है और कैसे। धर ने सलाह दी, "नमूने के तौर पर सौ आदमियों के बारे में पूछताछ कर लो।"

प्रेमसागर गुप्ता इसके बारे मे बताते हैं, "मैंने ऐसा ही किया, और मुझे पता चला कि आधे लोगों को अपनी रोज़ी से हाथ धोना पड़ा था।" नमूने के तौर पर जो पूछताछ की गयी थी उसकी रिपोर्ट पर किसी के दस्तखत नहीं थे। धर ने उसे प्रधान मंत्री को दे दिया। प्रधान मंत्री ने उसे संजय के हवाले कर दिया और उसने उसे फिर उन्हीं लोगों को सौंप दिया जिनके खिलाफ उसमें शिकायत की गयी थी—डी० डी० ए० को। डी० डी० ए० के एक अफसर, के० के० नायर, इस

मामले को निवटाने के लिए तैनात कर दिये गये। उन्होंने लोगों से कहलवा लिया कि वे वहाँ बस गये हैं और बहुत खुश हैं। चारों तरफ इतना डर छाया हुआ था कि किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि खिलाफ आवाज़ भी उठाये, लेकिन बाद मे इन्ही लोगों ने प्रेमसागर गुप्ता को बताया कि उन्हे धौंस देकर उनसे वे बयान लिये गये थे। प्रेमसागर गुप्ता ने पूछा, "सवाल यह है कि जाँच का काम उन्ही हाकिमों को क्यों सौंपा गया जिनके खिलाफ शिकायत की गयी थी ?"

अगर लाखों लोग बेहतर जगहों पर और बेहतर हालात के बीच भी बसा दिये गये होते, जैसे कि बाद में बसाये गये, तब भी दो सवाल उठते है : इसके लिए इंसानों की मुसीबत की शक्ल मे कितनी कीमत चुकानी पडी और इस बात की *क्या गारंटी है कि कई लाख और लोग उनकी जगह फिर नहीं आ जायेंगे ?* जिन गरीब लोगों को न रूखा-सूखा भोजन मिलता है और न जिन्हे भविष्य की कोई आशा होती है वे जब शहरों मे भरपेट भोजन और फुटपाथ पर सोने की जगह की तलाश में झुंड बांधकर आना शुरू करेंगे तो उन्हे कौन रोक सकेगा ? हिंदुस्तानी गाँवों को कौन उनमे बसने वालों के लिए एक घर बना सकेगा, उस नरक के बजाय जिससे वे भागने की कोशिश करते हैं ?

इमर्जेंसी के दौरान संजय की बढती हुई ताकत और उससे भी ज्यादा उसके बढते हुए अहंकार के तहत गंदी बस्तियों की सफाई की जो मुहिम सारे भारत मे फैल गयी उसके लिए जिस चीज की जरूरत थी वह थी मानवीयता और कल्पना। लेकिन जैसा कि श्रीमती गांधी ने कहा था, संजय विचारक नहीं था, काम करने वाला आदमी था। उसके दिमाग मे ये सारी बातें बिलकुल साफ थी। उसके सामने लाखों लोग थे जो बहरहाल जानवरों जैसी ज़िंदगी बसर करते थे। अगर उन्हे खुले मैदान में मूसलाधार बारिश मे ले जाकर पटक भी दिया गया तो यह उनके लिए कोई भी बात नहीं थी। उन्हे उनकी ज़मीन मिल जायेगी और धीरे-धीरे वे उस पर बस जायेंगे। इस दौरान मे अगर कोई नया पैदा हुआ बच्चा मर जाता है, या कोई बूढ़ा आदमी बारिश और सर्दी का शिकार हो जाता है, और कोई परिवार बीमारी की वजह से मौत के मुंह मे चला जाता है, तो क्या हुआ—"दिल्ली को खूबसूरत बनाने के लिए" इतना जोखिम तो उठाना ही पड़ेगा।

जब ये कार्रवाइयाँ दिल्ली की कडाके की सर्दी में भी जारी रही, तो शशिभूषण बौखलाकर संजय के पास गये। सेंसरशिप लागू थी; साफ-साफ यह हुक्म दे दिया गया था कि अखबारों में घरों के गिराये जाने के बारे मे कोई खबर न छपने पाये ताकि लोगों का गुस्सा न भडके। इमर्जेंसी के दौरान हड़तालों की, विरोध करने की और प्रदर्शनों की इजाजत नही थी, इसलिए फरियाद करने का भी कोई रास्ता नहीं था। लोगों में यह डर बिठा दिया गया था कि जो भी सच बोलेगा या किसी बेइंसाफी को दूर कराने की कोशिश करेगा उसे जेल मे ठूंस दिया जायेगा, जैसा कि इंदरमोहन के साथ किया गया था। इस तरह लोग अपने दिमाग में भी सच्चाई का सामना नहीं कर सकते थे। लेकिन शशिभूषण कांग्रेसी थे, उनका दिल्ली की समस्याओं से गहरा संबंध था और उन्हें उस लडके के साथ, जो आम जनता के लिए एक आतंक बनता जा रहा था, अपने संबंध पर पूरा भरोसा था।

"ये लोग सर्दी में मर रहे हैं," उन्होने संजय को झुग्गी वालों के बारे में चेतावनी दी।

संजय ने उन्हें बातों में उड़ा दिया। "लोग तो यों भी मरा ही करते हैं।"

शशिभूषण ने बाद में मुझसे कहा, "यकीन नहीं आता कि उसने इतनी बड़ी बात इस तरह कह दी जैसे कोई बात ही न हो। मैं जानता हूँ कि श्रीमती गांधी बेरहम नहीं हैं।"

लेकिन शिकायतें श्रीमती गांधी के पास भी पहुँच रही थीं। उन्होंने जामा-मस्जिद वाले मामले के बारे में पता करने के लिए अपने एक सबसे भरोसे के आदमी यूनुस को भेजा था। जो कार्रवाई की गयी थी वह उनके सुझावों के मुताबिक नहीं थी। प्रेमसागर गुप्ता ने लिखकर एक शिकायत भेजी थी और सारी बातों का पता लगाकर पूरा ब्यौरा भेजा था। धर ने उसे रोका नहीं था। लेकिन प्रधान मंत्री ने उसे उन्हीं लोगों के पास वापस भेज दिया था जिनके खिलाफ उसमें शिकायतें की गयी थीं। और फिर सबसे बढ़कर उनकी पुरानी दोस्त, साथी, और उनके लिए जान पर खेल जाने वाली, जैसा कि उनके बारे में मशहूर था, सुभद्रा जोशी थीं। श्रीमती गांधी ने सफाई के नाम पर की जाने वाली ज्यादतियों के बारे में बताने के लिए एक मीटिंग बुलायी जिसमें दिल्ली के संसद-सदस्यों, कार्यकारी पार्षदों, लेफ़्टिनेंट-गवर्नर और संजय ने हिस्सा लिया। सुभद्रा जोशी और शशिभूषण ने इस मीटिंग में खुलकर अपनी बातें कहीं।

सुभद्रा जोशी बयान करती हैं, "उस वक़्त तक मुझे यह नहीं मालूम था कि इसमें संजय का भी हाथ है। मैंने उसके वहाँ मौजूद होने को कोई महत्त्व भी नहीं दिया था।" लेकिन संजय ने, और उसकी माँ ने भी, सुभद्रा जोशी के रवैये को बहुत गौर से देखा, और जल्दी ही सुभद्रा जोशी को इसका मजा भी चखना पड़ा। वह जेल तो नहीं भेजी गयीं लेकिन श्रीमती गांधी तक उनकी पहुँच धीरे-धीरे कम होती गयी। कमिश्नर टमटा ने भी इस बात को भाँप लिया था और उन्होंने सुभद्राजी को दिल्ली से कहीं बाहर चले जाने की सलाह दी थी। उन्होंने कहा था, "इसी में आपकी भलाई है।" लेकिन सुभद्रा जोशी डटी रहीं, उस भरोसे के सहारे जो श्रीमती गांधी के साथ उनकी पुरानी मित्रता और इतने पुराने साथ की वजह से पैदा हुआ था। उन्होंने एक बार फिर श्रीमती गांधी को लिखा कि "सफ़ाई की यह मुहिम बच्चों की पढ़ाई, मौसम के उतार-चढ़ाव और...रहने के लिए किसी दूसरी जगह की सुविधा को ध्यान में रखकर भी चलायी जा सकती है।"" लेकिन उन्होंने देखा कि अफसरों तक ने उनसे बात करना बंद कर दिया था। लेफ़्टिनेंट-गवर्नर कभी पलटकर टेलीफ़ोन नहीं करते थे। दूसरे अफसर कभी टेलीफ़ोन पर मिलते नहीं थे।

सुभद्रा जोशी कहती हैं, "दुकानों के छज्जे, झुग्गी-झोपड़ियाँ, मस्जिदें, मंदिर, सब ढा दिये गये। लोग भागे-भागे आते थे और हम बेबस महसूस करते थे।" अगर संजय बेरहम था, तो श्रीमती गांधी तो बिल्कुल पत्थर हो गयी थीं। सुभद्रा जोशी के दिल को चोट लगी थी, उनका मोह भंग हो गया था। जो कुछ हो रहा था उसके बारे में श्रीमती गांधी बिलकुल अनजान होने का जो दिखावा कर रहीं थीं उसके बारे में उन्होंने बहुत दुःखी होकर कहा, "वह सरासर बेइंसाफ़ी कर रही हैं। उनके जैसे व्यक्ति को, जिन्हें जनता ने अपना इतना भरपूर विश्वास और आस्था दी है, यह शोभा नहीं देता।...इसलिए मुझे बड़े दुःख के साथ कुछ ऐसी बातें सबके सामने रखने पर मजबूर होना पड़ रहा है जिनकी मुझे जानकारी है और जिनका मुझे तजुर्बा हुआ है। कोई भी ऐसी बात कहने में बहुत तकलीफ होती है जिससे यह साबित होता हो कि इन्दिराजी की सच्चाई में, उनके खरेपन में कोई कमी है...।"

अपनी माँ की तरह ही संजय भी कई स्तरों पर काम करने लगा था। लेकिन यह सारा सिलसिला एकतरफा नहीं था। युवक कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी हरचरन सिंह जोश[1] ने बताया, "खास तौर पर १२ जून के बाद, जब उसने सरगर्मियों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था, हम लोगो को, खास तौर पर नौजवान लोगों को प्रधान मंत्री की कोठी पर यह दिखाने के लिए ले जाते थे कि वे लोग उनके साथ हैं। संजय हमसे भीड़ जुटाने को कहता था। उस वक़्त हमने फ़ैसला किया कि उसे युवक कांग्रेस में लाना चाहिए। हमने सोचा था कि उसके आने से हमे फ़ायदा होगा।" लेकिन इसके पंद्रह दिन के अंदर ही संजय उनके साथ युवक कांग्रेस में नयी जान फूंकने की और बीस-सूत्री कार्यक्रम को पूरा करने की चर्चा करने लगा था। लेकिन इसके लिए उसने जो तरीक़ा सुझाया वह उसका अपना खास तरीका था— "आंध्र प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के राज्यों के अध्यक्षों को बदल दो, उनकी उम्र बहुत ज्यादा हो गयी है।"

"कैसे ?" किसी ने पूछा।

"आंध्र प्रदेश के सिलसिले में रघुरमैया[1] से, मध्य प्रदेश के सिलसिले मे प्रकाशचंद्र सेठी[1] से और बिहार के मामलों मे सीताराम केसरी से मशविरा लो," संजय ने सलाह दी।

इससे न सिर्फ यह बात साफ हो गयी कि वे कौन-से प्रमुख कांग्रेसी थे जिन पर उसे भरोसा था, बल्कि यह भी साफ हो गया कि सबसे ऊपर चोटी पर जितनी भी ताकत और जितना भी असर था उसे वह इस्तेमाल करने जा रहा था। उस समय प्रियरंजन दासमुंशी[1] युवक कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वह उस वक्त तो राजी हो गये। लेकिन जब उन्होंने केरल के संसद-सदस्य वायलार रवि[1] से इस बातचीत के बारे में चर्चा की तो उन्होंने बहुत जलकर कहा, "तुम नौजवानों के बादशाह हो, वह तो सिर्फ प्रधान मंत्री का बेटा है।" मुंशी तीनों अध्यक्षों के बारे मे फैसला करने में टालमटोल करने लगे। आखिरकार मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश के अध्यक्ष तो बदल दिये गये, लेकिन बिहार के अध्यक्ष को उन्होंने नही बदला। संजय ने महसूस किया कि यह उसका अपमान है और उसकी सत्ता को चुनौती दी जा रही है। जोश ने कहा, "सितंबर मे संजय ने राज्यों के युवक कांग्रेस के अध्यक्षों की एक मीटिंग बुलायी। कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी पी० वी० नरसिंह राव भी इस मीटिंग में आये थे। वहाँ सहमति से यह फ़ैसला किया गया कि मुंशी को हटा दिया जाये। उस वक़्त संजय युवक कांग्रेस का मेंबर भी नही था।"

और तब अंबिका सोनी मैदान मे आयीं।

चौंतीस-वर्षीया, मिलनसार, सभ्य-शिष्ट तथा महत्त्वाकांक्षी अंबिका सोनी में एक स्वस्थ आकर्षण था। एक बार जब वह अपने पति के साथ (जो विदेश सेवा में थे) मैक्सिको गयी थी तो वहाँ कास्ट्रो से मिली थी और उनसे बेहद प्रभावित हुई थी; वही, जब श्रीमती गांधी एक सरकारी दौरे पर गयी हुई थी अंबिका सोनी प्रधान मंत्री से मिली थी और बिलकुल मंत्रमुग्ध हो गयी थी। अंबिका ने प्रधान मंत्री से कांग्रेस मे काम करने की अनुमति चाही, और जब उन्होंने स्वीकृति दे दी तो अंबिका सोनी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र की चमक-दमक छोड़कर अपने देश के रंगमंच पर आ गयी। इस क्षेत्र में उनका पहला अनुभव था मुकुल बनर्जी[1] के चुनाव का अभियान जो १९७१ के लोकसभा के चुनाव में दिल्ली से कांग्रेस के टिकट पर खड़ी हुई थी। अंबिका सोनी दिल्ली में कांग्रेस के दफ़्तर और विदेश, जहाँ भी उनके पति नियुक्त होते थे, के बीच चक्कर लगाती रहती थी; इसी बीच दिल्ली

में संजय का दौर आया और युवकों को बहुत बढ़ावा मिला। प्रियरंजन दासमुंशी के इस्तीफा देने के बाद जब 'अध्यक्ष पद के लिए अंबिका' का नारा दिया गया तो युवक कांग्रेस के कुछ पुराने नेताओं को, जो स्वयं इस पद को पाने के लिए लालायित थे, यह सुझाव कुछ रुचिकर नहीं लगा। लेकिन जब उन्होंने जान लिया कि यह पद उन्हें नहीं मिल सकता तो वे संजय को अध्यक्ष बनाने के लिये जोड़-तोड़ करने लगे। संजय स्वयं यह नहीं चाहता था कि वह इसके लिए राजी हो, ताकि लोग कहीं यह न सोचें कि उसने मुंशी को इसी उद्देश्य से निकलवाया था। लेकिन यह फैसला भी वह अपने-आप नहीं लेना चाहता था। जब हरचरनसिंह जोश, सुरेंद्रसिंह (बंसीलाल का बेटा, जो युवक कांग्रेस का कोषाध्यक्ष था) और गुडूराव,[1] जो कर्नाटक मंत्रालय में सूचना-मंत्री थे और स्वयं युवक कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे, संजय को इसके लिए राजी करने गये तो उसने कहा, "मुझे तो कोई दिलचस्पी है नहीं, लेकिन इन्दिराजी से बात कर लीजिये...।"

जब ये तीनों लोग प्रधान मंत्री के प्राइवेट सेक्रेटरी धवन के पास मिलने का समय तय करने गये, तो उन्होंने यह कहकर इस मामले को अपने ही स्तर पर खत्म कर दिया कि वह जानते थे कि प्रधान मंत्री इस बात को पसंद नहीं करेंगी और उन्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि लोग यह कहें कि मुंशी के बाद वह अपने बेटे को अध्यक्ष बनाना चाहती थीं।

जोश बताते हैं, "हमने सोचा कि यह श्रीमती गांधी के विचार के अनुकूल बात है। हमने यह बात संजय को बता दी। उसने भी कह दिया कि ठीक है। लेकिन मैं समझता हूँ कि इसमें अंबिका सोनी ने कुछ जोड़-तोड़ की थी। धवन के साथ उनकी दोस्ती थी। इसके अलावा मैं समझता हूँ कि संजय ने अपने मन में यह तर्क भी दिया होगा कि वह अंबिका सोनी को सामने रखकर युवक कांग्रेस को अपने इशारों पर चला सकेगा।"

अंबिका सोनी को कांग्रेस के अध्यक्ष ने १२ नवबर १९७५ को युवक कांग्रेस का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। ६ दिसंबर को विभिन्न राज्यों के अध्यक्षों की मीटिंग में इस फैसले पर मुहर लगा दी गयी और संजय को भारतीय युवक कांग्रेस की राष्ट्रीय परिषद का एक सदस्य बनाया गया, जो उसका पहला राजनीतिक पद था। हर आदमी जानता था कि युवक कांग्रेस के पीछे असली शक्ति अंबिका सोनी नहीं बल्कि वही होगा। और, इसकी बानगी यह थी कि कुछ परंपराएँ तो फ़ौरन तोड़ दी गयीं। पहले राज्यों के युवक कांग्रेस के अध्यक्ष को पैसा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों से मिलता था और अखिल-भारतीय युवक कांग्रेस को ए० आई० सी० सी० से। यह सिलसिला बदल दिया गया। कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ ने पहली बार युवक कांग्रेस को सीधे पैसा इकट्ठा करने की इजाजत दे दी। जोश ने कहा, "पहले हम कांग्रेस का ही एक हिस्सा थे। हम कांग्रेस के संगठन के पीछे चलते थे, जिसने हमें जन्म दिया था, लेकिन हम नेतृत्व भी करते थे। १९७२ के बाद युवक कांग्रेस के अध्यक्ष को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंगों में भी आमंत्रित किया जाने लगा था। लेकिन संजय के आने के बाद झगड़ा शुरू हो गया।"

अंबिका सोनी बताती हैं, "मेरे अध्यक्ष बनने से पहले न कोई पैसा था, न कोई हिसाब-किताब था, और मुझे बहुत-से कर्ज चुकाने थे। मैंने पचास लाख सदस्यता के फॉर्म छपवाये; जो भी उन्हें ले जाता था दस्तखत कर देता था, लेकिन पदाधिकारियों को हर फॉर्म के पैंतीस पैसे देने पड़ते थे। पहली बार हमने बैंक में हिसाब खोला। अगर सौ रुपये भी निकालने होते थे तो दो आदमियों को दस्तखत

करने पड़ते थे—कोषाध्यक्ष को और मुझे। दफ़्तर की तरफ से चाय वाले के साथ भी हिसाब था और उसके लिए बाकायदा रसीद देनी पड़ती थी। मैं संजय की इस बात से बेहद प्रभावित हुई कि जब लोग मेरे पास पैसा देने आते थे तो मैं उसके पास जाती थी और वह कहता था, 'नहीं, नहीं, अंबिका, मैं पैसे-वैसे के झंझट में नहीं पड़ना चाहता।' बाद में जो कुछ हुआ उससे यह सब-कुछ इतना भिन्न था कि समझ में नहीं आता कि किस बात पर विश्वास करूँ। उस पर राजनीति की छाप तो है ही नहीं...।"

संजय के साथी जितने ही अधिक आग्रह के साथ कहते हैं कि उसे राजनीति से कोई मतलब नहीं है, उतनी ही अधिक यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन सारी राजनीतिक चालों के पीछे एक ही आदमी हो सकता था—उसकी माँ। जाहिर है कि उसकी माँ जब किसी को किसी काम के लिए चुनती थी तो उसकी कसौटी राजनीतिक होती थी। अंबिका सोनी को श्रीमती गांधी राजनीति में लायी थीं, और अंबिका घोर राजनीतिक प्रवृत्ति की हैं। जब संजय किसी को चुनता था तो वह भी उसी की तरह का कोई आदमी होता था जिसे राजनीति से कोई मतलब नहीं होता था, और इस तरह राजनीतिक मंच का स्तर दिन-ब-दिन घटिया होता गया।

दिसंबर में एक दिन उसने अंबिका से कहा, "यहाँ एक ऐसा शख्स मौजूद है जिसकी चारों तरफ बड़ी धूम है।"

"कौन?" अंबिका ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"रुखसाना सुल्ताना"," संजय ने कहा।

उसी वक़्त मैं भी पहली बार चमक-दमकवाली रुखसाना से मिली, जो एक दिन तीसरे पहर १ अकबर रोड पर संजय से मिलने के लिए आये हुए तरह-तरह के लोगों की भीड़ में अलग एक कुर्सी पर बड़ी शान से बैठी थी। उसकी उम्र बत्तीस साल की थी और वह बहुत आकर्षक थी। वह दिल्ली के एक प्रमुख नागरिक सर शोभासिंह के पोते से शादी करके उससे तलाक भी ले चुकी थी। सर शोभासिंह ने लुतयेन के नक्शे के मुताबिक़ नयी दिल्ली का निर्माण करने की ठेकेदारी में लाखों रुपये कमाये थे। मैं रुखसाना को कितने ही सांस्कृतिक समारोहों में देख चुकी थी और मैं उसे इस तरह भी जानती थी कि उसे गाने से—और बकौल आस्कर वाइल्ड, गवैयों से—बहुत लगाव था।

"आप यहाँ क्या कर रही हैं?" मैं पूछे बिना रह न सकी।

"मैं संजयजी के लिए काम करने आयी हूँ," रुखसाना ने जवाब दिया। "गंदी बस्तियों में," उसने यह भी बता देना जरूरी समझा।

मैंने उसके बड़ी खूबसूरती के साथ सँवारे गये चेहरे, उसकी कमानदार भवों, नाक पर से बार-बार नीचे फिसलते हुए बड़े-से काले चश्मे के पीछे से झाँकती हुई चंचल काली आँखों और लंबे-लंबे रँगे हुए नुकीले नाखूनों, घने काले घुंघराले बालों, कानों में हीरे के बुंदों और उँगलियों पर हीरे की अँगूठियों और बहुत सहज भाव से बड़े सलीके से पहनी गयी शिफान की गहरे रंग की छपी हुई साड़ी को ध्यान से देखा। उसके चारों ओर फ्रांसीसी इत्र की खुशबू बसी हुई थी। देखने में वह बेहद फ़ैशन करने वाली और ऐश-आराम में अपना वक़्त काटने वाली भड़कीली औरत लगती थी और थी भी। मैं सोच रही थी, यह गंदी बस्तियों में क्या करेगी, और किन गंदी बस्तियों में?

"जामा मस्जिद," उसने कहा। "देखिये, बात यह है कि जब मैंने सुना कि

संजयजी इसमे दिलचस्पी ले रहे हैं और चाहते हैं कि लोग उनके लिए काम करें, तो मुझमे बहुत जोश पैदा हुआ। पहली बार मेरा कुछ करने को जी चाहा। मैंने आकर उनसे कहा कि वह जो भी काम दें मैं करने को तैयार हूँ। 'जामा मस्जिद जाओगी?' उन्होने मुझसे पूछा। 'मैं चाहता हूँ कि कोई वहाँ जाकर सफ़ाई और परिवार नियोजन का काम करे।' मैं मानती हूँ कि पहले तो मैं ज़रा चकरायी। मुझे यह भी नहीं मालूम था कि गंदी बस्ती होती कैसी है और मैंने सुन रखा था कि जामा मस्जिद बहुत ही गंदी जगह है। मैंने एक क्षण के लिए सोचा, लेकिन फिर कहा, 'हाँ, मैं वहाँ काम करूंगी।' तुम जानो, यह बहुत बड़ी चुनौती थी और चुनौतियों का सामना करने से मुझे प्रेम है। और इस तरह मैंने वहाँ काम करना शुरू कर दिया। मैं वहाँ पिछले दो महीनों से जा रही हूँ।"

रुखसाना के वाचाल आकर्षण में कोई टेढापन नहीं था और न ही उसकी उस तीखी स्पष्टवादिता मे जिसके साथ उसने पुराने कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के बारे में अपने विचार व्यक्त किये। "डार्लिंग," उसने अपनी आदत के अनुसार मुझे इस प्यार-भरे शब्द से संबोधित करते हुए बड़े राज़दाराना ढंग से कहा, "मैंने संजयजी से कह दिया कि मैं न खद्दर पहनूंगी, न पाउडर-लिपस्टिक इस्तेमाल करना छोड़ूंगी और न अपना रंग-ढंग ही बदलूंगी। मैं जैसी हूँ उसी तरह जाऊँगी, और इसी रूप मे अपने को स्वीकार कराऊँगी। मैं उन औरतों की तरह मक्कारी नही करूंगी आप तो जानती ही हैं, वे बनती बड़ी लजीली और शर्मीली हैं और अपनी सारी नेकी-बदी पर खद्दर का परदा डाले रहती हैं, लेकिन जब कोई चीज़ हासिल करने का मौका आता है तो ज़रा-सा इशारा पाते ही अपनी साड़ियाँ अपने सर के ऊपर तक उठा देती हैं!"

मैंने सोचा, जामा मस्जिद में तो बड़ी उथल-पुथल मची होगी, लेकिन यही हालत तो दिल्ली के ड्राइंग-रूमों की भी थी, और बंबई में तो यकीनन रही होगी जहाँ रुखसाना पुराने ज़माने के ज़ेवरों की डिज़ाइनर की हैसियत से जानी-पहचानी हस्ती थी, जिन्हें वह आमतौर पर फिल्मी सितारों के हाथ बेचती थी। मुझे पता चला कि जामा मस्जिद के इलाके में उसने अपना काम स्कूलों से शुरू किया, जहाँ जाकर वह सफ़ाई के बारे में लोगों को बताती थी और उनसे बुर्का पहनने की बुरी आदत छोड़ देने को कहती थी। एक तरफ जहाँ इस बात वाली बात की वजह से इस कट्टर और दकियानूसी समाज में लोग उसके खिलाफ़ भड़क उठे, वहीं दूसरी तरफ उसने उन्हें यह भी महसूस करवा दिया कि वह उनके कितने ही काम करवा सकती है, कि सारा प्रशासन उसके साथ है, और यह कि उसकी पीठ पर संजय का हाथ है। रुखसाना ने कई कठिनाइयाँ दूर करायी, कई समस्याएँ जो बहुत दिन से टलती आ रही थीं हल करवायी और प्रशासन के संबंधित अफसर को एक टेलीफोन करके पैसे की मंजूरी दिलवायी। वह अच्छी तरह जानती थी कि लेफ्टिनेंट-गवर्नर के स्पेशल असिस्टेंट नवीन चावला[1] ने जो संजय के बचपन के दोस्त थे, उनसे कह रखा था कि उसे हर तरह की मदद दी जाये। ये सारी कड़ियाँ इतनी साफ थीं कि लोग फ़ौरन समझ गये थे कि यह सब-कुछ किसके इशारे पर हो रहा है। रुखसाना संजय का ज़िक्र बड़ी बेबाकी से करती थी। एक दिन कुछ लोग १२ नरेंद्र प्लेस में उसके घर उसका इंटरव्यू लेने गये। वह बहुत बढ़िया गरारा पहने अपने पलंग पर घुटने ऊपर उठाये हुए बैठी थी और किसी को खत लिख रही थी। "माफ करना, डार्लिंग," उसने माफी माँगते हुए कहा, "मैं संजयजी के नाम यह नोट पूरा कर लूं...।"

जब मैंने उसे सर्ज का वह अंक दिखाया जिसमें संजय का इंटरव्यू छपा था और कवर पर संजय की तस्वीर थी, तो उसने बेहद खुश होकर बड़े नखरे से कहा, "ओह, संजू...!"

संजय खुद उसके खिलाफ एक भी शब्द सुनने को तैयार नहीं था।

"नवीन तो खैर चारों खाने चित हो ही गये थे," अंबिका सोनी ने कहा। "मेरे युवक कांग्रेस के लड़के आकर मुझे ताना देते थे—'अंबिकाजी, आपने अपने लिए क्या हासिल किया? रुखसाना को देखिये! वह चलती है तो उसके पीछे कई मोटरें चलती हैं। भगत, हीरासिंह सब उसके पीछे-पीछे फिरते है।' जब मैंने संजय से कहा, तो वह बोला, 'नही, वह बहुत अच्छा काम कर रही है।'"

इमर्जेंसी के पहले आधे दौर में परिस्थितियां केवल एक संकट की ओर बढ़ रही थीं। अनुशासन की वजह से काम-काज कुछ ठीक से होने लगा था। लोग दफ्तर समय से आते थे, रेलगाड़ियां वक्त से चलती थीं, हड़ताल करने की इजाजत न होने की वजह से उत्पादन भी बढा था, भारत में कीमतों का बढना बिलकुल रुक गया था जो कि बाकी दुनिया को देखते हुए एक बहुत बड़ा कमाल था, और हर चीज के बारे में लगन की एक लहर थी—जनता को सुखी बनाने के लिए श्रीमती गांधी के बीस-सूत्री कार्यक्रम से लेकर संजय गांधी के उस पांच-सूत्री कार्यक्रम तक जो उसने लोगों के एक नीरस और श्रमसाध्य कर्त्तव्य के रूप में तैयार किया था। ऐसा जताया जा रहा था जैसे संजय के पास सभी समस्याओं का हल है। उसका कार्यक्रम "भारत के युवकों के लिए" तीन सूत्रों से शुरू हुआ था, जिस तरह उसकी मां का बीस-सूत्री कार्यक्रम "देश में फिर से साहसपूर्ण काम करने की भावना पैदा करने" के लिए था।

संजय ने १० जनवरी को बंबई में "परिवार नियोजन, सफाई और दहेज प्रथा के खिलाफ" मुहिम चलाने का नारा दिया था। बाद में उसने उसे बढ़ाकर पांच-सूत्री कार्यक्रम बना दिया था—"परिवार नियोजन, पेड़ लगाना, जातपांत का खात्मा, प्रौढ़ शिक्षा और दहेज पर पाबंदी।"

संजय जो कुछ कहता था वह ठीक था। लेकिन वह जो कुछ भी करता था वह गलत होता था। उसके पास कोई ऐसा ढांचा नही था जिसमें वह अपने विचारों को बिठा सकता। उसके पांच सूत्रों मे एक समाज-सुधार आंदोलन के अंकुर जरूर थे—अगर उसने कुछ मूल्यो को उचित प्राथमिकता दी होती। वह एक ऐसा नौजवान था जिसे अपनी क्षमता और उपयोगिता साबित करने की बहुत जल्दी थी।

जवाहरलाल नेहरू ने रूसी इतिहास से उपमा देते हुए इन्दिरा को 'क्रांति की संतान' कहा था, क्योंकि उसका जन्म उसी वर्ष हुआ था जिस वर्ष क्रांति हुई थी। संजय इमर्जेंसी की राजनीति पर पला-बढ़ा था और उसकी राजनीतिक दीक्षा पर एक विकृत युग के सभी दुर्गुणों की छाप थी। अपने पांच-सूत्रों को लेकर गांवों मे जाने, जनता को समझा-बुझाकर जागृति के पथ पर लाने वाली शक्ति के रूप में नवयुवकों को संगठित करने और अपने लिए एक राजनीतिक आधार तैयार करने के बजाय वह दिल्ली मे बैठा-बैठा अफसरों को अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने के साधन की तरह इस्तेमाल करता रहा और पूरे कांग्रेस संगठन की जड़ खोखली करता रहा। वही गरीब लोग जो कांग्रेस के साथ थे सबसे पहले उससे दूर हो गये क्योंकि उसने अपना राजनीतिक जीवन शुरू करने के लिए जो कार्यक्रम तैयार किया था उसका असर अमीरो पर नही बल्कि गरीबों पर पड़ता था।

लेकिन बाहरी रूप बहुत नाटकीय था, वह अपनी बात इतने थोड़े शब्दों मे और इतने
स्पष्ट ढग से कहता था, पुराने कांग्रेसियो के लबे-चौड़े भाषणो की तरह नही, कि
एक तरफ शुरू-शुरू मे कुछ उत्साह पैदा हुआ तो उसके साथ ही डर भी पैदा
हुआ। उसके एक मित्र ने कहा, 'मैं तो उसे भी दोष नही देता। मैं उसकी माँ को
दोषी ठहराता हूँ। माँ होने के नाते उन्हें यह मालूम होना चाहिए था कि वह क्या
कर सकता है। एक नौजवान अराजनीतिक आदमी पर इतना बड़ा बोझ लाद
देना उचित नही था। जाहिर है, उसका दिमाग खराब हो गया।"

लेकिन उसके बारे मे या उसके काम के बारे में एक भी बात ऐसी नहीं थी
जिसका उसकी माँ को, प्रधान मंत्री को पता न रहा हो। उन्होंने दिल्ली का शहर,
और इसके शीघ्र ही बाद कुछ चुने हुए अच्छे-अच्छे उत्तरी राज्य, भले ही उसके
हवाले कर दिये थे लेकिन हर चीज अब भी उन्ही के साथ जुड़ी हुई थी—शिकायतें,
तकलीफ और उनके शासन की राजनीतिक बारीकियाँ। संजय के हाथ मे ताकत
थी लेकिन उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं थी, जो एक घातक बात थी। इसकी
इजाजत उसकी माँ ने दी थी; कांग्रेस के नेताओं ने इसका समर्थन किया था।
सजय ने जितनी आसानी से अपना अधिकार-क्षेत्र बढा लिया उसके पीछे और
कोई कारण हो ही नही सकता—दिल्ली में पुरानी बस्तियाँ उजाडने और नयी
बस्तियाँ बसाने के काम के बाद बंबई, जयपुर, आगरा और पूरे उत्तरी भारत मे
उसने पुरानी बस्तियाँ उजाडने और नयी बस्तियाँ बसाने का बीडा उठा लिया;
दिल्ली के क्षेत्र से बढकर उसने उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल
प्रदेश और राजस्थान को भी अपनी परिधि मे समेट लिया; दिल्ली प्रशासन के
अधिकारियो तक ही सीमित न रहकर उसने केंद्रीय सरकार के मंत्रियों और
राज्यो के मुख्य मंत्रियों पर भी हुक्म चलाना शुरू कर दिया; अपने पाँच-सूत्री
कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर चर्चा करने से बढकर वह राजनीतिक समस्याओं के
बारे मे सबसे बडा सलाहकार बन गया।

लेकिन हर उदाहरण मे सारी जोड-तोड केंद्र मे नेतृत्व की दूसरी सीढी पर,
राज्य-मंत्रियों के बीच या कैबिनेट के नौजवान मंत्रियों के बीच होती थी जो
युवकों की श्रेणी में आते थे, जो संजय का अधिकार-क्षेत्र बन गया था। बडे नेताओ
को हाथ लगाये बिना उनके पद से सत्ता का तत्व निकाल लिया गया; वे किसी
प्राचीन इमारत के ठोस खंभों की तरह खड़े थे, जिसकी दीवारें और छतें समय के
क्रूर हाथों का शिकार हो चुकी थी। सजय गृह-मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी से नही बल्कि
राज्य-मंत्री ओम मेहता से, वित्त-मंत्री सी० सुब्रह्मण्यम[13] से नही बल्कि राज्य-मंत्री
प्रणव मुखर्जी[14] से, उद्योग मंत्री टी० ए० पै[15] से नहीं बल्कि राज्य-मंत्री ए० पी०
शर्मा से और दिल्ली के लेफ्टिनेंट-गवर्नर किशनचंद से नही बल्कि उनके स्पेशल
असिस्टेंट नवीन चावला से संपर्क रखता था।

जगजीवनराम, वाई० बी० चह्वाण या स्वर्णसिंह जैसे लोगों को तो संजय के
प्रभाव-क्षेत्र मे खीचकर नही लाया जा सकता था, लेकिन डी० पी० चट्टोपाध्याय
और विद्याचरण शुक्ल जैसे नौजवानों को लाया जा सकता था जिनके सामने अभी
तरक्की करने के बहुत अवसर थे। सबसे बढकर तो बंसीलाल थे जो केन्द्रीय रक्षा-
मंत्री नियुक्त होने के बाद कैबिनेट मे संजय की सीधी पहुँच हो गये। लेकिन यह
कोई नही कह सकता कि श्रीमती गांधी के चाहे बिना ही बंसीलाल कैबिनेट के
तीन सबसे प्रमुख पदो मे से (बाकी दो विदेश-मंत्री और गृह-मंत्री के पद थे)
एक पर नियुक्त कर दिये गये थे।

राज्यों को काबू में रखना ज्यादा आसान था क्योंकि यह एक ढर्रा बना लिया गया था कि, बहुत बड़ी हद तक इन्दिरा गांधी की निजी साख की वजह से, केन्द्र को इस बात का पूरा अधिकार दे दिया गया था कि वही आदमियों को चुने और बाद में उन्हें राज्यों की विधानसभाओं से स्वीकार करा ले। साठे ने कहा, "जब भी वह किसी आदमी को नामजद करती थी तो इस बात का पक्का प्रबंध कर लेती थी कि ज्यादातर विधायक उसका समर्थन करें। जो कोई भी उनसे टक्कर लेता था, जैसे बहुगुणा या नंदिनी सत्पथी, उसे उन्होंने हटा भले ही दिया हो, लेकिन वह इस बात का पूरा आश्वासन कर लेती थीं कि उसकी जगह जो अगला आदमी आये उसे विधायकों के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहे।" इससे यही साबित होता है कि राजनीतिक जोड़-तोड़ की उनमें कितनी अधिक क्षमता थी; इससे उनकी साख की भी पुष्टि होती है, जिसके सहारे वह अपनी बात आदेश देकर मनवा लेती थी।

केवल ऐसे मुख्य मंत्री स्वीकार किये जाते थे जिनकी उम्र कम हो, या जो इतने कमजोर या खुशामदी हों कि संजय के स्तर पर काम कर सकें। जिन लोगों की सीधे प्रधान मंत्री तक पहुँच थी, या जो अपने को इतना ताकतवर समझते थे कि संजय के खिलाफ बगावत कर दें, या जिन्हें अपना पद छोड़ देने के लिए राजी नहीं किया जा सकता था (जैसे पश्चिम बंगाल में सिद्धार्थशंकर रे या उड़ीसा में नंदिनी सत्पथी) तो या तो उन्हें बदनाम करने के लिए अंदर-ही-अंदर एक मुहिम छेड़ दी जाती थी या पार्टी के अंदर एक विरोधी गुट बना दिया जाता था जो संजय-समर्थक गुट कहलाने लगता था। इन बागी राज्यों के मंत्रिमंडल भी दो टुकड़ों में बँटे रहते थे—एक तरफ वे लोग होते थे जो मुख्य मंत्री के साथ होते थे और दूसरी तरफ वे लोग होते थे जो संजय के समर्थक माने जाते थे। हिमाचल प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री डॉ० परमार[*] ने बताया, "मंत्री खुलेआम धड़ल्ले से मुख्य मंत्री के खिलाफ आरोप लगाते हैं और फिर भी अपने पद पर बने रहते हैं। यह बात खुलेआम कही गयी है कि मंत्रियों को प्रधान मंत्री के प्रति वफादार होना चाहिए, अपने मुख्य मंत्री के प्रति नहीं, जिसे केवल उनका समर्थन पाने का हक है।" उन्होंने आगे चलकर बड़े व्यंग्य से पूछा, "क्या इसका यह मतलब है कि मंत्री अपने मुख्य मंत्री की इच्छा पूरी न करें बल्कि स्वतंत्र रूप से काम करें ?"

बहुगुणा की जगह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बन जाने और केन्द्र के साथ अपने संबंध पक्के कर लेने के बाद नारायणदत्त तिवारी ने एक बार अपने साथी विधायकों से कहा था, "अगर आप लोगों को उल्टा भी लटकवा दिया जाये तब भी आप लोग मुझे हटा नहीं सकते। और अगर वे मुझे हटाना चाहेंगे तो आप लोग मेरी कोई मदद नहीं कर सकते, इसलिए मैं आप लोगों की परवाह क्यों करूँ ?"

जब लोगों ने सुखदा मिश्र के खिलाफ कुछ शिकायतें कीं, जिन्हें बंसीलाल ने १९७४ में उत्तर प्रदेश से चुनाव का टिकट दिला दिया था, तो तिवारी ने कहा, "मैं संजय और बंसीलाल की बदौलत मुख्य मंत्री बना हूं, इसलिए मुझसे सुखदा के बारे में कुछ न कहिये।..."

"सालाजार[*] ने इतने दिन तक सत्ता अपने हाथों में कैसे रखी ?" एक दिन संजय ने शशिभूषण से पूछा।

शशिभूषण का दिल धक् से रह गया।

"वह प्रोफेसर था, अर्थशास्त्री था और बहुत पढ़ा-लिखा था।"

शशिभूषण ने सोचा था कि अगर संजय को यह बता दिया जाये कि डिक्टेटर-शिप के लिए ये गुण ज़रूरी हैं, तो वह यह महसूस कर लेगा कि वह ख़ुद सालाज़ार बनने के सपने नहीं देख सकता।

लेकिन शशिभूषण के दिल में एक घबराहट पैदा हुई।

ऐसा लगता है कि इन्दिरा गांधी यह समझती थी कि जो लोग बड़े-बड़े सिद्धांतों की बातें करते हैं, लगातार सवालों की बौछार की वजह से उन्हें जिस परेशानी का सामना करना पड़ता है, और उनके लिए दिन-ब-दिन जो यह जरूरी होता जा रहा था कि हाईकोर्ट के फैसले के असर को खत्म करने के लिए वह जल्दी-से-जल्दी और ज्यादा-से-ज्यादा सफलता प्राप्त करके दिखायें, उन सब बातों का एक ही इलाज है—संजय। संजय इन्दिरा गांधी के लिए उनके अपराध का समाधान था।

टिप्पणियाँ

१. रफीअहमद किदवई शायद जवाहरलाल नेहरू के सबसे सफल मंत्री थे। उन्होंने जिस तरह संचार-मंत्रालय का, और बाद में खाद्य-मंत्रालय का काम सँभाला उसे अब तक सूझ-बूझ और साहस के लिए लोग याद करते हैं। वह बोलते बहुत कम थे लेकिन प्रशासन का पूरी तरह साथ देते थे और उनकी व्यवहार-बुद्धि बहुत प्रखर थी। १९५४ में लगभग ६० वर्ष की अवस्था में उनका देहांत हो गया।

२. चरणसिंह, जिन्हें लोग आमतौर पर 'चौधरी' कहते हैं, चालीस वर्ष लखनऊ में रहे हैं, लेकिन वह इतने दृढ़ स्वभाव के और इतने कार्यकुशल हैं कि उन्हें 'ठेठ यू० पी० वाला' नहीं कहा जा सकता। उनका काम करने का ढंग देहाती है और उनकी महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे इतनी चालाकी रहती है कि वह अपनी मर्जी से राजनीतिक गँठजोड़ बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। उत्तर प्रदेश में चंद्रभानु गुप्ता की कांग्रेसी सरकार का तख्ता उलटने के लिए उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और १९६७ में संयुक्त विधायक दल की सरकार के मुख्य मंत्री बने। उन्होंने अपनी नयी पार्टी भारतीय क्रांति दल (नवंबर १९६७ में स्थापित, जिसका नाम १९७४ में बदलकर भारतीय लोकदल कर दिया गया) का जिस तरह नेतृत्व किया उसकी वजह से वह उत्तर प्रदेश की राज-नीति में इतनी प्रभावशाली शक्ति बन गयी कि वह मुख्य मंत्री बनने में सफल हुए। उनका विश्वास है कि भारत का भविष्य तभी उज्ज्वल हो सकता है जब किसान का बेटा प्रधान मंत्री बने। ऐसा लगता है कि चौधरी साहब को इसके लिए इंतजार करना होगा।

३. कृष्णचंद्र पंत केवल छियालीस वर्ष के हैं और उन पर अपने स्वर्गीय प्रतिभा-शाली पिता पंडित गोविंदवल्लभ पंत की गंभीरता की छाप है, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था और स्वतंत्र भारत में नेहरू के साथी थे। १९६७ के बाद से के० सी० पंत इंदिरा गांधी की सरकार में विभिन्न मंत्रालयों में राज्य-मंत्री रहे लेकिन स्वतंत्र रूप से किसी मंत्रालय का भार उन्होंने पहली बार १९७४ में सँभाला जब वह ऊर्जा-मंत्री बने। उन्होंने

खामोशी के साथ बड़ी दक्षता के साथ काम करने और गुटबाजी से अलग रहने की ख्याति प्राप्त कर ली है। उन्हें स्क्वैश खेलने का शौक है। वह कांग्रेस पार्टी के जनरल-सेक्रेटरी है और उन पर बहुत कठिन कामों का भार है।

४. एच० के० एल० भगत छोटे कद के बहुत चुस्त और मुस्तैद राजनीतिज्ञ है। उनका जन्म १९२१ में ऐतिहासिक हरप्पा गाँव मे हुआ था, जो अब पाकिस्तान मे है। बँटवारे के बाद वह दिल्ली आये और वकालत से राजनीति के क्षेत्र में आ गये। उन्होंने पंजाब को नहीं बल्कि दिल्ली को अपना ठिकाना बनाया और वह उन इने-गिने पंजाबियों में से हैं जिन्हे दिल्लीवाला माना जाता है। तीस साल से भी कम की उम्र मे वह दिल्ली सरकार मे पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बने और तब से लगातार उन्नति ही करते रहे है— प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, फिर संसद-सदस्य, अंत मे कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के अध्यक्ष और फिर केन्द्रीय निर्माण तथा आवास-मंत्रालय में राज्य-मंत्री। कांग्रेस से उन्हें हमेशा बहुत लगाव रहा है और अब भी है।

५. ए० एन० चावला, जो इस समय तिरसठ साल के हैं, बर्मा में पैदा हुए थे और रंगून के यूनिवर्सिटी कॉलिज मे उन्होंने शिक्षा पायी। वह लगातार कांग्रेस के साथ सबद्ध रहे और संगठन मे उन्नति करते-करते इन्होंने संसद मे स्थान प्राप्त किया। सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले की वजह से उन्हे अपनी सीट से हाथ धोना पड़ा कि किसी उम्मीदवार की राजनीतिक पार्टी या उसके मित्र उसके चुनाव पर जो पैसा खर्च करें वह भी उसके अपने खर्च के साथ जोड दिया जाना चाहिए, जिसकी वजह से उनका अपना चुनाव का खर्च निर्धारित सीमा से बढ गया। १९७४ में जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम के बारे में यह फैसला किया गया कि वह पहले से लागू माना जायेगा और इस प्रकार वह श्रीमती गाधी पर भी लागू हो गया जिनका मुकद्दमा उस वक्त अदालत मे पेश था।

६. शिवचरण गुप्ता भी दिल्ली के पुराने नेता हैं, जिनकी बुनियाद संगठन मे बहुत मजबूत हैं। वह बहुत मृदुभाषी है। उनकी उम्र पचपन साल की है और बाल सफेद है। १९५२ मे वह दिल्ली सरकार मे कांग्रेसी पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी, १९५२-५३ मे उप-मंत्री, और १९६७-७२ मे दिल्ली की मेट्रोपोलिटन कौंसिल में विपक्ष के नेता थे। उन्होंने जगजीवनराम के साथ २ फ़रवरी, १९७७ को कांग्रेस छोड दी क्योंकि वह महसूस करते थे कि पार्टी के काम करने के तरीके से किसी की आत्म-सम्मान की भावना को बढ़ावा नही मिल सकता।

७. छप्पन-वर्षीय पी० वी० नरसिंह राव का जन्म करीमनगर (आंध्र) में हुआ था। राजनीति के क्षेत्र में वह एक अनोखे आदमी है। वह एक प्रतिष्ठित लेखक हैं और उतने ही सफल राजनीतिज्ञ भी। १९६२ में वह आंध्र प्रदेश मे संजीव रेड्डी के मंत्रिमंडल मे मंत्री रहे और १९६४ मे फिर ब्रह्मानद रेड्डी के मन्त्रिमंडल में मंत्री बने। १९७१ से १९७३ तक उन्होने स्वयं मुख्य मंत्री का पद भी सँभाला। जब वह कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी बने तो इस पद की प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी, परंतु वह इतने अधिक स्वतंत्र विचारों के आदमी थे कि उन परिस्थितियो मे बहुत दिन तक उस पद पर नही रह सके।

८. जैलसिंह का जन्म १९१६ मे एक गरीब बढई के घर मे हुआ था। उनमें आगे बढने की इतनी लगन और इतना साहस था कि वह ऊपर शिखिर तक पहुँच

निधि हैं और कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के सदस्य थे।

१३. अगर फीरोज गांधी पाँच साल भी और जिन्दा रह जाते तो उनका परिचय इन्दिरा गांधी के पति के रूप में देने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। १९६० में अड़तालीस वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हो गया। वह संसद में इतनी प्रभावशाली शक्ति बनते जा रहे थे कि जब भी वह बोलने खड़े होते थे तो सदन में एक खलबली-सी मच जाती थी। वह बहुत मस्त और हँसी-मज़ाक करने वाले आदमी थे, पर इसके साथ ही उनमें कठिन परिश्रम और ऐसा ठोस काम करने की क्षमता थी कि जब वह संसद में बड़े-बड़े व्यापारिक साम्राज्यों की काली करतूतों का भंडाफोड़ करते थे तो उनका खंडन करना असंभव होता था और मन्त्रियों तथा बड़े-बड़े अफसरों को इस्तीफा देना पड़ता था। संसद के सेन्ट्रल हाल का 'फीरोज कार्नर' हमेशा विचारोत्तेजक बहस, हँसी-मज़ाक और फिकरेबाज़ी का केन्द्र बना रहता था।

१४. यह पूरा इंटरव्यू परिशिष्ट १ के रूप में पुस्तक के अन्त में देखिये।

१५. अट्ठावन-वर्षीय पृथ्वीनाथ धर १९६१ में पी० एन० हकसर के बाद प्रधान मंत्री के मुख्य प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। पहले इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ में प्रोफ़ेसर रह चुकने के कारण उनका काम करने का ढंग हकसर जितना भड़कीला नहीं था; उनमें सत्ता का उपयोग करने की क्षमता भी बहुत कम थी। सच तो यह है कि धर के जमाने में यह पद उपयोगी तो रहा पर उसका महत्त्व कम होता गया। केवल पद का रौब था, काम करने के ढंग का नहीं।

१६. **इण्डियन एक्सप्रेस**, २९ अगस्त १९७५।

१७. पैंतालीस-वर्षीय धर्मवीर सिन्हा का जन्म (पटना के पास) बरहा नामक स्थान में हुआ था। छोटा कद, गहरा रंग और घुंघराले बाल। उनका बोलने का ढंग उनकी सूरत-शक्ल से अधिक प्रतिभाशाली है। वह बिहार के रहने वाले हैं। १९४६ में वह फार्वर्ड ब्लाक में आये और १९४७ में ही पटना जिला कमेटी के सदस्य बन गये। १९७० में वह राज्य सरकार में श्रम, सूचना तथा पर्यटन के मंत्री बने। केन्द्र में आने पर उन्होंने सूचना तथा प्रसारण-मंत्रालय में आई० के० गुजराल और वी० सी० शुक्ला दोनों ही के साथ उप-मंत्री की हैसियत से काम किया, लेकिन ऐसा नहीं हुआ कि वह आते ही सब पर छा गये हों और इस दौरान वह अज्ञात ही रहे। वह काफी क्रांतिकारी विचारों के आदमी हैं।

१८. श्रीमती ताजदार बब्बर नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी की सदस्य और समाज कल्याण विभाग की अध्यक्ष हैं। लगभग चार वर्ष तक वह डाक-तार कर्मचारी संघ की अध्यक्ष और वक्फ़ बोर्ड की सलाहकार समिति की सदस्य भी रहीं। वह लगभग पचीस वर्ष से नयी दिल्ली में रहती आयी हैं और पार्टी के कार्यक्रमों के लिए काम करती रही हैं। वह ग़रीबों के बीच दवाएँ बाँटने और गरीब बीमारों को इलाज के लिए अस्पताल में भरती कराने के लिए मशहूर हैं। उन्होंने ऐसी गरीब लड़कियों की शादी का भी बंदोबस्त कराया है जिनके माँ-बाप उनकी शादी का खर्च नहीं बर्दाश्त कर सकते थे।

१९. छत्तीस-वर्षीया अंबिका सोनी ने भारतीय युवक कांग्रेस की अध्यक्ष की हैसियत से गौरव के कुछ तूफ़ानी महीने बिताये, जब राजनीति के क्षेत्र में संजय गांधी के प्रवेश के कारण युवक कांग्रेस की चर्चा कांग्रेस से भी ज्यादा

गये और १९७२ में पंजाब के मुख्य मंत्री बने। वह सीधे तने हुए शरीर वाले काफी हट्टे-कट्टे सिख है; वह बहुत शात स्वभाव के हैं और आवश्यकता पडने पर काफी चिकनी-चुपड़ी बातें भी कर सकते है। वह उन तीन या चार मुख्य मंत्रियो में से थे जो हमेशा चढ़ते सूरज की परिक्रमा करते रहते थे; दिल्ली का हर आदेश उन्हें बहुत स्पष्ट सुनायी देता था।

९. मार्गरेट आल्वा अभी केवल पैंतीस वर्ष की हैं और इस संसद की एक सबसे अल्पवयस्क सदस्य है। मंगलौर (कर्नाटक) से कानून की परीक्षा मे सर्व-प्रथम रहकर उन्होंने स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। मार्गरेट से पहले भी उनके परिवार के लोग दिल्ली में रह चुके थे। उनकी स्वर्गीया सास वायलेट आल्वा, जिनमे अपार स्फूर्ति और उत्साह था, राजनीतिक क्षेत्र की नेता थी, और उनके ससुर भी संसद के सदस्य रह चुके थे।

इस पृष्ठभूमि के साथ मार्गरेट आल्वा ने संविधान में संशोधन के सवाल मे सक्रिय रूप से दिलचस्पी ली, और अपनी सर्वतोमुखी सजगता के कारण पार्टी के तथा संसद के काम मे उन्होंने बड़ी लगन के साथ हिस्सा लिया। उनमें हरदम जीवन का उत्साह उमड़ता रहता है।

१०. ओम मेहता के बारे मे हालांकि यह मशहूर है कि इमर्जेंसी के दौरान वह बहुत बड़े अत्याचारी थे, लेकिन देखने में वह ऐसे बिलकुल नहीं लगते। पचास वर्ष की उम्र में उनका शरीर बहुत ढीला-ढाला और स्थूल लगता है। उन्होंने संसदीय मामलों में अपनी बहुत गहरी छाप डाली है। वह अपने शात स्वभाव से लोगों का गुस्सा ठंडा कर देते हैं और उनसे अपनी बात मनवा लेते है, और अपने इसी गुण की बदौलत वह किसी भी बिल को स्वीकार कराने में सफल हो जाते है।

ओम मेहता का जन्म किश्तवार (जम्मू) में हुआ था। कुछ समय तक उन्होने कश्मीर की राजनीति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। केन्द्र की राजनीति में आने के लिए उन्हें १९६४ में राज्यसभा का सदस्य चुना गया और बाद मे उन्हे मंत्रिमंडल मे ले लिया गया। इस वर्ष मार्च में कांग्रेस सरकार का तख्ता उलटने के समय तक वह गृह-मंत्रालय में राज्य-मंत्री थे।

११. अर्जुनदास का जन्म १९३१ मे लाहौर में हुआ था। १९४५ में केवल पंद्रह वर्ष की उम्र मे वह कांग्रेस के सदस्य बने। लक्ष्मीबाई नगर में उनकी एक मोटर साइकिल मरम्मत करने की दुकान थी और बढ़ते-बढ़ते जब वह मैकैनिक बन गये तो संजय गांधी के संपर्क में आये। वहीं से उनकी क़िस्मत का सितारा चमक उठा। १९७२ मे वह मेट्रोपोलिटन कौंसिल के सदस्य बने। वह छोटे कद के, गठे हुए शरीर के, काले रंग के आदमी है और आम लोगों के साथ उनका व्यवहार बहुत उजड्ड और फूहड़ ढंग का है।

१२. राज कौशिक का जन्म १२ अप्रैल १९३९ को दिल्ली में हुआ था। अपने छात्र-जीवन में उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया। आम जनता की भलाई के लिए इन्दिरा गांधी की नीतियों का प्रचार करने के लिए उन्होंने 'विदूषक संघ' नामक राष्ट्रीय सांस्कृतिक तथा सामाजिक संस्था की स्थापना की। हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए वह राष्ट्रीय ख्याति के कवियों की सहायता से स्वतंत्रता दिवस के एक दिन पहले सब्जी मंडी में कवि-सम्मेलन का आयोजन करते हैं। समाज के कमजोर वर्गों के छात्रों में वह मुफ्त पाठ्य-पुस्तकें, दवाएं और कपड़े बांटते हैं। वह सदर क्षेत्र में कांग्रेस के विशेष प्रति-

निधि हैं और कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के सदस्य थे।

१३. अगर फीरोज़ गांधी पाँच साल भी और जिन्दा रह जाते तो उनका परिचय इन्दिरा गांधी के पति के रूप मे देने की कोई जरूरत ही नही रह जाती। १६६० में अड़तालीस वर्ष की उम्र मे उनका देहान्त हो गया। वह ससद मे इतनी प्रभावशाली शक्ति बनते जा रहे थे कि जब भी वह बोलने खड़े होते थे तो सदन में एक खलबली-सी मच जाती थी। वह बहुत मस्त और हँसी-मजाक करने वाले आदमी थे, पर इसके साथ ही उनमे कठिन परिश्रम और ऐसा ठोस काम करने की क्षमता थी कि जब वह संसद मे बड़े-बड़े व्यापारिक साम्राज्यों की काली करतूतों का भडाफोड करते थे तो उनका खंडन करना असंभव होता था और मंत्रियों तथा बड़े-बड़े अफ़सरों को इस्तीफा देना पडता था। संसद के सेन्ट्रल हाल का 'फीरोज कार्नर' हमेशा विचारोत्तेजक बहस, हँसी-मज़ाक और फिकरेबाज़ी का केन्द्र बना रहता था।

१४. यह पूरा इंटरव्यू परिशिष्ट १ के रूप मे पुस्तक के अन्त में देखिये।

१५. अट्ठावन-वर्षीय पृथ्वीनाथ धर १६६१ मे पी० एन० हकसर के बाद प्रधान मंत्री के मुख्य प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। पहले इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ में प्रोफेसर रह चुकने के कारण उनका काम करने का ढंग हकसर जितना भडकीला नही था; उनमें सत्ता का उपयोग करने की क्षमता भी बहुत कम थी। सच तो यह है कि धर के ज़माने में यह पद उपयोगी तो रहा पर उसका महत्त्व कम होता गया। केवल पद का रौब था, काम करने के ढंग का नहीं।

१६. **इण्डियन एक्सप्रेस**, २६ अगस्त १६७५।

१७. पैंतालीस-वर्षीय धर्मवीर सिन्हा का जन्म (पटना के पास) बरहा नामक स्थान में हुआ था। छोटा कद, गहरा रंग और घुँघराले बाल। उनका बोलने का ढंग उनकी सूरत-शक्ल से अधिक प्रतिभाशाली है। वह बिहार के रहने वाले हैं। १६४६ मे वह फावर्ड ब्लाक में आये और १६४७ मे ही पटना जिला कमेटी के सदस्य बन गये। १६७० मे वह राज्य सरकार में श्रम, सूचना तथा पर्यटन के मंत्री बने। केन्द्र में आने पर उन्होंने सूचना तथा प्रसारण-मंत्रालय में आई० के० गुजराल और वी० सी० शुक्ला दोनों ही के साथ उप-मंत्री की हैसियत से काम किया, लेकिन ऐसा नही हुआ कि वह आते ही सब पर छा गये हों और इस दौरान वह अज्ञात ही रहे। वह काफी क्रांतिकारी विचारों के आदमी है।

१८. श्रीमती ताजदार बब्बर नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी की सदस्य और समाज कल्याण विभाग की अध्यक्ष है। लगभग चार वर्ष तक वह डाक-तार कर्मचारी संघ की अध्यक्ष और वक्फ बोर्ड की सलाहकार समिति की सदस्य भी रही। वह लगभग पचीस वर्ष से नयी दिल्ली मे रहती आयी हैं और पार्टी के कार्यक्रमों के लिए काम करती रही हैं। वह ग़रीबो के बीच दवाएँ बाँटने और गरीब बीमारों को इलाज के लिए अस्पताल मे भरती कराने के लिए मशहूर हैं। उन्होंने ऐसी गरीब लड़कियों की शादी का भी बंदोबस्त कराया है जिनके माँ-बाप उनकी शादी का ख़र्च नहीं बर्दाश्त कर सकते थे।

१६. छत्तीस-वर्षीया अंबिका सोनी ने भारतीय युवक कांग्रेस की अध्यक्ष की हैसियत से गौरव के कुछ तूफानी महीने बिताये, जब राजनीति के क्षेत्र में संजय गांधी के प्रवेश के कारण युवक कांग्रेस की चर्चा कांग्रेस से भी ज्यादा

होने लगी थी। वह एक आई० सी० एस० अफसर की बेटी और भारतीय विदेश सेवा के एक अफसर की पत्नी हैं। उनकी पृष्ठभूमि उस भूमिका के लिए, जो उन्होंने अपने वास्ते चुनी थी, बहुत सीमाओं में जकड़ी हुई और रूढ़िवादी थी। वह बहुत अच्छी वक्ता हैं और राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने बड़े संतुलित ढंग से तथा उत्साह के साथ काम करके उन्नति की। अब वह राज्यसभा की सदस्य हैं।

२०. अजीतसिंह चड्ढा, जो अपने जीवन के चौथे दशक में हैं, पहली बार चर्चा का विषय उस समय बने जब वह १९६८-६९ में दिल्ली यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स यूनियन के प्रेसिडेंट चुने गये। १९७३ में वह दक्षिण दिल्ली कांग्रेस के अध्यक्ष बने। सत्ता से उनका सम्पर्क भी बहुत अल्पकालीन रहा। वह गोरे रंग और छोटे कद के एक बहुत ही चुस्त और मुस्तैद सिख हैं। वह संजय के साथ ही आये और उसी के साथ चले गये। चुनाव के दौरान पार्टी के खिलाफ़ काम करने के अपराध में उन्हें कांग्रेस से निकाल दिया गया।

२१. जैनेन्द्रकुमार जैन का जन्म १९३९ में अलीगढ़ में हुआ था लेकिन हर एतबार से वह दिल्ली वाले हैं। वह पत्रकार-राजनीतिज्ञ हैं और जैसा कि वह स्वयं कहते हैं, उन्हें "बड़ी-बड़ी हस्तियों से मिलने, यात्रा करने और सामाजिक कार्य" के प्रति गहरी रुचि है। वह हवाई जहाज उड़ाने तथा पर्यटन के बारे में एविएशन नामक एक मासिक पत्रिका निकालते हैं और एक प्रकाशन संस्था चलाते हैं जिसका मुख्य काम उद्योगों के बारे में डायरेक्टरियाँ छापना है। अब तक उनकी सबसे सफल योजना हिन्दी में एक सांध्य दैनिक दूरदेश निकालने की रही है। वह दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी समिति के सदस्य हैं। जैन राधारमण के दल के आदमी माने जाते थे।

२२. चौधरी हीरासिंह का जन्म नरेला में १९१६ में हुआ था और वहीं उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। १९४२ में वह नरेला ब्लाक कमेटी के अध्यक्ष चुने गये। १९५१ से १९५८ तक वह दिल्ली जिला बोर्ड के अध्यक्ष थे। १९६४ से वह दिल्ली ग्रामीण कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष रहे हैं। २६ अप्रैल १९७५ को उन्होंने दिल्ली प्रशासन में कार्यकारी पार्षद (विकास) का कार्य-भार सँभाला।

२३. इक्यावन-वर्षीय बहादुरराम टमटा उत्तर प्रदेश के पी० सी० एस० अफसर हैं जो जुलाई १९६० में भारतीय सीमा प्रशासन सेवा में ले लिये गये थे। वह दिल्ली कुछ समय के लिए कैबिनेट सेक्रेटेरियट में लाये गये थे और यहाँ काफी समय रहकर उन्होंने नेशनल डिफेंस कॉलेज की परीक्षा पास की और उसके बाद से दिल्ली की नागरिक प्रशासन की संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। वह एक प्रकार से नगरपालिका के काम-काज के विशेषज्ञ बन गये। इसलिए इमर्जेंसी के दौरान गंदी बस्तियों की सफाई के सिलसिले में उनकी सेवाओं को बहुत उपयोगी समझा गया। उन्होंने आवश्यकता से अधिक उत्साह [illegible] से डूबी। इस समय

[illegible] के प्रति उनका रुख

२४. [illegible]

अत्यन्त क्रियाशील है। आवास-मंत्रालय में, और फिर दिल्ली विकास प्राधि-करण के उपाध्यक्ष के रूप में वह कई वर्षों से दिल्ली के विकास से सम्बद्ध रहे हैं। इमर्जेंसी के दौरान उनकी विवादास्पद भूमिका में सबसे बड़ा व्यंग्य

का पहलू यह है कि उन्हें "दिल्ली के लिए मास्टर-प्लान तैयार करने तथा उसे पूरा करने में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए, विभिन्न विकास प्रायोजनाओं के निरूपण तथा क्रियान्वय में एक अग्रणी की भूमिका अदा करने के लिए, और गंदी बस्तियों की सफाई के मामले में नयी दिशाएँ उन्मुक्त करने के लिए" पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया था। अब उन्हें निर्माण तथा आवास-मंत्रालय के आधीन नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ अर्बन अफेयर्स का कार्यभार सौंपा गया है।

२५. इंदरमोहन का जन्म लाहौर मे हुआ था और इस समय वह पचपन वर्ष के हैं। १९४० मे वह ऑल-इंडिया स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन मे आये और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्डधारी सदस्य और साथ ही कांग्रेस के भी सदस्य रहे। कांग्रेसी होने के नाते उस वर्ष उन्होने कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन मे भाग लिया। १९४२ में वह गिरफ़्तार हुए। १९४७ में वह ट्रेड यूनियन संगठित करने का काम करने लगे और जब उसी वर्ष के अन्त मे शेख़ अब्दुल्ला कश्मीर के प्रधान मंत्री बने तो इंदरमोहन उनकी राजनीतिक पार्टी नेशनल कांफ्रेंस की ओर से कश्मीर में काम करने चले गये।

१९५५ के बाद से इंदरमोहन किसी भी राजनीतिक पार्टी के सदस्य नहीं रहे और उन्होंने सामाजिक कार्य का क्षेत्र अपने लिए चुना।

२६. वक़्फ मुस्लिम धर्मार्थ संस्थान हैं जो मुस्लिम बादशाहों तथा सामंतों ने शताब्दियों पहले स्थापित किये थे। इनके पास जमीनें, मकान और दुकानें होती हैं जिनकी आमदनी दरगाहों, मस्जिदों की देखभाल के लिए और गरीबों को खाना खिलाने के लिए इस्तेमाल की जाती है। भारत में वक़्फ का काम-काज केन्द्रीय मंत्रिमंडल का एक मुस्लिम मंत्री और हर राज्य में एक मुस्लिम मंत्री देखता है। केन्द्रीय मंत्री के तहत एक केन्द्रिय वक़्फ बोर्ड और हर राज्य के मंत्री के तहत एक वक़्फ बोर्ड होता है। इनकी व्यवस्था की समस्या इतनी नाज़ुक इसलिए हो जाती है कि कुल वक़्फ़सम्पत्ति का अनुमान लगभग ४०० करोड़ रुपये का लगाया जाता है। इस पर लगभग ४० करोड़ रुपये का सूद ही आना चाहिए। वास्तव मे केवल नौ लाख रुपये ही मिलते हैं। नतीजा यह है कि समाज के बहुत बड़े हिस्से का भला करने के बजाय वे केवल मुट्ठी-भर मुतवल्लियों (उपासना-गृहो की देखभाल करने वाले) की जेबें भरने के काम आता है।

२७. मीर मुश्ताक़ अहमद बासठ वर्ष के हैं, पर देखने में इससे अधिक बूढ़े लगते है। उनकी आदतों का उनके शरीरिक स्वास्थ्य पर काफी बुरा असर पड़ा है लेकिन उनका दिमाग अब भी इतना चुस्त है कि इमर्जेंसी के दौरान बच-बचकर बहुत संतुलित ढंग से चलने की वजह से वह अपनी जान बचाये रखने मे सफल रहे। १९३६ में स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन के सदस्य की हैसियत से उनकी वामपंथी विचारधारा इतनी उग्र नहीं थी कि वह खुले विरोध को उकसाती। १९४० मे वह व्यक्तिगत सत्याग्रह मे जेल गये। १९४२ मे वह एक बार फिर जेल गये। साम्प्रदायिक दंगों के जमाने मे वह दिल्ली में मजिस्ट्रेट नियुक्त किये गये। १९४७ मे वह कांग्रेस छोड़कर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में चले आये। १९६२ मे वह फिर कांग्रेस मे चले आये और दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी और १९७२ में उसके अध्यक्ष तथा मेट्रो-पोलिटन कौंसिल के चेयरमैन बने। वह बहुत धीमी चाल से चलते हैं और

उनकी आँखें उनके चश्मे के मोटे शीशों के पीछे से एक अस्पष्ट-से भाव में झाँकती रहती है और हर समय ऐसा लगता है कि वह खोये-खोये हुए हैं। इमर्जेंसी में भी उनका नजरिया उसी तरह धुँधला रहा।

२८. दानियाल लतीफी इस समय साठ वर्ष के है। उनके पूर्वज बहुत प्रतिभाशाली थे। उनके दादा स्व० जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी थे जो १८८७ में कांग्रेस के अध्यक्ष थे। जिसकी ओर से कोई लड़ने को तैयार न हो उसके लिए लड़ने का प्रबल उत्साह और जो भी मुकद्मा हाथ में लें उसे जीतने की लगन इनको उत्तराधिकार मे मिली। उन्होंने रगबी के स्कूल मे और फिर ऑक्सफर्ड में ऑनर्स स्कूल ऑफ जूरिसप्रूडेंस मे शिक्षा प्राप्त की जिसकी वजह से वह छात्रों की क्रांतिकारी राजनीति में आये और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से दूर हटने के बजाय उसकी ओर आकर्षित हुए। मोहन कुमारमंगलम और फीरोज़ गांधी के साथ मिलकर उन्होंने ब्रिटेन और आयरलैंड मे भारतीय छात्रों के संगठनों का संघ स्थापित किया। भारत लौटने पर वह अंडरग्राउंड रहे, जेल गये। फिर स्वतंत्रता आयी, उन्होंने वकालत शुरू की और इमर्जेंसी के दौरान फिर वही लाचारों के लिए लडने का सिलसिला शुरू हुआ। इसमें आश्चर्य ही क्या है कि इंदरमोहन ने उनका सहारा लिया!

२९. किशनचंद, जो अब साठ वर्ष के हैं, आई० सी० एस० अफसर हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के शासन के 'फौलादी ढाँचे' के एक आखिरी सदस्य हैं। अपने छात्र-जीवन में उन्होंने अनन्य प्रतिभा का परिचय दिया, वियना से जर्मन भाषा में डिप्लोमा लिया, लंदन से एल-एल० एम० किया और फिर कुछ दिन लंदन मे पढे। वह नयी दिल्ली मे अफ्रीकी-एशियाई ग्राम्य पुनर्निर्माण संगठन के सेक्रेटरी-जनरल थे जब उन्हे राजधानी के लेफ्टिनेंट-गवर्नर के पद पर नियुक्त किया गया और उन्हें सत्ता के केंद्र के बहुत निकट रहने के सारे जोखिमों का सामना करना पड़ा। वह भारी डील-डौल के आदमी है, चश्मा लगाते हैं, लेकिन देखने से उनमें दंभ बिलकुल नही मालूम होता। वह अपनी जी-हुजूरी को भी कोई नया रूप नही दे पाये।

३०. सुभद्रा जोशी (विवाह से पहले सुभद्रा दत्त) १९१९ में बल्लर (मध्य प्रदेश) में पैदा हुई थी और उन्होने लाहौर के फॉर्मन क्रिश्चियन कॉलेज मे शिक्षा पायी। १९४८ से बी० डी० जोशी से उनका विवाह हुआ। १९५२ में वह ३३ वर्ष की अवस्था मे भारत की पहली लोकसभा की सदस्य चुनी गयी और उसके बाद १९५७, १९६२ और १९७१ मे फिर चुनी जाती रही। वामपंथी राजनीति और धर्म-निरपेक्षता के प्रति उन्हें गहरा लगाव है। उन्होंने मुसलमानों के बीच बहुत काम किया है और देश के बँटवारे के बाद दिल्ली के साम्प्रदायिक दंगों के दौरान उन्होंने इन्दिरा गांधी के साथ काम करके इन लोगो से अपने संपर्क स्थापित किये। बहुत लगन के साथ काम करने के कारण सभी लोग उन्हे मानते है। इमर्जेंसी के दौरान वह अनेक अंतर्विरोधो का शिकार हो गयीं।

३१. जामा मस्जिद के इमाम और उनके बेटे को केंद्रीय वक्फ बोर्ड से वेतन मिलता है। इस्लाम में वंशानुगत उत्तराधिकार नही माना जाता है। बिलकुल शुरू में भी खलीफा चुने ही जाते थे। जामा मस्जिद के आस-पास की दुकानें गिरायी जाने से पहले उनका किराया इमाम को मिलता था। फरवरी १९७५ में कुछ झगड़ा हुआ था; नायब इमाम (बेटा) बाप की जगह इमाम

बन बैठा और उसने और मांगों के अतिरिक्त अपना वेतन बढ़वाने की मांग लेकर वक्फ बोर्ड की मीटिंग के खिलाफ प्रदर्शन का नेतृत्व किया। मारपीट हुई। इमाम को गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से निकलने पर वह पूरी तरह राजनीति में डूब गये। सरकार और कांग्रेस के खिलाफ उन्होंने जो जोरदार प्रवचन किये उनकी वजह से, इमाम के प्रकट सनकीपन के बावजूद, मुसलमानों के बीच कांग्रेस के खिलाफ गुस्सा भड़काने में बहुत मदद मिली। वह नौजवान और हट्टे-कट्टे हैं, लंबी दाढ़ी रखते हैं और ढीला-ढाला चोगा पहनते हैं; वह सुनने वालों के मन में अपनी बात भले ही न बिठा पायें पर उन्हें भावनाओं के प्रवाह में बहा जरूर ले जाते हैं।

३२. यूनुस प्रधान मंत्री के विशेष दूत, एशिया व्यापार मेले के प्राधिकरण के अध्यक्ष, गुट-निरपेक्ष देशों की समाचार एजेंसियों के सामूहिक संगठन की समन्वय समिति के अध्यक्ष, 'समाचार' के डायरेक्टर, असोशिएटेड जर्नल्स लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर, इंडियन कम्युनिकेशन सेंटर के डायरेक्टर, स्टील अथॉरिटी, इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज और जनरल इंश्योरेंस के डायरेक्टर और बोर्ड ऑफ ट्रेड तथा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष रहे।

३३. शाहनवाज खाँ का जीवनवृत्त बहुत असाधारण रहा है। उनका जन्म १९१४ में माटोर में हुआ था और उन्होंने देहरादून के प्रिंस ऑफ वेल्स रॉयल इंडियन मिलिटरी कॉलेज में शिक्षा पायी। १९३६ में वह फौज में अफसर बने, लेकिन बाद में जब क्रांतिकारी नेता सुभाषचंद्र बोस ने अँग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए आजाद हिंद फौज बनायी तो वह उसमें शामिल हो गये। शाहनवाज आजाद हिंद फौज में मेजर-जनरल थे। जब अँग्रेजों ने उन पर और उनके साथियों पर लाल किले में मशहूर मुकद्दमा चलाया तो वह लगभग फाँसी के तख्ते तक जाकर लौट आये। वह इतने कोमल स्वभाव के हैं कि उनकी आवाज भी बहुत मृदु गहराइयों में खोकर रह जाती है। वह केंद्रीय खाद्य तथा कृषि-मंत्रालय में राज्य-मंत्री थे और वक्फ का काम भी देखते थे।

३४. डी० डी० ए० ने १ सितंबर १९६२ को **दिल्ली विकास अधिनियम** के अंतर्गत दिल्ली के लिए एक मास्टर प्लान (१९६२-८१) तैयार किया था। वर्षों के दौरान, विशेष रूप से १९४७ के बाद में जामा मस्जिद के आस-पास के इलाके की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही थी। जामा मस्जिद की पत्थर की सीढ़ियों पर और उसके आस-पास के इलाके में सैकड़ों कबाड़ियों की दुकानें कायम हो गयी थीं और खोमचे वाले बैठने लगे थे। मस्जिद के पूर्वी ओर जो कबाड़ियों की दुकानें थीं उन्हें डी० डी०ए० ने साफ करवाकर वहाँ मुगल ढंग का एक कई स्तरों वाला बाग लगवाया। लेकिन जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर और उसके आस-पास जो ६०० लोग अपनी दुकानें लगाये बैठे थे उन्हें हटाना एक टेढ़ी समस्या बन गया था। उनको वहाँ से हटाकर पास ही पाईवालान के इलाके में बसाने की योजना शाहजहानाबाद के पुनर्निर्माण के कार्यक्रम के एक अभिन्न अंग के रूप में तैयार की गयी थी। पंडित नेहरू और मौलाना आजाद भी इस योजना से सहमत थे, लेकिन संजय ने इसे देखते ही रद्द कर दिया।

३५. शेख अब्दुल्ला कश्मीर के राजनीतिक तूफानों का केन्द्र रहे हैं, और उनके

जीवन के उतार-चढ़ाव ही वस्तुतः केंद्र के साथ कश्मीर के संबंधों का निर्धारण करते हैं। लंबा कद, रौबदार डीलडौल, लहजा कुछ अक्खड़ पर स्वभाव से बहुत भावुक, वह गांधी और नेहरू के मित्र थे। १६४७ के बाद भारत के साथ कश्मीर के संबंधों के सवाल के बारे में उनके रवैये के कारण उनके बारे में कुछ सदेह उत्पन्न हो गये। इसलिए १६५३ मे उन्हें जेल में बंद कर दिया गया। वह एक बार फिर अपनी प्रिय मातृभूमि के मुख्य मंत्री हैं। शेख़ साहब कहते हैं, "मुझे तो बस कश्मीर से मतलब है।"

३६. जवाहरलाल नेहरू।

३७. मौलाना अबुल कलाम आजाद भी नेहरू के साथी थे। उनका संबंध उस युग से था जो भारत की अधिकाश उदीयमान पीढ़ियों के लिए धीरे-धीरे अतीत की एक स्मृति मात्र बनकर रह गयी है। वह इतने प्रभावशाली वक्ता थे कि उन्हें इसके लिए हमेशा याद किया जायेगा। स्वतंत्रता से पहले के भारत में वह कांग्रेस के अध्यक्ष और १६४७ के बाद केंद्रीय सरकार में शिक्षा-मंत्री रहे। वह एकातप्रिय विद्वान भी थे और राजनेता भी। अपनी पुस्तक **इंडिया विंस फ्रीडम** के परिशिष्ट के रूप में वह कुछ अप्रकाशित दस्तावेज भारत के आधुनिक युग की विवादग्रस्त प्रवृत्तियों के बारे मे और उन्हें जन्म देने वाले लोगों के बारे में अपने विचारों के विवरण की तरह बाद मे पढ़ने के लिए छोड़ गये हैं। उनका देहात १६५८ में हुआ।

३८. ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ां भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सरहदी गांधी के नाम से भी जाने जाते थे, क्योंकि उन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के ज़रा-ज़रा-सी बात पर गोली चला देने वाले अपने कबायली भाइयों के बीच अहिंसा का सिद्धांत बड़ी सख़्ती के साथ लागू कर दिया था। अ-सांप्रदायिक राजनीति के क्षेत्र में उनकी यह सफलता कमाल की थी; उनकी मृदुभाषी प्रभाव-सत्ता ने वस्तुतः मानव-स्वभाव पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। बादशाह ख़ां यह समझते थे कि देश का बँटवारा विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच एकता के उनके ध्येय के प्रति विश्वासघात है और उन्होंने यह घोषणा कर दी कि उनके लोगों को "भेड़ियों के आगे डाल दिया गया था।" वह अपनी मातृभूमि पाकिस्तान मे भी अभी तक अन्याय और बेइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई चला रहे हैं। इसी वजह से वह जेल और बीमारी, नज़रबंदी और आज़ादी के बीच अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

३६. स्वर्गीय सज्जाद ज़हीर, प्रख्यात उर्दू लेखक और कम्युनिस्ट, १६४८-४६ में पाकिस्तान के प्रधान मंत्री लियाकत अली ख़ां की हत्या के प्रसिद्ध रावलपिंडी षड्यंत्र कांड में एक अभियुक्त थे।

अरुणा आसफ़ अली, जो अब साठ की उम्र पार कर चुकी हैं, बहुत कट्टर कांग्रेसी हैं जो जयप्रकाश नारायण के बहुत निकट आयीं और अंत में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुईं। उनके पति, कांग्रेसी नेता आसफ अली, अमरीका में भारत के पहले राजदूत थे।

मज़हर अविभाजित पंजाब के मुख्य मंत्री सर सिकंदर हयात ख़ां तिवाना के भतीजे थे। वह **पाकिस्तान टाइम्स** के संपादक भी रहे थे।

रेदिन चन्दर (विवाह से पहले बरूवा) लाहौर में स्टूडेंट्स फेडरेशन की और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य थी। वह वामपंथी प्रकाशन-समूह के **लिंक** साप्ताहिक और **पेट्रियट** दैनिक से अलग हो जाने वाले लोगों

के साप्ताहिक न्यूबॅव से संबंधित है। वह विश्व शांति तथा एकजुटता संगठन की अध्यक्ष हैं।

रमेश चन्दर के पिता आई० सी० एस० अफसर थे, पर वह खुद शासन-सत्ता की व्यवस्था से विमुख होकर पक्के कम्युनिस्ट बन गये। रमेश चन्दर इस समय विश्व शांति परिषद के सेक्रेटरी-जनरल हैं।

रेणु चक्रवर्ती (विवाह से पहले राय) प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता और नेहरू के साथी स्वर्गीय डॉ० विधानचंद्र राय की भतीजी हैं। कैंब्रिज में उन्होंने शिक्षा पायी और फिर कम्युनिस्ट बनी और लोकसभा की सदस्य चुनी गयी। वह पहले कॉलेज में पढ़ाती थी और बाद में बहुत जोशीली क्रांतिकारी बन गयी।

निखिल चक्रवर्ती मेनस्ट्रीम के संपादक हैं।

पार्वती कृष्णन् संसद की कम्युनिस्ट सदस्य है। मोहन कुमारमंगलम उनके भाई थे और उनके पिता डॉ० सुब्बारायन नेहरू की सरकार में श्रम-मंत्री थे।

४०. उनहत्तर-वर्षीय डॉ० जैनुल-आबेदीन अहमद क्रिकेट के बहुत प्रेमी हैं। उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन कांग्रेस से आरंभ किया और १९३७-४० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे। १९४३ में वह उत्तर प्रदेश में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे और १९५१ तक उसकी केंद्रीय समिति के सदस्य बन चुके थे। १९७३ में वह अखिल-भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष बने। वह संसद के सदस्य हैं और राजनीतिक विषयों पर लिखने के प्रति रुचि रखते हैं।

४१. सत्तर-वर्षीय हीरेन मुखर्जी भारतीय राजनीति में अपने-आप में एक संस्था हैं। उन्होंने ऑक्सफर्ड और लिंकस इन (लंदन) में शिक्षा पायी, फिर स्वयं पढ़ाने लगे, कांग्रेस में आये, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में रहे और धीरे-धीरे अधिक उग्रपंथी राजनीतिक दर्शन की ओर आकर्षित हुए और कम्युनिस्ट बने। एक बार उन्होंने कहा था, "मैं मुहम्मद यूनुस को कई वर्षों से जानता हूँ। एक दोस्त की हैसियत से मैं उसकी कद्र करता हूँ। देशभक्ति उनकी नस-नस में समायी हुई है, उन्हें अपने देश पर गर्व है और वह आत्म-सम्मान की भावना से ओत-प्रोत हैं।"

४२. बासठ-वर्षीय ज्योति बसु १९४० में भारत लौटने से पहले ही ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे। १९४८ में वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सेक्रेटेरियट में एक सेक्रेटरी बन चुके थे, और १९६४ में जब कम्युनिस्ट पार्टी दो टुकड़ों में बँट गयी तो वह मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ आ गये। १९६९ में पश्चिमी बंगाल में जब पहली बार गैर-कांग्रेसी संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी तो वह उसमें उप-मुख्य मंत्री और गृह-मंत्री थे। १९७७ में वह पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार के मुख्य मंत्री बने।

४३. बासठ-वर्षीय राजेश्वर राव १९६४ से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल-सेक्रेटरी हैं।

४४. सेक्यूलर डेमोक्रेसी, ११ अप्रैल १९७७।

४५. हरचरनसिंह जोश गोरे रंग, लंबे क़द के एक खूबसूरत तैंतीस-वर्षीय वकील और युवक नेता हैं। इस दिशा में उनकी रुचि छात्र संघ की राजनीति से

आरम्भ हुई। १९६९ मे उन्होंने हंगरी मे अंतर्राष्ट्रीय युवक कांग्रेस में
भारतीय युवक कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया था।
१९७४ मे वह अखिल-भारतीय युवक कांग्रेस के जनरल-सेक्रेटरी बने।
१९७५ मे संजय की शुरू की हुई मुहिम के अनुसार उन्होंने परिवार नियोजन
कैंप लगाये लेकिन उनका कहना है कि इनके सिलसिले मे उनका रवया
'प्रशासनात्मक' नही बल्कि 'राजनीतिक' था। माच १९७७ के चुनाव
मे कांग्रेस की हार का लेखा-जोखा करने के लिए वह मध्य प्रदेश के लिए
पर्यवेक्षक नियुक्त किये गये थे।

४६. के० रघुरमैया का जन्म १९१२ मे आंध्र प्रदेश के सगमजागरलामुडी नामक
स्थान मे हुआ था। वह श्रीमती गांधी की सरकार मे ससदीय मामलों
और निर्माण तथा आवास के केंद्रीय मंत्री रहे लेकिन इन्दिरा-विरोधी प्रवल
लहर भी १९७७ के चुनाव मे उनके जीतने में बाधक नहीं हो सकी और वह
लगातार पाँचवी बार लोकसभा मे चुनकर आये। कॉलेज के दिनो मे वह
एक प्रभावशाली वक्ता के रूप मे स्वर्ण-पदक जीत चुके थे। उन्होंने मिडिल
टेंपुल (लदन) मे वकालत पढी, फिर सरकारी अफसर वने ओर ट्रेड-यूनियन
नेता रहे। अत मे वह राजनीति मे आये और १९५७ में उन्होंने नेहरू के
जमाने में रक्षा उप-मंत्री की हैसियत से अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ
किया और अतिम कांग्रेस सरकार तक विभिन्न मत्रालयो में मत्री रहे।
वह वडे गर्व के साथ दावा करते थे कि वह नेहरू-परिवार की दो पीढियो
की सेवा कर चुके हैं और तीसरी पीढी की—संजय की—सेवा करने को
तैयार हैं।

४७. भूरी आँखों, गोल चेहरे और शिष्ट आचरण वाले सत्तावन-वर्षीय प्रकाशचंद्र
सेठी देखने में इतनी उम्र के नही लगते। केवल अपने दृढ संकल्प और साहस
के बल पर वह मुख्यत: केंद्र की राजनीति में उन्नति करते-करते शिखर तक
पहुँच गये। उनका जन्म राजस्थान में हुआ था पर वह मध्यप्रदेश के रहने
वाले हैं। १९६१ में पहली वार वह राज्यसभा के सदस्य चुने गये, १९६७-
७० में लोकसभा के सदस्य और इस्पात तथा खान-मत्रालय म उप-मत्री
रहे। उसके बाद से वह लगातर विभिन्न मंत्रालयों में किसी-न-किसी मंत्रि-
पद पर रहे। १९७२-७५ में वह मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री भी रहे, उसके
बाद फिर पेट्रोलियम तथा रसायन-मंत्री की हैसियत से केंद्र में लौट आये,
और ए० आई० सी० सी०के कोषाध्यक्ष बने। इमर्जेंसी की परिस्थितियों के
कारण उन पर काम का बोझ और बढ गया था।

४८. बत्तीस-वर्षीय प्रियरंजन दासमुंशी टैगोर के गीत गाते हैं और कविता लिखते
हैं, जो बंगाल की क्रांतिकारी राजनीति की कार्य-शैली के सर्वथा अनुकूल है।
मुंशी बहुत जोशीले किस्म के कांग्रेसी हैं, जो सिद्धार्थशंकर रे के खिलाफ थे,
लेकिन बाद में जब उन्होंने संजय गांधी से टक्कर ली तो वह उनके साथ हो
गये।

४९. वायलार रवि का कहना है कि उन्हे पढने और राजनीतिक बहस करने का
शौक है। ये दोनों ही बातें उनके व्यवसाय का भी अंग है। उनकी उम्र इस
समय चालीस वर्ष की है; वह केरल में वकालत करते है और उन्होंने अपना
ध्यान युवकों की राजनीति पर केंद्रित किया है। वह केरल छात्र संघ के
संस्थापक, जनरल-सेक्रेटरी और अध्यक्ष, केरल युवक कांग्रेस के संचालक,

भारतीय युवक कांग्रेस के सेक्रेटरी और ए० आई० सी० सी० के सदस्य रह चुके हैं।

५०. ए० आई० सी० सी० के महिला विभाग में लोग वर्षों तक मुकुल बनर्जी के चेहरे से परिचित रहे, जिस हर वह बहुत-सा पाउडर और माथे पर बड़ी-सी बिंदी लगाती थी। वह इन्दिरा गांधी की वफ़ादार प्रशंसक और अच्छी प्रशासक थी, लेकिन १९७१ में इन्दिरा-लहर ने उन्हे लोकसभा एक ऐसी चहल-पहल के बीच पहुँचा दिया जिसकी उन्हे आदत नही थी। मुकुल का जन्म १९२५ में बनारस में हुआ था।

५१. तेतालीस-वर्षीय गुंडू राव का जन्म मर्कारा (कर्नाटक) में हुआ था; वह कॉफी के बागान के बहुत समृद्ध मालिक हैं। कर्नाटक प्रदेश युवक कांग्रेस के अध्यक्ष बनने से पहले वह बारह वर्ष तक मर्कारा म्युनिसिपल बोर्ड के प्रेसिडेंट रह चुके थे। १९७४ में वह कर्नाटक सरकार में सूचना विभाग के राज्य-मंत्री बने और १९७७ में आवास-मंत्री।

५२. रुखसाना सुल्ताना का असली नाम मीनू बिंबिट है। उनकी माँ प्रसिद्ध अभिनेत्री बेगम पारा की बहन हैं, और उनके पिता सिख हैं। उनका विवाह शिवेन्द्रसिंह के साथ हुआ था और उनके एक बारह वर्ष की बेटी है। वह पाकिस्तान के मौजूदा एटार्नी-जनरल पीरजादा की भाजी है।

५३. नवीनचन्द्र चावला का जीवनवृत्त बहुत छोटा है और इतना सुखकर भी नही है। उनका जन्म १९४५ में हुआ था और १९६९ में वह आई० ए० एस० अफसर बने। १९७१ से वह दिल्ली में सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट, जुडीशियल कलेक्टरी के आफिसर इंचार्ज और एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट रहे। १९७४ में वह दिल्ली के लेफ्टिनेंट-गवर्नर के स्पेशल असिस्टेंट नियुक्त किये गये। संजय के बचपन के दोस्त होने के नाते इमर्जेंसी के दौरान वह आगे आ गये और उन्होंने इतनी सक्रिय भूमिका अदा की कि लेफ्टिनेंट-गवर्नर को भी पीछे छोड़ दिया। निजी तौर पर वह बहुत शिष्ट-सभ्य नौजवान आदमी हैं—छोटा कद, गोरा रंग और खूबसूरत।

५४. सरसठ-वर्षीय सी० सुब्रह्मण्यम के जीवन की अब तक की सफलताओं का विवरण एक अत्यन्त प्रतिष्ठित राजनीतिक जीवन का द्योतक है। अपने छात्र-जीवन के समय से ही उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और तीन बार जेल गये—१९३२ में, १९४१ में और १९४२ मे अँग्रेजों के खिलाफ 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान। वह १९४६ मे कांस्टीच्यूएंट असेंबली के सदस्य थे और १९५२ तक अंतरिम संसद के सदस्य रहे, जिसके बाद वह मद्रास की राजनीति में कूद पड़े और वहाँ के वित्त, शिक्षा तथा कानून-मंत्री रहे। १९६२ मे वह लोकसभा के सदस्य चुने गये। उस समय से वह विभिन्न महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों के मंत्री रहे। कांग्रेस का पतन होने के समय वह इन्दिरा गांधी की सरकार मे केंद्रीय वित्त-मंत्री थे। वह नयी लहर का शिकार होने से बच गये। वह छोटे कद और काले रंग के बहुत गंभीर व्यक्ति है और हमेशा सफेद धोती पहनते हैं; जब किसी को उनसे इसकी आशा भी नही होती, सुब्रह्मण्यम अचानक मुसकरा उठते है।

५५. बयालीस-वर्षीय पत्रकार और अध्यापक प्रणव मुखर्जी केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था मे ही बाँगला कांग्रेस के सेक्रेटरी बन गये थे, जिसे कांग्रेस से अलग

हो जाने वाले लोगों ने एक दल के रूप में स्थापित किया था। उन्होंने अकाल-पीड़ितों की सहायता, निरक्षरता दूर करने और समाज-सुधार के अन्य कामों को संगठित करने में सक्रिय रूप से भाग लिया है। उनका जन्म पश्चिम बंगाल के बीरभूम नामक स्थान में हुआ था पर दिल्ली के प्रति उन्हें बहुत आकर्षण था। १९७२-७३ में वह कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये और अंत में १९७३ में औद्योगिक विकास के केंद्रीय उप-मंत्री बने। उन्हें बागवानी का शौक है, और शायद इसीलिए उन्होंने इमर्जेंसी के दौरान बड़े उत्साह के साथ उन लोगों के बारे में खोद-खोदकर जानकारी प्राप्त की जो वित्तीय अपराध करके बच निकले थे।

५६. कर्नारा (कर्नाटक) के पचपन-वर्षीय टी० ए० पै १९५२ में कांग्रेस में आये, और विभिन्न विषयों से संबंधित बोर्डों तथा समितियों में कई पदों पर रहने के बाद वह सिंडीकेट बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर और चेयरमैन बने। उन्होंने इसे एक सर्वाधिक प्रगतिशील, सूझ-बूझवाला बैंक संगठन बना देने में बहुत शानदार काम किया। वह मद्रास और मैसूर दोनों ही की विधान-सभाओं के सदस्य रहे और सबसे पहले १९७२ में रेल-मंत्री की हैसियत से केंद्रीय मंत्रिमंडल में आये और उसके बाद १९७३ में भारी उद्योगों के मंत्री बने। इसी हैसियत से संजय के व्यापारिक हितों से उनका टकराव हुआ।

५७. सफेद बालों वाले इकहत्तर-वर्षीय वाई० एस० पारमार का व्यक्तित्व देखने से ही बहुत प्रतिष्ठित लगता है। इन्दिरा गांधी के नये रूप के अधिक अनुकूल नेताओं को लाने की मुहिम में १९७६ में अपने पद से हटाये जाने से पहले वह लगातार चार बार पूरी अवधि के लिए हिमाचल प्रदेश के मुख्य मंत्री रह चुके थे। पारमार की सूरत-शक्ल से या उनके आचरण से यह लगता ही नहीं कि वह किसी को कोई आघात पहुँचा सकते हैं, परंतु अपने दृढ़ चरित्र का परिचय देते हुए उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था में (अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद) सामाजिक क्षेत्रों में बहुत शोर मचाये जाने के बावजूद अपने मंत्रिमंडल की एक मंत्री सत्यवती डांग के साथ दूसरा विवाह किया।

५८. एंटोनियो डि'ओलिविएरा सालाज़ार (१८८९-१९७०) पुर्तगाल के डिक्टेटर थे। वह १९३२ में प्रधान मंत्री बने और १९३३ में एक नया संविधान बनाया गया। उन्होंने पुर्तगाल को स्थायित्व प्रदान किया, लेकिन अफ्रीका तथा भारत में पुर्तगाल के उपनिवेशों की राष्ट्रवाद की लहर के आगे सर झुकाने से इंकार किया। इतने दीर्घकाल तक अपने निरंकुश शासन के कारण वह लौह डिक्टेटरशिप का प्रतीक बन गये।

४. चाँद का अँधेरा चेहरा

जून १६७६ में एक दिन बंगलौर के जेल में दृढ़ संकल्पवाला एक बूढ़ा आदमी आया। वह भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष लालकृष्ण अडवाणी[1] से मिलना चाहता था, जो इमर्जेंसी लागू होने के उस मनहूस दिन से ही सौ दूसरे नज़रबंद कैदियों के साथ उस जेल में बंद थे। जब अडवाणी उसके सामने आये तो उसने देखा कि लंबे कद और छरहरे बदन का एक गोरा सिंधी उसके सामने खड़ा है जो देखने से ही बहुत प्रतिष्ठित लगता था—सुडौल चेहरा, कतरी हुई घनी मूँछें और शांत भाव से बोलना जिससे अंदर की किसी बात का पता नहीं चलता था।

"कहिये ?" अडवाणी ने मुस्करा कर पूछा।

"मैं पैंसठ साल का हो चुका हूँ," वह बूढ़ा आदमी बहुत उत्तेजित स्वर में बोलने लगा। "वह जो कुछ कर रही है उसे अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं जो कुछ अपने जीवन में करना चाहता था सब कर चुका हूँ। मुझे अब और किसी चीज़ के लिए जीने की लालसा नहीं है। आप मुझे बताइये कि मुझे क्या करना है। मैं अपनी जान तक देने को तैयार हूँ। मैं जाकर उनको गोली मार सकता हूँ...!"

"नहीं," अडवाणी ने कहा।

लेकिन जेलों में जो सामान्य कार्यकर्ता थे वे अधीर होते जा रहे थे। उनमें यह भावना बढ़ती जा रही थी कि जेल के अंदर जो नेता हैं वे निश्चिंत होते जा रहे हैं और अगली चाल के लिए उनके पास कोई योजनाएँ नहीं हैं।

"ऐसा लगता है कि आप यह सोचते हैं कि अब कुछ करने की ज़रूरत नहीं रह गयी है," जेल में अडवाणी के साथियों ने उनसे शिकायत की।

अडवाणी ने सोचा कि आज तक किसी भी निरंकुश शासन को हिंसा के बल पर नहीं उलटा गया। इसके अलावा और कोई रास्ता ही नहीं था कि जनता के विद्रोह कर उठने का इंतज़ार किया जाये।

"उस वक़्त इन्दिरा गांधी के खिलाफ़ ऐसा कोई गुस्सा नहीं था। क्या आप समझते हैं कि उस वक़्त, या बाद में किसी तरह फिर अगर वह सत्ता अपने हाथ में ले लेती, उनकी हत्या की जा सकती थी ?" मैंने पूछा।

"वह जिस हद तक पहुँच चुकी थी, उसे देखते हुए शायद उनकी हत्या हो सकती थी—अगर कोई दूसरा देश होता तो। लेकिन भारत में नहीं। भारत बहुत बड़ा देश है और यहाँ के लोगों के स्वभाव में यह बात नहीं है; वरना यह

काम यहाँ बहुत पहले हो चुका होता। इसके अलावा जो राजनीतिक शक्तियाँ उनका विरोध कर रही थीं उनके नेता भी इस तरह की बातों के खिलाफ हैं। वे इस तरह की हरकतों को ठीक नही समझते। शांति से उन्हें बहुत गहरा लगाव है।"

"फिर भी महात्मा गांधी की हत्या हुई ही।"

"वह देश के बँटवारे के फौरन बाद का जमाना था, जब पूरे देश में गुस्से की आग भड़क उठी थी। संगठित विपक्ष, जैसे आज की संगठित शक्तियाँ हैं, राज-नीतिक समस्याओं को इस तरह हल करने के विरुद्ध होता है। लेकिन वह सभी डिक्टेटरों की तरह हमेशा यह बात कहती रही है या महसूस करती रही हैं। उन्होंने हम लोगों पर सीधा आरोप लगाया है। उन्होंने कहा कि जनसंघ मेरी हत्या करने की योजना बना रहा है। यह बहुत पहले की बात है। फिर भी हमने महसूस किया कि प्रधान मंत्री जैसे जिम्मेदार आदमी को इस तरह का आरोप नहीं लगाना चाहिए। इसलिए हम लोग, हममें से कुछ लोग, इस सवाल के बारे में उनसे मिले। वह कुछ कहने को तैयार नही थी। वह न इस आरोप की पुष्टि करने के लिए कोई ठोस तथ्य बताने को तैयार थी और न ही उसे वापस लेना चाहती थी। अगर कोई चाहे तो इस तरह की स्थिति से बच निकलने के कई रास्ते हो सकते हैं। आप तो जानती ही हैं कि आप यह कह सकती हैं कि आपकी बात को गलत ढंग से पेश किया गया है, या यह कि दो अलग-अलग बयान एक साथ रख दिये गये थे जिसकी वजह से गलतफहमी पैदा हो गयी। लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। मालूम नहीं, शायद वह सचमुच इस पर विश्वास करती थी।"

लेकिन जनवरी १९७५ में एक बम-विस्फोट में ललितनारायण मिश्रा की हत्या, उसके कुछ ही समय बाद चीफ जस्टिस ए० एन० रे की हत्या की कोशिश, और २५ जून के उस निर्णायक दिन अपनी गिरफ्तारी से कुछ ही घंटे पहले मोरारजी ने जो कुछ कहा था उसे देखते हुए यह मानना ही पड़ता है कि हत्या का कुछ वातावरण तो था और प्रधान मंत्री के दिमाग में भी यह बात बैठ गयी थी। मोरारजी ने इटली के अखबार ल'योरोपियो के संवाददाता से कहा था, "अगर सत्ता किसी मर्द के हाथों में हो तो उसे हटाना उतना मुश्किल नहीं है जितना उस औरत को हटाना जिसके हाथ में सत्ता हो।" अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे जो अहिंसात्मक सत्याग्रह संगठित करने की योजना बना रहे थे उसका मोरारजी ने बहुत सजीव चित्रण किया, लेकिन वह अपना गुस्सा नहीं छिपा सके, "हम लोग उनसे छुटकारा पाना चाहते हैं, हम उन्हें इस्तीफा देने पर मजबूर कर देना चाहते हैं।...हम लोग धरना देकर बैठ जायेंगे और उनके इस्तीफे की माँग करेंगे, दिन-रात शोर मचायेंगे। चाहे पुलिस हमें गिरफ्तार कर ले, या हमारे ऊपर डंडे बरसाये, या हमें मार ही क्यों न डाले। आखिर कितने लोगों को मार डालेंगे ? और फिर वे इतनी लाशों का क्या करेंगे ? इसे श्रीमती गांधी तभी रोक सकती हैं जब वह आज रात ही हम सबका सफाया कर दें।" मोरारजी देसाई ने आगे चल-कर यह भी स्वीकार किया कि शायद कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सत्याग्रह के बजाय अधिक हिंसात्मक तरीके अपनाने का इरादा रखते हैं। उन्होंने एक घटना का उदाहरण भी दिया जो बिलकुल वैसी ही घटना थी जैसी अडवाणी के साथ देश आयी थी। लेकिन १९७६ में जो बूढ़ा आदमी अडवाणी से बंगलौर में मिला था वह भारत की राजधानी से एक हजार मील दूर दक्षिण का रहने वाला था, जबकि जिस आदमी का ब्योरा मोरारजी देसाई ने दिया वह उत्तर का रहने वाला एक

हट्टा-कट्टा सिख था, जिसका गुस्सा बहुत पहले १९७३ मे ही भडक उठा था। "वह मेरे पास आया और मुझसे बोला, 'मैं बूढा हो चुका हूँ, साठ पार कर चुका हूँ; मेरी ज़िंदगी तो खत्म हो चुकी है। मरने से पहले मैं अपने देश की एक सेवा करना चाहता हूँ। इससे पहले कि वह औरत भारत को पूरी तरह तबाह कर दे मैं उसे मार डालूँगा। लेकिन इसके लिए मुझे आपकी मंजूरी चाहिए, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि जब मैं उसे मार डालूँ तो उसके बाद कोई इंसाफ़से काम लेने वाला आदमी उसकी जगह ले।'" मोरारजी ने उस घटना को दोहराते हुए कहा, "घटो मैं उसे समझाता रहा कि उसे इस काम के लिए मेरी मंज़ूरी कभी नहीं मिल सकती, कि मैं समस्या को इस तरह हल करने पर हमेशा एतराज करूँगा, कि मैं हिंसा का, यानी हत्या का, हमेशा विरोध करता रहूँगा। वह बराबर अपना सिर हिलाता रहा और यही दोहराता रहा, 'बस मुझे आप इसकी इजाज़त-भर दे दीजिये।' मैं उम्मीद करता हूँ कि कोई भी कभी ऐसा नही करेगा," मोरारजी ने कहा, और फिर इसके साथ ही यह भी कहा, "लेकिन अगर किसी ने यह कर ही दिया तो मैं उसे कैसे रोक लूँगा?"

मोरारजी और दूसरे लोगों के जेल मे ठूँस दिये जाने के मुश्किल से तीन ही हफ्ते बाद श्रीमती गाधी ने कहा, जैसा कि मोरारजी को उम्मीद थी कि वह कहेगी, कि "लोकतंत्र का बिलकुल त्याग नही दिया गया है, बस वह कुछ समय के लिए पटरी से उतर गया है," हालांकि उन्होंने इसके लिए अपनी किसी हरकत को नही बल्कि विपक्ष को दोषी ठहराया। इसके कुछ ही समय बाद उन्होंने कहा कि "राष्ट्र का महत्व लोकतंत्र से अधिक है।" सच तो यह है कि **नेशनल हेराल्ड** ने एक संपादकीय लिखकर तजानिया जैसे अफ्रीकी देशो मे एक पार्टी की प्रणाली की प्रशंसा करते हुए कहा कि यह प्रणाली बहु-दलीय प्रणाली से किसी भी प्रकार कम सशक्त नही होती। **नेशनल हेराल्ड** जवाहरलाल नेहरू का स्थापित किया हुआ दैनिक अखबार है और उसे इन्दिरा गाधी का भी संरक्षण प्राप्त रहा है। इसलिए यह माना जा सकता है कि वह उनके विचारो को व्यक्त करता है। इस संपादकीय मे कहा गया था, "जरूरी नहीं है कि वेस्टमिनिस्टर प्रणाली ही सबसे अच्छी प्रणाली हो, और कुछ अफ्रीकी राज्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि लोकतत्र का बाहरी ढांचा कैसा भी हो, जनता की आवाज का हमेशा बोलबाला रहेगा।... एक मजबूत केंद्रीय सरकार की जरूरत पर जोर देकर प्रधान मत्री ने भारतीय लोकतंत्र की सशक्तता की ओर संकेत किया है। कमजोर केंद्रीय शासन से देश की एकता, अखंडता और स्वयं स्वतंत्रता के अस्तित्व के लिए भी खतरा पैदा हो जाता है। उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण सवाल उठाया है। अगर देश की स्वतंत्रता ही नही बाकी रहेगी, तो लोकतंत्र कैसे बाकी रह सकेगा?"

यही **नेशनल हेराल्ड** २५ अगस्त तक बडी ईमानदारी के साथ यह कहने लगा था कि "इधर पिछले कुछ दिनो मे प्रधान मंत्री ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि इस देश में एक पार्टी की प्रणाली स्थापित करने का कोई प्रयत्न नही किया जायेगा और यह कि वह नयी संविधान सभा बुलाने या नया संविधान बनाने की बात नही सोच रही हैं।...जहाँ तक पार्टी प्रणाली का सवाल है, एक पार्टी की प्रणाली सैद्धांतिक रूप से आवश्यकताओं को कितनी ही अच्छी तरह क्यों न पूरा करती हो, जबर्दस्ती थोपी नही जायेगी; वह केवल एक स्वाभाविक विकासक्रम के फल-स्वरूप ही आ सकती है और फिलहाल इसकी कोई संभावना नहीं है।"

११ जुलाई और २५ अगस्त के बीच क्या हुआ?

लालकृष्ण अडवाणी ने जवाब दिया, "मुजीब की हत्या। मैं समझता हूँ, उससे उनके दिल में डर बैठ गया। शायद वह इस निष्कर्ष पर पहुँच गयीं कि लोकतंत्र के सार-तत्त्व को बाकी रखा जाना चाहिए।"

"मैं अंडरग्राउंड कार्यकर्ताओं के नेता से मिलना चाहता हूँ," मेट्रोपोलिटन कौंसिल के कांग्रेसी सदस्य पी० एन० सिंह ने अपने एक पत्रकार दोस्त से टेलीफोन पर कहा, जो अंडरग्राउंड आंदोलन से संबंध रखते थे। यह जुलाई के आखिर की बात है। पी० एन० सिंह चन्द्रशेखर के घर में, पुलिस के बहुत करीब रहते हुए भी २६ जुलाई को पुलिस के चंगुल में आने से बच गये थे। २७ तारीख को वह बस से रामपुर गये जहाँ वह कुछ दोस्तों को जानते थे। उन्होंने वहाँ से कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ और दूसरी चीजें छापीं, लेकिन जल्द ही उन्हें भागना पड़ा। फिर वह तराई के इलाके में एक किसान दोस्त के यहाँ गये जो बहुत दूर एक गाँव में रहता था। नैनीताल जिले में रुद्रपुर नाम की जगह में उन्होंने एक छापेखाने की व्यवस्था की और चोरी-छिपे चीजें छापने लगे। इन लोगों ने दस हजार पैम्फलेट छापे थे जब इस प्रेस पर भी छापा पड़ा और ताला डाल दिया गया। लखनऊ में सिंह चालीस दिन रहे, लेकिन वहाँ सबका डर के मारे दम निकला जाता था; कांग्रेसियों तक का यही हाल था। उन्होंने यूनिवर्सिटी के कुछ लड़कों को जुटाया और चुपके-से कुछ छपी हुई चीजें, जिनमें बहुत-सी खबरें थीं, जेलों में पहुँचवा देने में सफल हो गये, जिससे इमर्जेंसी के शिकार कैदियों का मनोबल बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली। लेकिन उन्होंने महसूस किया कि वह काफ़ी काम नहीं कर पा रहे हैं। दिल्ली वापस आकर वह दिन-भर घर पर रहते और रात को बाहर निकलते; आखिरकार उन्होंने उस आदमी से संपर्क स्थापित कर ही लिया जो उन्हें सही रास्ता दिखा सकता था।

"मेरे घर आ जाइये," उस नेता का टेलीफोन आने पर सिंह ने उनसे कहा, "किसी को मालूम नहीं है कि मैं यहाँ हूँ। कुछ पहले ही उतर कर पैदल चले आइयेगा।"

जब दोनों की मुलाकात हुई तो सिंह ने उन्हें फ़ौरन पहचान लिया; वह उन्हें बहुत अच्छी तरह जानते थे। दोनों ने साथ खाना खाया। उस नेता ने एक बहुत बड़ी कंपनी के संपर्क अधिकारी के साथ मुलाकात तय की जिसने कहा था कि वह कुछ मदद कर सकता है। वे नयी दिल्ली साउथ एक्सटेंशन इलाके के एक छोटे-से रेस्टोराँ 'ल्हासा' में मिले। उन्होंने विस्तार के साथ अपनी योजनाओं के बारे में बातचीत की, और इसके बारे में भी कि काम को संगठित करने के बारे में उनका क्या सुझाव है।

"मुझे एक छापेखाने की सख्त ज़रूरत है। मेरे पास पंद्रह-बीस लड़के हैं जो मेरे साथ काम कर सकते हैं," सिंह ने कहा।

"आपको जितना पैसा चाहिए मिल सकता है, पंद्रह लाख या बीस लाख जो भी चाहें," संपर्क अधिकारी ने कहा।

वे चारों तीन बार 'ल्हासा' में मिले और ब्यौरे की सारी बातें तय करने में उन्होंने बहुत सिर खपाया। उन्होंने सिंह से पूछा कि वह इतने दिन कहाँ रहे, कहाँ-कहाँ ठहरे, किन-किन लोगों से मिले और उनके घर के पते क्या हैं, वे कैसे काम करते हैं और उनका किन दूसरे लोगों से संपर्क है। सिंह को कुछ शक तो हुआ लेकिन उन्होंने सारी बातें बता दीं। उनके साथ जो आदमी था उसका

दिल्ली में पूरे अंडरग्राउंड आंदोलन पर नियंत्रण था इसलिए कोई गड़बड़ी होने का खतरा नहीं है, उन्होंने सोचा। आखिरकार उन्होंने पैसा लेने के लिए संपर्क अधिकारी के घर पर मिलने का फैसला किया।

६ अगस्त की रात थी—नौ बजे का वक्त। सिंह के साथ उनके एक दोस्त कुलवंतकुमार गुप्ता थे। जब वे महारानी बाग की ठाठदार कालोनी में पहुँचे उस वक्त पानी बरस रहा था। संपर्क अधिकारी वहीं रहता था।

दोनों उसके मकान के सामने टैक्सी से उतरे। चारों तरफ अँधेरा था। बाहर कोई बत्ती भी नहीं जल रही थी। सिंह को कुछ बेचैनी-सी होने लगी। उन्हें ऐसा लगा जैसे कोई उनका पीछा कर रहा है। उन्होंने यह भावना अपने मन से निकाल देने की कोशिश की। उस नेता ने उनकी मुलाकात किसी गलत आदमी से तो नहीं करायी होगी। वे घर के अंदर गये। वह आदमी एक लंबे-चौड़े पूरी तरह सजे हुए ड्राइंग-रूम में अकेला बैठा था। जब एक नौकर ट्रे में चाय लेकर आया तो सिंह को फिर शक हुआ। वह सादी पोशाक में कोई पुलिस वाला मालूम होता था—वही छोटे कटे हुए बाल और चाल-ढाल में बहुत चुस्त। इतने में वह नेता भी आ गये; सिंह को कुछ तसल्ली हुई और उन्होंने अपने मित्र का परिचय कराया। उन लोगों ने एक बार फिर उन तमाम लोगों के बारे में विस्तार के साथ बातचीत की जिनका इस काम से संबंध रहेगा और एक बार फिर रामपुर, तराई और लखनऊ के लोगों का सारा ब्यौरा दोहराया गया। इसके बाद संपर्क अधिकारी ने नये नोटों की दस हजार रुपये की गड्डी निकाली। उन्होंने पाँच हजार रुपये देते हुए कहा, "बाकी के लिए कल किसी को भेज दीजियेगा।" सिंह सोच रहे थे कि आखिर पूरी रकम एक साथ क्यों नहीं दे दी। उन्होंने सोचा शायद हम लोगों को परख रहे होंगे, फिर भी उन्हें कुछ बेचैनी महसूस हो रही थी। चारों टैक्सी पर बैठकर 'ल्हासा' गये। नेता किसी मीटिंग में चले गये। इस पर सिंह का माथा फिर ठनका। संपर्क अधिकारी, सिंह और कुलवंत ने वहीं खाना खाया और आधी रात तक बातें करते रहे।

सिंह रात को साढ़े बारह बजे घर पहुँचे। उनके मन में जो शंका थी उसे वह स्वयं भी स्वीकार करने का साहस नहीं कर पा रहे थे। कुछ ही सैकंड बाद किसी ने दरवाजा खटखटाया। उन्हें इसका कुछ-कुछ अंदेशा पहले ही से था। तो मेरा शक ठीक ही था, उन्होंने अपने मन में सोचा। उनके सामने सरोजिनी नगर के आस-पास के इलाके के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट-पुलिस और दो थानेदार खड़े थे। इसी इलाके में उनका घर होने की वजह से सिंह इन लोगों को अच्छी तरह जानते थे। वे कुछ शर्मिंदा-से लग रहे थे।

"चलिये, सिंह साहब।"

"आपने तकलीफ क्यों की, टेलीफ़ोन कर देते," सिंह ने जवाब दिया।

कुलवंत भी पकड़ा गया था, लेकिन इन लोगों ने सिंह को बताया नहीं।

वे लोग सिंह को बड़े ठाठ के साथ जीप पर बिठाकर ले गये जिसके ऊपर पुलिस की लाल बत्ती जल-बुझ रही थी। जीप बड़ी तेजी से लाल क़िले के सामने से गुज़र रही थी, कि इतने में पुलिस की जीप में लगे हुए वायरलेस में आवाज आने लगी, "रेड फोर्ट, रेड, फोर्ट!" जीप तेजी से मुड़ी और सिंह को पता चल गया कि उन्हें कहाँ ले जाया जा रहा है।

उन लोगों ने उन्हें एक अँधेरी बदबूदार छोटी-सी कोठरी में बंद कर दिया। "मैं यहाँ नहीं रहूँगा!" सिंह ने चिल्लाकर कहा। लेकिन तब तक स्थानीय पुलि

वा ने जा चुके थे। उन्हें इंटेलिजेंस ब्यूरो (आई० बी०), सी० आई० डी० और कुछ दूसरे अफसरों के एक गरोह के हवाले कर दिया गया था जिनके बारे में उन्हें बाद में मालूम हुआ कि वे उस खौफनाक संगठन 'रा' (रिसर्च एंड एनालिसिस विंग) के लोग थे जो आमतौर पर विदेशी जासूसों की खोज-खबर रखता है। सी० आर० पी० के कुछ जवान भी वहाँ मौजूद थे जिनसे सिंह को कोठरी में ढकेल देने को कहा गया। अब उनके सामने कोई चारा ही नहीं रह गया था। वहाँ एक बहुत गंदी बदबूदार चारपाई पड़ी थी जिस पर वह बैठ गये। रात के ढाई बजे थे। उन्होंने सोचा, किसी तरह रात तो काटनी ही होगी। उन्होंने चारपाई जंगलेदार दरवाजे के पास खींच ली ताकि कुछ ताजी हवा तो आ सके। सारी रात कोठरी के बाहर एक आदमी राइफिल लिये टहलता रहा; उसके भारी जूतों की आवाज रात के सन्नाटे को चीरती रही।

सुबह सात बजे आई० बी० के सुपरिंटेंडेंट-पुलिस ने दरवाजा खोला। "हमें बहुत अफसोस है," उन्होंने माफी माँगते हुए कहा, "फोन खराब था इसलिए मुझे खबर नहीं मिल सकी।" उनके लहजे में बड़ी हमदर्दी थी। "आपके साथ बेहतर सलूक होना चाहिए था। हम आपको इससे ज्यादा अच्छी जगह ले जायेंगे। लेकिन हमें आपकी आँखों पर पट्टी बाँधनी होगी। उम्मीद है कि आपको कोई एतराज नहीं होगा।"

सिंह को इससे थोड़ी ही तसल्ली हुई। वह पुलिस के हथकंडों के बारे में बहुत कुछ सुन चुके थे। लेकिन वह सोच रहे थे, आखिर ये लोग उनसे क्या चाहते हैं?

सिंह की आँखों पर पट्टी बाँध दी गयी, उन्हें कुछ देर इधर-उधर घुमाया गया, फिर कुछ सीढ़ियाँ चढ़ायी गयीं और आखिरकार वह एक कमरे में पहुँचे। जब उनकी आँखों पर से पट्टी खोली गयी तो उन्होंने देखा कि वह एक बिलकुल बंद कमरे में बैठे हैं जिसकी दीवारों को चारों तरफ लकड़ी के तख्तों से ढँक दिया गया है और वहाँ एक पहियोंदार कुर्सी रखी है। फर्श पर कालीन बिछा था जिसके नीचे लगता था कि बहुत-से तार थे। कमरे में एक मेज और चार कुर्सियाँ और थीं और एक कूलर लगा हुआ था जो काम नहीं कर रहा था। छत पर बिजली का पंखा चल रहा था और लगातार गर्म हवा फेंक रहा था।

सबसे पहले कमरे में सी० आई० डी० की अपराध शाखा के चार आदमी आये। सिंह पहियोंदार कुर्सी पर बैठे थे। वे चारों आदमी सामने बैठ गये। उन्होंने सबसे पहले उनके बारे में कुछ निजी बातें पूछना शुरू किया—कहाँ पैदा हुए, पढ़ाई-लिखाई कहाँ हुई, राजनीतिक संबंध क्या हैं, चंद्रशेखर से मुलाकात कैसे हुई और जयप्रकाश नारायण से क्या संबंध है?

"आपने १२ जून और २५ जून के बीच क्या किया? आप उस वक्त क्या महसूस करते थे?" उन लोगों ने सिंह से पूछा।

"श्रीमती गांधी को इस्तीफा दे देना चाहिए था। यह सरकार के लिए भी अच्छा रहता और पार्टी के लिए भी। ऐसा न करने से पार्टी को बहुत नुकसान पहुँचा है!"

वे चारों वही सवाल बार-बार पूछते रहे। जब एक सवाल पूछना खत्म करता, और सिंह जवाब दे चुकते, तो दूसरा शुरू करता, फिर तीसरा, फिर चौथा और उसके बाद फिर वही क्रम—पहला, दूसरा, तीसरा, [illegible] । चार [illegible] उसके बाद ये लोग अपनी कुर्सियाँ पीछे खिस[illegible] [illegible] हुए। साहब, फिर मुलाकात होगी," उन लोगों ने

अभी ये लोग कमरे मे बाहर भी नही निकल पाये थे कि चार और आदमी अंदर आये। ये इंटेलिजेंस ब्यूरो के लोग थे। अपनी कुर्सियाँ आगे सरकाकर उन्होंने पूछना शुरू किया, "हाँ, तो सिंह साहब...?"

इन लोगों ने भी वही सवाल पूछे, और उसी ढंग से। एक-एक करके चारो आदमी सवाल करते और फिर पहले आदमी से सिलसिला शुरू हो जाता। सिंह बिलकुल मशीन की तरह जवाब देते जा रहे थे। "उन्हे इस्तीफा दे देना चाहिए था। इसी मे पार्टी का भला था। ऐसा न करके उन्होंने सरकार और पार्टी दोनों को बहुत नुकसान पहुँचाया। उन्हे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए था। इसी मे पार्टी का भला था...।" सिंह को नीद आने लगी। उन लोगों ने उन्हे कुछ चाय पीने को दी। 'हाँ, सिंह साहब, आप कहाँ पैदा हुए थे? आपकी पढ़ाई-लिखाई कहाँ हुई? आपकी मुलाकात चंद्रशेखर से किस तरह हुई? जयप्रकाश नारायण से आपका क्या संपर्क है? १२ जून और २५ जून के बीच आपने क्या किया? आप क्या महसूस करते थे?"

"उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए था, मैं आपको बता चुका हूँ। मैं महसूस करता था कि उन्हे इस्तीफा दे देना चाहिए था," सिंह लगातार वही जवाब दोहराते रहे। "यही पार्टी के लिए बेहतर होता, इससे सरकार को भी मदद मिलती...।"

अचानक उन्होंने एक नया सवाल पूछा, "आपका जगजीवनराम से क्या संबंध है?"

यह सवाल सुनते ही सिंह अपनी बढती हुई बेहोशी से चौक पड़े।

"मैं उन्हें अपनी पार्टी के नेता की हैसियत से जानता हूँ। इसके अलावा हम लोगों का, पूर्वी-उत्तर प्रदेश और बिहार के लोगों का एक भोजपुरी समाज है। वह उसके अध्यक्ष थे और मैं सेक्रटरी था।"

उन लोगों ने सिंह से २६ तारीख को सुबह जगजीवनराम से उनकी मुलाकात के बारे मे पूछा। सिंह ने उन्हे बताया कि वह किस तरह जगजीवनराम से मिले थे और उन्होंने उनसे क्या कहा।

"नही, यह झूठ है," वे सब एक साथ बोल उठे। "उन्होंने कहा था, 'जब तक इन्दिरा गांधी, संजय और बरुआ जिंदा है तब तक लोकतंत्र दुबारा कायम नही किया जा सकता। इसलिए जितना पैसा भी तुम लोगों को चाहिए मैं इंतजाम कर देता हूँ।' यही कहा था उन्होंने।"

"नहीं, आप झूठ बोल रहे है!" सिंह ने चिल्लाकर कहा।

"हमारे पास टेप मौजूद है।"

"मुझे टेप सुनाइये तो मैं मान लूँगा।"

"ख़ैरियत इसी मे है कि जो हम कहते है उसी को दोहरा दीजिये नही तो आपका परिवार, आपके बच्चे, हर चीज तबाह हो जायेगी।"

"नही! यह झूठ है!"

"अगर आप यह बात कह दें तो हम आपको श्रीमती गांधी के पास ले जायेंगे और आप जो भी राजनीतिक फायदा या जो भी ओहदा चाहेंगे आपको मिल जायेगा। अगर आप बात मान ले तो इससे उनको बहुत मदद मिलेगी और आप जो भी चाहेंगे आपको मिल जायेगा।"

"नही, नही।"

"नतीजा बहुत बुरा होगा। हमे आपके साथ जोर-जबर्दस्ती करनी पड़ेगी।"

"मुझे परवाह नहीं है," सिंह ने कहा।
ये लोग चार घंटे से उन्हें रगड़ रहे थे।
वे अपनी कुर्सियाँ पीछे सरकाकर उठ खड़े हुए और बोले, "अच्छा सिंह साहब, फिर मुलाकात होगी।"

इसके बाद चार आदमियों का तीसरा जत्था आया। इससे पहले जो लोग आये थे उनमें से कुछ को सिंह पहचानते थे। इस नये जत्थे में वह किसी को भी नहीं जानते थे। इससे पहले वाले दोनों जत्थों के लोगों ने उनसे यह जानना चाहा था कि पुलिस, आई० बी० और 'रा' में उनकी जान-पहचान के कौन-कौन लोग हैं। जब उन्होंने 'रा' में अपनी जान-पहचान के लोगों के नाम इस तीसरे जत्थे को बताये तो वे एक-दूसरे को देखने लगे। सिंह को फौरन शक हो गया कि ये लोग कौन हैं। फिर वही चक्कर शुरू हुआ, वही सवाल, और बारी-बारी से यही तीन जत्थे—चौबीस घंटे बीत गये। सिंह को बेहद नींद आ रही थी। अब उनका चाय पीने को भी जी नहीं चाह रहा था। यहाँ आने के बाद से वह न नहाये थे, न मुँह-हाथ धोया था और न पाखाने ही गये थे।

दोपहर को दो बजे उन्हें अदालत ले जाया गया, जहाँ पुलिस ने उन पर एक साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया। उन्हें चार दिन तक हिरासत में रखने का हुक्म दे दिया गया। वहाँ से वापसी पर वे लोग उन्हें फिर उसी कमरे में ले गये। तीसरे दिन शाम तक उन लोगों का धीरज टूट गया और उन्होंने कहा, "आप नहीं मानेंगे। अच्छा, तो हमें कोई तरकीब करनी पड़ेगी।" उन लोगों ने उन्हें दीवार के सहारे खड़ा कर दिया। चार-चार लोगों के जत्थे बदलते जाते थे लेकिन वे लोग बैठे रहते थे। सिंह को नौ घंटे तक इसी तरह खड़ा रखा गया। फिर अचानक एक-एक हजार वाट की छः तेज बिजली की बत्तियाँ उनके चारों ओर जला दी गयीं जिनकी रोशनी सीधे उनकी आँखों पर पड़ रही थी। एक क्षण के लिए तो सिंह ने बड़ी मूर्खता से यह सोचा कि ये लोग उनकी फोटो लेने जा रहे हैं, लेकिन उनकी आँखें इस चकाचौंध में अपने आप बंद हो गयीं। इसके साथ ही कालीन के नीचे छिपे हुए तारों से उनके पाँव में बिजली का एक झटका लगा। उन्होंने इन तारों को इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। इससे उनकी आँखें अचानक एक झटके के साथ खुल गयीं, और फिर तेज रोशनी से चकाचौंध होने लगी। ज्यों ही उनकी आँखें बंद होतीं बिजली का एक तेज झटका उनके पाँवों से ऊपर दौड़ जाता। पाँच मिनट के अंदर ही वह पसीने से तर-बतर हो गये। उन्हें इतनी सख्त तकलीफ हो रही थी कि वह चिल्लाने लगे, "मुझे छोड़ दो! अगर चाहो तो मुझे मार डालो!" इतने में बत्तियाँ बुझ गयीं। बिजली के झटके बंद हो गये। चारों ओर घुप्प अँधेरा छा गया। अचानक उन्हें बेहद भयानक और अजीब-अजीब आवाजें सुनायी देने लगीं, जो ऐसा लग रहा था कि सीधे उनके दिमाग की नाजुक रगों से जाकर टकरा रही हैं। उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि उनका सिर फट जायेगा। उनका बदन काँपने लगा, वह फर्श पर गिर पड़े, और दर्द से तड़पने लगे। उन्हें ऐसा लग रहा था कि इन आवाजों से वह पागल हो जायेंगे। उन्हें यह महसूस हो रहा था कि उनकी मौत क़रीब है। वह लगभग बेहोश हो गये।

फिर अचानक यह सब-कुछ रुक गया। साधारण बत्तियाँ जल उठीं। चार आदमियों का जत्था फिर अंदर आया।

"सिंह साहब, उठिये।"

वह उठ नहीं पाये।

कोई भी चीज़ नहीं है। कोई उन्हें मार डालेगा। आप ही लोगों में से कोई उनकी हत्या कर देगा। क्या ख्याल है आपका? खुद आपके बेटे और बेटियाँ जो यूनिवर्सिटियों में पढ़ते हैं आपकी बात को सही नहीं समझते।"

"हमें अपना काम तो करना ही पड़ता है," वे कभी-कभी कमजोरी के क्षण में कहते। वे लोग यह भी सोचते थे कि शायद सिंह कुछ ढीले पड़ रहे हैं।

दिल्ली वापस पहुँचने पर उन लोगों ने उन्हें फिर अदालत के सामने पेश किया। "तो?" मजिस्ट्रेट ने पूछा, "आपको कोई सबूत मिला?"

"यह राष्ट्र की सुरक्षा के लिए ज़रूरी है," पुलिस ने कहा। "बड़े-बड़े लोगों का इस मामले से संबंध है।"

मजिस्ट्रेट कुछ परेशान दिखायी पड़ने लगा।

"मैं आपको बताता हूँ," अचानक पी० एन० सिंह बोल उठे। "ये लोग मुझे हीरो बनाना चाहते हैं। इन लोगों ने जगजीवनराम के बारे में किसी साज़िश का नक़्शा तैयार किया है। ये लोग चाहते हैं कि मैं उसे स्वीकार कर लूँ। इन लोगों को जितना वक्त चाहिए दे दीजिये।"

लाल किले वापस पहुँचने पर पहली बार सचमुच उनके दिल में डर समा गया। सी० आई० डी० के एक बड़े अफसर ने उनसे कहा, "ये लोग आज रात को आपकी बीवी और आपके दो चाचाओं को गिरफ़्तार करने वाले हैं किसी को बताइयेगा नहीं कि यह बात आपको मालूम है। आप को मान लेना चाहिए। आपको कह देना चाहिए कि सब-कुछ सही है।

सिंह ने इस पर विचार करने का वादा किया। उन्हें ऐसा लग रहा था कि जैसे वह बिलकुल टूट चुके हैं। उन्हें पूरा यकीन था कि ये लोग सचमुच ऐसा ही करने जा रहे हैं। उन्हें याद था कि किस तरह इमर्जेंसी से पहले भी कुछ लोग दरवाज़ा तोड़कर उनके घर में घुस आये थे और हर चीज़ उलटकर फेंक दी थी। उनकी बीवी बेहोश हो गयी थी और बच्चे देर तक रोते रहे थे। एक आदमी ने, जिसने यह सब-कुछ देखा था, बताया कि वे अर्जुनदास के आदमी थे। अब तो हालत और भी बदतर थी, और अर्जुनदास की तलवार तो उनके सर पर लटक ही रही थी। सिंह यह सोचकर ही डर और गुस्से से काँप उठे कि उनकी बीवी को जो एक सीधी-सादी घरेलू औरत थी, जेल जाना पड़ेगा।

"मैं आपकी मदद कर सकता हूँ," सी० आई० डी० के आदमी ने कहा। "बस अपनी बीवी को टेलीफोन कर दीजिये कि वह पिस्तौल वापस कर दें।"

सिंह समझ गये कि इन लोगों ने पिस्तौल वहाँ पहले ही से रखवा दी होगी। उन्हें टेलीफोन दे दिया गया। सिंह ने अपनी बीवी से भोजपुरी में बात करके बचाव का एक रास्ता निकाल लिया। उन्होंने उसे बताया कि ये लोग उन पर दबाव डाल रहे हैं कि वे अपने आपको फँसवा दें।

"इनके चकमे में न आना!" उनकी बीवी ने चिल्लाकर कहा। "कोई बात न मानना। यहाँ कोई पिस्तौल-विस्तौल नहीं है।"

पुलिस वाले भागे हुए सिंह के पास आये और परेशान होकर बोले, "हिंदी में बात कीजिये। हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

अगले दिन पंद्रह अगस्त थी, भारत का स्वतन्त्रता दिवस। शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या की भयानक खबर सारी दुनिया में आग की तरह फैल चुकी थी। सिंह ने महसूस किया कि वातावरण अचानक बदल गया है। हर आ[illegible] [illegible]गा गया था। सब-इंस्पेक्टर ने सिंह से डरे हुए स्वर [illegible] भी [illegible] [illegible]येगी।

मुजीब का तो उनके पूरे परिवार समेत सफाया कर ही दिया गया। इमर्जेंसी भी हट जायेगी।"

एक दूसरे सब-इंसपेक्टर ने, जो पहले वाले की जगह ड्यूटी पर आया था, सिंह से पूछा, "क्या बाबूजी गिरफ़्तार किये जानेवाले है ?"

"हो सकता है।"

"मैं उन्हे पहले से सचेत कर देना चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"मैं भी हरिजन हूँ।"

सिंह ने उससे एक सुपरिटेंडेंट-पुलिस से मिलने को कहा जिसका जगजीवनराम से बहुत निकट संबंध था। लेकिन उन लोगों को पता चल गया कि वह सब-इंसपेक्टर उस सुपरिटेंडेंट से मिलने गया था, जाहिर है कि संतरियों पर भी कड़ी नजर रखी जाती थी। अगले दिन सुबह वह फिर सिंह के पास आया और कहने लगा कि वह खुद जगजीवनराम से मिलना चाहता है। सिंह ने उसे जगजीवनराम के सेक्रेटरी का नाम बता दिया। वह सब-इंसपेक्टर इन्दिरा गाधी के रक्षा-मत्री से मिला और अगले ही दिन उसे पता चला कि उसे फटकारने के लिए हैडक्वार्टर बुलाया गया है। उसे सिंह की निगरानी करने की ड्यूटी से हटा लिया गया।

लेकिन उसी दिन सुबह सी० आई० डी० और आई० बी० के अफसर सिंह के पास आये और बोले, "आपको यह जानकर खुशी होगी कि आप पर जो आरोप लगाये गये है, उनमे से वह जगजीवनराम वाली बात निकाल दी जायेगी।"

"आप ही लोगों ने उसे डलवाया था, आपको हक है, निकलवा दीजिये," सिंह ने बहुत जलकर जवाब दिया। लेकिन उनके पूरे शरीर मे सिहरन दौड गयी। वह सोच रहे थे कि और जो कुछ भी उन्हे भुगतना पड़ता वह भुगत लेते, लेकिन इस मामले मे तो वह बाल-बाल ही बचे थे।

१३ अप्रैल १६७६ को डी० डी० ए० के मकान गिराने वाले जत्थे तुर्कमान गेट के इलाके पर इस तरह टूट पड़े मानो पाँचवी शताब्दी मे हूण हमलावरों की फौज ने हमला कर दिया हो।

"यह सब कुछ धीरे-धीरे नही हुआ," इस इलाके के एक दुबले-पतले, साठ बरस के बूढे कांग्रेसी हाफिज मुहम्मद यूनुस ने कहा, जो सुन्न-से रह गये थे। "यह अचानक हो गया। अभी जरा देर पहले हम लोगो के पास मकान थे, हमारे परिवार थे, नौकरियाँ थी, हमारी इज्जत थी, हम अपना सर ऊँचा करके चलते थे। और जरा ही सी देर मे कुछ भी नही रह गया था।"

तुर्कमान गेट की ३०० साल पुरानी इमारतें—उनमें से कम-से-कम कुछ तो इतनी ऐतिहासिक थी ही—और वे खानदान जो मुगलों से अपना रिश्ता जोड़ते है, न केवल पुरानी और नयी दिल्ली की सरहद पर आबाद थे बल्कि वे इन दोनों को जोडने वाली सास्कृतिक कड़ी भी थे। तुर्कमान गेट की घटना इमर्जेंसी के पूरे दौर को दो हिस्सों में बाँट देती है—एक उससे पहले का दौर और एक उससे बाद का दौर। इस घटना से दबे हुए खौफ और खुली बेरहमी के बीच की दूरी खत्म हो गयी। इमर्जेंसी लागू होने के बाद यह पहली घटना थी जिसमे आमलोगों के गुस्से को संगीनों के बल मे दबाया गया। वे सारी समस्याएँ इस एक घटना मे सिमट आयी थी जिन्होंने श्रीमती गांधी को और कांग्रेस को संकट मे घेर लिया—अल्प-

संख्यकों का दूर होते जाना; परिवार नियोजन जैसी चीजों के प्रति एक रूढ़िवादी समाज की बुनियादी विरोध की भावना और उन्हें पूरा करने के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले तरीकों की बर्बरता; संजय का दखल; मीसा का दुरुपयोग; धमकियाँ; और जो लोग यों अच्छे-भले संवेदनशील, अच्छे-भले दूसरों की बात सुनने वाले और अच्छे-भले सूझ-बूझ से काम लेने वाले थे—जैसे स्वयं इन्दिरा गांधी—उनमें दूसरों की बात को समझने की कोशिश न करने और उनकी सांस्कृतिक भावनाओं की कोई परवाह न करने की प्रवृत्ति।

ऐसा लगता है कि जैसे इमर्जेंसी के भी दो चेहरे थे। अनुशासन, स्थायित्व, अधिक उत्पादन, वक़्त की पाबंदी, मेहनत से काम करना, विदेशी विनिमय-मुद्रा का बढ़ता हुआ भंडार और पच्चीस-सूत्री कार्यक्रम तो मानो एक बाहरी रेशमी परदा था, जिसमें चमक-दमक थी, नरमी थी और चिकनापन था, लेकिन उसके पीछे घावों और नासूरों से भरा हुआ एक शरीर छिपा हुआ था। किसी ऐसे नौजवान की नसबंदी कर दी गयी जो शादी करने जा रहा था, किसी अध्यापक ने मजबूर होकर आत्महत्या कर ली, कोई परिवार बे-घरबार हो गया, किसी को बिना किसी दाद-फरियाद के जेल में ठूँस दिया गया, किसी के कारोबार का दिवाला निकल गया, इनकम-टैक्स के छापों के जरिये राजनीतिक बदले निकाले जाने लगे, पार्टी में साथ काम करनेवालों और पुराने साथियों को यंत्रणाएँ दी गयीं, गंदी पेचीदा तिकड़मे, और समाज से मार्मिक स्थलों को नष्ट करने, उन्हें कलंकित और अपमानित करने और अंत में उन्हें बिलकुल निष्प्राण बना देने की साजिशें।"

सच तो यह है कि उस दौर में ख़ुद समाज के दो चेहरे थे। एक तरफ़ तो वे लोग थे जिन्होंने मुसीबतें झेली थीं और उनके दिल में डर बैठ गया था और दूसरी तरफ़ वे लोग थे जिन्होंने कोई मुसीबतें नहीं झेली थीं और जिन्हें कुछ भी मालूम नहीं था। शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा जिसे कुछ मालूम था और उसने मुसीबत न झेली हो, अलावा श्रीमती गांधी के जिन्होंने यह सब-कुछ अपनी आँखों के सामने होते देखा—जैसे तुर्कमान गेट की घटना, जिसे उन्होंने देखा लेकिन जिसकी उन्होंने कोई परवाह नहीं की।

"हम लोग सिर्फ़ यहाँ तक मकान गिरायेंगे," डी० डी० ए० के एक अधिकारी ने एक लाइन की तरफ़ इशारा करते हुए हाफ़िज मुहम्मद से कहा।

"लेकिन वे तो उस लाइन से आगे बढ़ गये हैं," हाफ़िज मुहम्मद ने फरियाद करते हुए कहा।

वह आदमी देखने के लिए उठा और उसने अपना सर हिला दिया। इतने में एक इमारत धड़ाम से नीचे आ गिरी। "इस औरत को अस्पताल ले जाओ," उसने एक नौजवान औरत की तरह इशारा करते हुए कहा, जिसके अभी हाल ही में बच्चा हुआ था और वह खुले आसमान के नीचे सड़क पर पड़ी हुई थी।

१४ अप्रैल को एक लाइन में बने हुए निजी घरों की एक कतार सही-सलामत बच गयी थी—इनमें से कुछ बहुत अच्छे, बड़े-बड़े और आलीशान मकान थे जिनमें एयर-कंडीशनर लगे थे और कुछ छोटे-छोटे, गंदे और घुटे हुए मकान थे, जो आरामदेह तो नहीं थे लेकिन थे पक्के। वहाँ न कोई झुग्गी थी और न कोई झुग्गीवाला था, लेकिन घबराये हुए सभी थे। उन्हें कोई नोटिस नहीं मिला था लेकिन अब उन्हें सरकारी काम-काज के तौर-तरीकों पर कोई भरोसा नहीं रह गया था। वे सब लोग हुस्न की मलिका रुखसाना के पास गये,

जिसने इस इलाक़े को नसबंदी की मुहिम के लिए चुना था। इस काम में उसकी मुस्तैदी की वजह से संजय उसकी तारीफ़ करते नहीं थकता था और लोग बगावत पर आमादा हो गये थे। वे जानते थे कि वह अपनी सम्मोहक आवाज़ से नवीन चावला को बस एक टेलीफ़ोन कर देगी और हुक्म रद्द हो जायेगा। लेकिन रुखसाना इसके लिए कीमत चाहती थी।

"मैं उन लोगों को रोक दूंगी," उसने कहा। "लेकिन आप लोगों को तीन काम करने होंगे : एक तो संजय के प्रोग्राम का बोर्ड लगाना होगा, दूसरे कुछ पेड़ लगाने होंगे और तीसरे नसबंदी के लिए लोगों को लाना होगा।"

"हम लोग आपको नसबंदी के लिए १५० आदमी देंगे," उन लोगों ने बड़ी बेबसी से कहा।

"इतने तो बहुत कम है। आप तो जानते ही है कि मुझे संजयजी को कुछ करके दिखाना है।"

"अच्छी बात है, बाजी, लेकिन हमारे घर बचा लीजिये।"

"मैं जगमोहन से पूछकर आप लोगों को बताऊंगी।"

उसी रात ये लोग खुरशीद आलम[1] से मिले। उन्होंने कहा, "अगर रुखसाना ने यकीन दिला दिया है तो फिर आप लोगों को फ़िक्र करने की कोई जरूरत नहीं है।" १५ अप्रैल को वे लोग रुखसाना से नहीं मिल सके, और मकान गिराने वाले गिरोह उस इलाके में ग़ैर-कानूनी मकानों या डी० डी० ए० की मिल्कियत की हद से आगे तक धावे मार रहे थे। लोग मिलकर सुभद्रा जोशी के पास गये। उन्होंने जवाब दिया, "हम लोग सिर्फ झुग्गियाँ साफ कर रहे हैं।" यह बात सुनकर लोग हैरान रह गये। "आप भी यही बात कह रही हैं। सारी दिल्ली में अब कोई झुग्गी-झोंपड़ी नहीं रह गयी है, तो यहाँ कहाँ से आयेगी? हम सब लोग कांग्रेसी हैं, ये हमारे निजी मकान है, ये सब-के-सब ३,४०० मकान।" इसके बाद सुभद्रा जोशी ने वह फेहरिस्त ले ली।

१६ अप्रैल को हाजी करामत ने, जो रुखसाना का हाथ बंटाने में बहुत आगे थे, उन लोगों को श्रीमती गांधी से मिलने की सलाह दी। उन्होंने बड़े गर्व से कहा, "मैं उस खानदान को जानता हूँ। मेरा एक बेटा उन्हीं लोगों के साये में पला-बढ़ा है। वह जरूर सुनेगी।"

इसके बाद स्थानीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य दो बसों में भरकर प्रधान मंत्री से मिलने गये। "हम लोगों को यहीं बसा रहने दीजिये। ये मकान हमारे बाप-दादा ने अपने खून-पसीने से बनाये है। ये लोग ऐसी बातें करते हैं जैसे अब हमारा कुछ है ही नहीं।"

श्रीमती गांधी ने बड़ी रुखाई और सख्ती से बात की। "अगर हम आप लोगों को इसी तरह बसाते रहे तो फिर हम इस शहर को खूबसूरत कैसे बना सकेंगे? हम आप लोगों के लिए कुछ नहीं कर सकते," इतना कहकर वह चली गयीं।

१६ अप्रैल को करामत ने उन लोगों से दोजाना हाऊस में रुखसाना के नसबंदी कैंप में जाने को कहा। "मैंने उन्हें और जगमोहन को सब-कुछ समझा दिया है," उन्होंने कहा।

लोग डरे हुए थे। उन्होंने ५०० आदमियों की भीड़ जुटा ली। लेकिन फिर भी वे घबराये हुए थे। उन्हें नसबंदी के लिए पकड़ा जा सकता था, जिससे वे सभी थरथर कांपते थे।

"बाजी, हम आपके पास नसबंदी के लिए २०१ आदमी लाये हैं," उन्होंने रुखसाना से कहा, "हर आदमी के बदले हमें एक घर दिला दीजिये।"

"मैं इसके बारे में सोचूँगी," रुखसाना ने बड़ी अदा से बात को टालते हुए कहा।

रात को वे लोग ट्रकों में भर-भरकर अर्जुनदास से मिलने गये।

"हमें दूसरी जगह ढूँढने के लिए बस थोड़ा-सा वक़्त चाहिए। हम और कुछ नहीं चाहते। हमें पहली तारीख तक की या २६ तारीख तक की ही मोहलत दे दीजिये—तब तक आप सारा इलाका खाली पायेंगे।"

"मैं कुछ नहीं कर सकता," उन्होंने कहा, "वह रुखसाना का इलाका है।"

उस रात, एक दोस्त ने, जिनका नाम वे नहीं बताना चाहते, उनको प्रधान मंत्री के नाम एक अर्ज़ी भेजने की सलाह दी। उन्होंने वादा किया कि उनकी अर्ज़ी प्रधान मंत्री की मेज़ पर पहुँचा दी जायेगी, जहाँ वह उसे ज़रूर देखेंगी।

उन लोगों ने एक अर्ज़ी श्रीमती गांधी के नाम लिखी और दूसरी संजय के नाम। जब वे सारे कागजात लेकर १ सफदरजंग रोड पर गये तो श्रीमती गांधी उस वक्त बड़ी तेज़ी से मोटर पर कहीं जा रही थीं। वे अर्ज़ी लेकर रात को ग्यारह बजे फिर गये, जब वह लौटकर आने वाली थीं। अर्ज़ी मेज़ पर रख दी गयी। बाद में इन लोगों को अपने दोस्त से मालूम हुआ कि अर्ज़ी संजय ने उठाकर पढ़ी थी और एक तरफ फेंक दी थी। इन्दिरा गांधी ने उसे उठाकर पढ़ा और वापस रख दिया। उसके बाद वह परदा एक तरफ को सरकाकर अपने कमरे की तरफ चली गयी।...दूसरे दिन सुबह पूरा परिवार शिमला चला गया।

१८ तारीख को उस इलाके के चार रहनेवाले बेहद परेशान हालत में करामत को लेकर जगमोहन के पास गये; करामत डी० डी० ए० के ठेकेदार भी थे।

"अगर तुम लोग इसी तरह एक इलाके में घुल-मिलकर रहते रहोगे तो कभी कोई तरक़्क़ी नहीं कर पाओगे।"

"न सही, लेकिन आप हम लोगों को यहीं रहने दीजिये।"

जगमोहन ने गुस्से से अपनी ऐनक मेज़ पर पटक दी और करामत की ओर मुड़कर बरस पड़े, "मैं यहाँ एक और पाकिस्तान नहीं चाहता।"

चारों इतना डर गये कि चुपचाप वहाँ से चले आये। इसके बाद वे मीर मुश्ताक के पास गये; कांग्रेस के अध्यक्ष बरुआ से मिले, जिन्होंने उनसे आँख तक नहीं मिलायी, बिना कुछ कहे बस अर्ज़ी ले ली। वे फिर सुभद्रा जोशी के पास गये। अभी सुभद्रा जोशी ने उनके साथ उस इलाके में जाने की हामी भरी ही थी कि इतने में किसी का टेलीफोन आया। उन लोगों ने भाँप लिया कि यक़ीनन बरुआ का टेलीफोन रहा होगा, जिन्होंने सुभद्रा जोशी को सचेत कर दिया होगा कि अगर वह संजय की योजना में दखल देंगी तो उनका क्या अंजाम होगा। सुभद्रा जोशी यह कहती हुई बाहर निकलीं, "मेरी तबीयत ज़रा ठीक नहीं है। मैं शायद जा नहीं सकूँगी।"

१८ तारीख को सुबह रोती हुई औरतों, बिलखते हुए बच्चों और पत्थर के बुतों की तरह खामोश मर्दों के बीच से दनदनाते हुए बुलडोज़रों ने उस इलाके पर चढ़ाई कर दी। इसके बाद तो विरोध की आग भड़क उठी! एक तरफ से किसी ने पत्थर फेंका, एक अट्ठारह बरस के लड़के को गोली लगी, और चारों तरफ एक

कुहराम मच गया ! इलाके की पुलिस ने वहाँ के रहने वालों को बचाने की कोशिश की, ख़ासतौर पर उन नौजवान लड़कियों को, जिनका पीछा सी० आर० पी० के बदकार सिपाही भूखे भेड़ियों की तरह कर रहे थे। जिन लोगों ने ये बातें अपनी आँख से देखी थीं और बयान की, उनके दिल अब तक दहले हुए थे। जो औरतें नहीं भाग सकी वे अपनी इज्जत बचाने के लिए मकानों की छतों पर से नीचे कूद पड़ीं। घर लूट लिये गये, नयी-नवेली दुल्हनों के ज़ेवर छीन लिये गये और मर्दों को उनके घरों के अंदर घुस-घुसकर बुरी तरह पीटा गया। औरतों के साथ न सिर्फ बलात्कार किया गया बल्कि जलती सिगरेटों से उनके स्तन दाग़ दिये गये।

कर्फ़्यू लागू कर दिया गया।

अगले दिन सुबह जो परिवार बेघर हो गये थे उन्हें इसके बदले में ख़ाली ज़मीन के टुकड़े देने के लिए सफ़ेद कागज की पर्चियाँ दी गयीं—लेकिन वहाँ से पंद्रह मील दूर खिचड़ीपुर में। हाजी मुहम्मद इद्रीस ने, जिनकी बीवी को पिछली रात भीड़ में बुरी तरह पीटा गया था, बुझे हुए स्वर में कहा, 'मेरा बड़ा-सा घर था। कमरों में एयर-कंडीशनर लगे थे। फ़र्नीचर था, टेलीविज़न था, रेफ़्रीजरेटर था, कपड़े-लत्ते सभी कुछ था...।"

"हलफ़िया बयान दाख़िल करो," पर्चियाँ बाँटने वाले अफ़सर ने कहा।

सारे देश में मुस्लिम जगत में मातम छा गया। सेंसर ने अख़बारों में बस एक छोटी-सी ख़बर छपने की इजाज़त दी, लेकिन ख़ुफ़िया तौर पर एक पर्चा बाँटा गया, जो कई लोगों तक पहुँचा, जिसमें मरने वालों के नाम दिये गये थे...।

प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी शिमले से लौटने के बाद भी उस इलाक़े में नहीं गयीं। लेकिन जब शेख़ अब्दुल्ला बहुत दुःखी होकर, इस घटना के लगभग फ़ौरन ही बाद, दिल्ली यह मालूम करने पहुँचे कि क्या हुआ है तो श्रीमती गांधी ने यूनुस को टेलीफ़ोन किया, "इतनी तरह-तरह की बातें सुनने में आ रही हैं, आप जाकर देखते क्यों नहीं ?"

"जी हाँ," यूनुस ने कहा, "शेख़ साहब मुझसे पहले ही कह चुके हैं।"

जब ये दोनों उन बस्तियों का दौरा करने गये जहाँ तुर्कमान गेट के उजड़े हुए लोग ले जाकर बसाये गये थे, तो डी० डी० ए० के कर्ता-धर्ता जगमोहन भी उनके साथ थे। इसी बात से उन पर से लोगों का भरोसा फ़ौरन उठ गया होगा। लेकिन एक बात बिलकुल साफ़ तौर पर उभरकर सामने आयी। जो लोग उजाड़े गये थे वे झुग्गी वाले नहीं थे। वे एक ऐसे इलाके में रहते थे जहाँ उनके बाप-दादा रहते आये थे। वे अपने मकानों का टैक्स भी देते थे। उन लोगों ने मकान किसी से ज़बर्दस्ती नहीं हथियाये थे, और उन्हें जिस बेदर्दी से वहाँ से निकाल फेंका गया वह सामाजिक उन्नति के किसी भी कार्यक्रम को सफल बनाने का तरीक़ा तो नहीं हो सकता। खिचड़ीपुर बस्ती का एक रहने वाला यूनुस साहब और शेख़ साहब के साथ तुर्कमान गेट गया। वहाँ उन्होंने 'सताये जाने' की बातें सुनीं लेकिन किसी ने 'ज़ुल्म' लफ़्ज़ का इस्तेमाल नहीं किया। उन्हें डी० डी० ए० की 'मनमानी धाँधली' की बात तो सुनने को मिली लेकिन 'संजय' का नाम किसी ने नहीं लिया।

"क्या आप समझते हैं कि वे इतना डरे हुए थे कि कुछ कह नहीं सकते थे ?" मैंने यूनुस साहब से पूछा।

"नहीं, मैं समझता हूँ कि जिस तरह मैं किसी बात के बारे में जो करता हूँ वही कहता हूँ, उसी तरह दूसरे लोग भी ऐसा ही करते होंगे।

बाद में पता चला उसका एक थोड़ा-सा हिस्सा भी मुझे नहीं बताया गया था।"

लेकिन जब वे सही हालात का पता लगाने के लिए उस इलाके का दौरा कर रहे थे तो जो आदमी उन्हें ले आकर हर चीज बताना चाहता था, उसे उनके सामने ही गिरफ्तार कर लिया गया। शेख साहब बेहद बिगड़कर कश्मीर चले गये। लेकिन यूनुस प्रधान मंत्री के पास गये।

"वहाँ पुलिस के बारे में कुछ करना पड़ेगा। मैंने लेफ्टिनेंट-गवर्नर से कह दिया है। इसका सबूत यह है कि हमारा अपना आदमी हमारी आंखों के सामने गिरफ्तार कर लिया गया।"

"हमें इस मामले की जांच करनी होगी," प्रधान मंत्री ने कहा।

उसी दिन शाम को जब प्रधान मंत्री ने दूसरे लोगों से तुर्कमान गेट के बारे में पूछा, तो मीर मुश्ताक अहमद ने पुलिस की तरफदारी करने की कोशिश की।

"वह आदमी गिरफ्तार नहीं किया गया था।" मीर साहब ने प्रधान मंत्री को बताया। "उसका पांव मेरे पांव पर पड़ गया था इसलिए पुलिस ने उससे दूर रहने को कहा था।"

लेकिन बेगम आबिदा अहमद भी उस इलाके में गयी थी और उनसे भी उसी पुलिस अफसर के खिलाफ शिकायतें की गयी थीं, जो इतनी बदतमीजी के साथ पेश आया था। उन्होंने यह बात यूनुस को बतायी। जब वह दुबारा प्रधान मंत्री के पास गये तो वह बरस पड़े, "अब मुझे किसी ऐसी जगह न भेजा जाये जहाँ मुझे इतनी शर्मिंदगी उठानी पड़े। एक छोटे-से पुलिस अफसर तक के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती।"

"आप ही बताइये, मैं क्या करूँ!" प्रधान मंत्री ने कहा। "देखिये, ये सब लोग क्या कहते हैं।" जिन तीन आदमियों का इस घटना से दरअसल संबंध था—मीर मुश्ताक, लेफ्टिनेंट-गवर्नर और इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस—उन तीनों ही ने प्रधान मंत्री को बताया था कि कोई गिरफ्तार नहीं किया गया था।

जाहिर है, श्रीमती गांधी ने उन लोगों पर ही यकीन करना बेहतर समझा। इसमें शक नहीं कि उस रवैये में उन्हें संजय के इस दृढ़ विश्वास से बहुत सहारा मिला था कि यहाँ-वहाँ कुछ लोगों के मर जाने से किसी योजना को पूरा करने में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। शशिभूषण ने एक सेमिनार किया था जिसमें उन्होंने संजय को भी बुलाया था। इस सेमिनार में राजनीति के क्षेत्र के इस नये सूरमा ने व्यंग्य करने के लिए सिर्फ प्रेमसागर गुप्ता की मिसाल चुनी थी, जिन्होंने पी० एन० घर को लोगों के नयी बस्तियों में बसाये जाने के बारे में आंकड़े दिखाये थे। संजय ने कहा, "उन्होंने प्रधान मंत्री की कोठी पर कागज के पुलिंदे-के-पुलिंदे शिकायतों से रंगकर दाखिल किये थे। लेकिन सब झूठी निकलीं।" जाहिर है कि इस पृष्ठ-भूमि में जब एक प्रतिनिधिमंडल राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के पास गया, जिनको इस पूरी घटना ने बुरी तरह झकझोर दिया था, और उन्होंने प्रधान मंत्री से शिकायत की, तो उन्होंने राष्ट्रपति की बात यह कहकर टाल दी कि उन्हें इस मामले में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। प्रधान मंत्री ने यह बात भी कही कि उनकी राय में बेगम आबिदा ने लोगों को नयी बस्तियों में बसाने की समस्या के बारे में जो मूल्यांकन किया था वह सही नहीं था।

स्पष्ट है कि श्रीमती गांधी ने यह तय कर लिया था कि वह किस पर विश्वास करना चाहती हैं।

जामा मस्जिद के इलाके में रहने वाले कुछ लोगों को १० दिसंबर १९७६

को वह जगह दिखाने के लिए ले जाया गया जहाँ उन्हें बसाया जाने वाला था। लेकिन जिस वक़्त वे डी० डी० ए० के अफ़सरों और पुलिसवालों के साथ जीप पर जा रहे थे तो उन्होंने एक अफ़सर को कहते सुना: "जो भी चूँ करे उसे मीसा में पकड़-कर बंद कर दो।" अगले दिन जामा मस्जिद के इलाके की ख़ानख़ाना गली की २०० औरतें प्रधान मंत्री के पास यह फ़रियाद लेकर गयीं कि उन्हें अपनी मौजूदा जगह से हटाया न जाये। प्रधान मंत्री ने उन्हें यक़ीन दिलाया, "हमारा इस तरह का कोई इरादा नहीं है। आप इत्मीनान से जाकर बैठिये।"

इसके बाद इज़हार असर, जो लेखक हैं और उस इलाके के सामाजिक कार्य-कर्त्ता हैं, रुख़साना के पास गये। "देखिये, लोगों को मजबूर न कीजिये। प्रधान मंत्री ने उन्हें यक़ीन दिलाया है, इसलिए कोई यहाँ से हटने को तैयार नहीं है।"

रुख़साना ने एक फ़ाइल खोली। "जी हाँ, मेरे पास उन तमाम लोगों के नाम मौजूद हैं जो गड़बड़ी पैदा कर रहे हैं। मैं जानती हूँ, किन लोगों ने अपनी बीवियों को भेजा था, एक-एक को जानती हूँ। उन सबको यहाँ से हटना पड़ेगा। जो नहीं हटेगा, उसे उसका नतीजा भुगतना पड़ेगा। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के मम्मन साहब आपको सब-कुछ बता देंगे। मैं उनको संजयजी के पास ले गयी थी—संजयजी ने उनके सामने ही कहा कि पुलिस की मदद से सबको हटवा दिया जाना चाहिए। मैंने संजयजी से कहा कि मैं उन्हें जबर्दस्ती नहीं बल्कि प्यार-मुहब्बत से समझा-बुझाकर हटवा दूँगी। इसलिए मेहरबानी करके उनसे जाकर कहिये कि अगर वे रजामंदी से चले जायेंगे तो इसमें उन्हीं का फ़ायदा है।"

इसके बाद धमकियाँ शुरू हुईं। लोग कहने लगे, "अगर तुम नहीं हटोगे तो यहाँ भी वही होगा जो तुर्कमान गेट में हुआ था।"

लोग फिर एक बार हिम्मत करके प्रधान मंत्री के पास गये। "आपने तो कहा था कि कुछ नहीं होगा लेकिन उन लोगों ने तो हमें यहाँ से निकालना शुरू कर दिया है।"

वह चुप रहीं। बस इतना कहा, "धवन साहब आ रहे हैं, उनसे बात कर लो।"

धवन ने आकर उन लोगों से प्रधान मंत्री के सामने ही कहा, "हमने मीर साहब से पता किया था। वह तो कहते हैं कि सब लोग अपनी रजामंदी से जा रहे हैं।"

मीर साहब उस ज़माने में शायरी करते थे। उनके मिज़ाज में उन दिनों बड़ी रवानी थी और शेर थे कि दरिया की मौजों की तरह चले आ रहे थे। मिसाल के तौर पर उन्होंने अँग्रेज़ी में एक कविता लिखी थी जिसका आशय कुछ इस प्रकार था:

जो झूठ पर पल रहे, मुटिया रहे और बढ़ रहे,
उन तक सच्चाई नहीं पहुँचने देते हैं।
वे जनता के गौरव के लिए संघर्षशील,
और सच्चाई से स्वयं ही सुपरिचित है।

वक़्त की माँग है कि चापलूस लोग चेतें—
नहीं तो उनकी करतूतें उन्हें जल्दी ही नंगा कर छोड़ेंगी।

किसी ने श्रीमती गांधी को यह नहीं बताया कि सबसे बड़ा चापलूस वह था जिसने बादशाह को इस भ्रम में रखा कि कोई उनकी चापलूसी करके अपना उल्लू

सीधा नहीं कर सकता। शायद मीर साहब ने जो बात कही थी वह उन्हें अच्छी लगी थी। शायद उन्होंने उसमें छिपे हुए अर्थ को जानते हुए भी अनजान ही बने रहना चाहा।

राधारमण कहते हैं, "मैंने उनको १९७४ में लिखा कि मैं उनका वफादार भक्त हूँ, लेकिन वफादारी का अर्थ उस भाषा के अनुसार नहीं लगाया जाना चाहिए जो उन दिनों इस्तेमाल हो रही थी। वफादारी किसी एक आदमी के व्यक्तित्व के प्रति नहीं होनी चाहिए, हमें व्यक्ति-पूजा से बचना चाहिए। धवन ने यह खत उन्हें कभी दिया ही नहीं। मुझे वापस कर दिया!"

दोजाना हाउस में रुखसाना रोज शाम को अपने सभी काम करने वालों और प्रशंसकों को जमा करके इस बात का लेखा-जोखा करती थी कि दिन-भर में क्या-क्या हुआ? एक दिन शाम को इसी तरह के एक दरबार में रुखसाना ने बड़े अर्थपूर्ण ढंग से इठलाकर अपने कदमों में बैठे हुए लोगों कहा, "आप लोग जानते हैं, मैंने आज संजयजी से क्या कहा? मैंने कहा, 'डार्लिंग, शहर में लोगों में मुखालफत बढ़ती जा रही है,' और आप जानते हैं उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहा, 'डार्लिंग, तुम आधी दिल्ली को जलाकर खाक भी कर दो तो मैं पलट कर नहीं पूछूँगा...।'"

"संजय अफसरों पर अपना हुक्म चला रहा था, वह किशनचंद तो बिलकुल गोबर-गणेश थे जिन्हें नवीन चावला ने वहाँ बिठा दिया था, पुलिस रुखसाना के इशारों पर नाचती थी, यहाँ तक कि रुखसाना जिस तरह से काम कर रही थी और उससे जो नुकसान हो रहा था, उसे कुछ हद तक कम करने के लिए मेरी बीवी ने भी परिवार नियोजन का काम शुरू कर दिया था। मैंने उसको समझाया भी कि हम लोग तो इसमें फँस गये हैं, तू इसमें जान-बूझकर क्यों फँसना चाहती है? हमने इन्दिराजी को सब बताया कि क्या हो रहा है, वह कैसे कह सकती हैं कि उन्हें कुछ भी मालूम नहीं? जो छापे पड़ रहे थे और दबाव डालकर जिस तरह पैसा वसूल किया जा रहा था, उसके बारे में खुद मैंने कई बार संजय से बात की। वह कह देता, 'क्या सबूत है?' अब इस तरह सबूत क्या दिया जा सकता है? यह तो काम करने का ढंग था। जब मैंने मकान गिराये जाने के बारे में बात की तो उसने कहा, 'आप इसमें टाँग न अड़ाइये।' पॉलिसी के मामले में वह प्रधान मंत्री से पूछे बिना कोई कदम नहीं उठाता था, लेकिन रोजमर्रा की ब्यौरे की बातों के सिलसिले में ऐसा नहीं था। वह भी 'हाँ' कह देती थी। और नतीजा यह होता था कि वह जो कुछ कह देता था, वह काम जरूरत से ज्यादा मुस्तैदी के साथ पूरा किया जाता था। वह जिस तरह से चढ़कर बात करता था उसका मैं मुकाबला नहीं कर सकता था। जी हाँ, वह मुझसे 'तू' कहकर बात करता था। मैं सोचता था कि शायद इसे धीरे-धीरे ढालकर अच्छा नेता बनाया जा सकता है। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं था कि आगे चलकर वह प्रधान मंत्री ही बन जाये। खुशामदियों का असर लगातार बढ़ता जा रहा था। मैं मानता हूँ कि मुझमें इतनी हिम्मत नहीं हुई कि कह दूँ कि यह काम मेरे बस का नहीं है।" ये थे सत्तर बरस के बूढ़े राधारमण जिन्हें संजय जैसा नौसिखिया महज इसलिए अपनी उँगलियों पर नचा रहा था कि वह प्रधान मंत्री का बेटा था। "अंदर-ही-अंदर कुढ़ते सब थे, ये कांग्रेसी नेता, लेकिन उनके दिल में डर बढ़ता जाता था, और वे हर बात मानते जाते थे।"

"क्या आपको मालूम नहीं था कि देश में क्या हो रहा है? आप लोगों ने

प्रधान मंत्री के पास जाकर एतराज क्यों नहीं किया ?" मैंने कमलापति त्रिपाठी से पूछा। वह अपनी कुर्सी पर पैर पसारे बैठे थे और जो भी मिलने आता था वह उनके ब्राह्मण होने के नाते उनके पाँव छूता था।

त्रिपाठीजी राजनीति के मैदान के मँजे हुए पुराने खिलाड़ी थे और कितने ही तूफान झेल चुके थे। लेकिन अब वह इस वक़्त कुछ उलझन में पड़ गये थे। उन्होंने जवाब दिया, 'मैं बेहद उलझ गया हूँ, कुछ ठीक से समझ में नहीं आता। अगर हम अपने-आपको यह दलील देकर समझाने की कोशिश करें कि देश की अखंडता खतरे में थी, कि विदेशी पैसा धड़ल्ले से चल रहा था और कोई साजिश रची जा रही थी, जैसा बांगला देश में हुआ था और वही चीज यहाँ भी हो सकती थी, तो यह सोचकर दिल काँप उठता है कि अगर इमर्जेंसी न लागू की गयी होती तो क्या होता ! दूसरी तरफ, अगर हम उन बातों के बारे में सोचें जो बाद में हुईं, जो ज्यादतियाँ यकीनन की गयीं, अध्यापकों की तनख्वाहें रोकी गयीं, पूरे-के-पूरे गाँवों की नसबंदी कर दी गयी, कम-उम्र नौजवानों को और सत्तर-सत्तर बरस के बूढ़ों को भी इसके लिए पकड़ कर ले जाया गया, लोगों को ज़ाती बदला निकालने के लिए जेलों में ठूँस दिया गया, तो हमारे दिमाग में एक तस्वीर उभरती है कि अगर यह सब-कुछ न हुआ होता तो क्या होता। बहरहाल, मुझे बड़ा दुःख होता है।"

चंद्रशेखर का कहना है कि कांग्रेस के नेताओं के दिल में उन ज्यादतियों की वजह से सिर्फ डर नहीं था जो उन्होंने की थीं, बल्कि वे बड़े धीरज से राह भी देख रहे थे और इन्दिरा गांधी को अपने फंदे में खुद फँस जाने का पूरा मौक़ा दे रहे थे।...

जब सुप्रीम कोर्ट ने ५ नवंबर १९७५ को चुनाव वाले मुकदमे में इन्दिरा गांधी के पक्ष में फैसला दिया, तो उस वक़्त एल० के० अडवाणी ने जेल में अपनी डायरी में लिखा था, "मैं तो यही प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह कहीं हम लोगों को रिहा न कर दें।" उन लोगों को पूरा यकीन था कि अगर फैसला इन्दिरा गांधी के खिलाफ होता तो वह ज़रूर कोई सख्त कार्रवाई करतीं। लेकिन उन्होंने इस बात का पक्का बंदोबस्त कर लिया था कि फैसला उनके खिलाफ न जाने पाये। उन्होंने २१ जुलाई को संसद की एक विशेष बैठक बुलाकर उसमें जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में इस तरह के संशोधन करवा दिये थे कि जिन बातों को जस्टिस सिन्हा ने अपने फैसले की बुनियाद बनाया था उनकी ही कोई कानूनी हैसियत नहीं रह गयी। मीसा के साथ ही जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम को भी अदालतों के अधिकार-क्षेत्र से बाहर कर दिया गया था।

विपक्ष वाले यह महसूस करने लगे थे कि गद्दी से हटा दिये जाने का खतरा हट जाने पर शायद वह कुछ नरम पड़ें और उन लोगों को रिहा कर दें। इन्दिरा गांधी ने इस घटना के दो-तीन महीने बाद तक भी ऐसा नहीं किया, यह उनकी इस दौर की दूसरी गलती थी। जून की तरह ही नवंबर में भी विपक्ष के सामने दूर-दूर तक इस बात की कोई संभावना नहीं दिखायी देती थी कि वह एकबद्ध हो सके और एक सशक्त मोर्चा बना सके। लोगों को जेल में बंद रखा गया। सत्याग्रह आंदोलन उसी वक़्त शुरू हुआ, और इस काम के लिए जो एकता कायम हुई उसी में आगे चल कर जनता पार्टी का रूप धारण कर लेने वाले वृक्ष के अंकुर मौजूद थे। १६ नवंबर से २० नवंबर तक एक हफ्ते के अंदर दिल्ली में १७५, पंजाब में

४५०, हरियाणा में २५५, राजस्थान में ३६०, हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर में ६०, उत्तर प्रदेश में १,३२५, बिहार मे १,८००, पश्चिम बंगाल मे १३२, असम तथा मणिपुर मे १२४, उड़ीसा मे १०३, आंध्र प्रदेश में ३६०, तमिलनाडु मे १०८, केरल में ५४०, कर्नाटक में १,३७५, महाराष्ट्र मे १,४३०, गुजरात में २०० और मध्य प्रदेश में ४१८ लोगों ने सत्याग्रह किया। फिर इसके साथ ही अंडरग्राउंड आंदोलन था। "हमारे सामने तीन काम थे - जनता से संपर्क स्थापित करना, कांग्रेस सरकार के अत्याचारों का पर्दाफाश करते हुए पर्चे छापना, और अपनी सरगर्मियों का ज्यादा-से-ज्यादा प्रचार करना," सोशलिस्ट नेता ब्रजमोहन तूफान" ने, जिन्होंने उत्तर भारत मे संगठन का काम अपने हाथों मे सँभाल लिया था, इस आंदोलन का विवरण देते हुए कहा। उन्होंने कहा कि दिल्ली मे हर तरफ़ सी० आई० डी० वालों की भरमार थी और वह जगह खतरे से ख़ाली नहीं थी। जब नेता गिरफ्तार होने लगे तो रणनीति बदल दी गयी और यह फ़ैसला किया गया कि टेप पर खबरें भरकर विदेशों को भेजी जायें। तूफान ने बताया, "बर्लिन, लंदन और स्टाकहोम मे इनका बहुत स्वागत किया गया और जो ख़बरें वहाँ पहुँची उनसे मित्रों को छोटे-छोटे अख़बार शुरू करने का प्रोत्साहन मिला। १९७५ के अंत मे विदेशों मे कुछ दूत भेजने की कोशिश की गयी। जाली पासपोर्टों से इसमे बहुत मदद मिली और वे उन दिनों दो-दो हजार रुपये मे बन जाते थे। जनवरी १९७६ तक हमारे सारे साधन खत्म हो चुके थे, दोस्तों को जरा-से शुबहे पर गिरफ्तार कर लिया जाता था, उनके घरों पर छापा मारा जाता था और उनके रिश्तेदारों को दिन-रात सताया जाता था। लेकिन बिहार से एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ। जयप्रकाश नारायण जेल से बाहर आ चुके थे। हम लोगों ने बाकायदा उनसे सलाह लेना शुरू किया। हमारे अंडरग्राउंड कार्यकर्ता फिल्म अभिनेताओं के वेश मे उनसे मिलने जाते थे।"

सत्याग्रह समाचार, **जनवाणी**, **रेजिस्टेंस**, **सत्य वार्ता** **मिनी मदरलैंड**, **क्रांति-दूत** आदि कितने ही बुलेटिन चोरी-छिपे प्रसारित किये जाने लगे, जिनमें हर तरह की हिदायतें दी जाती थी: "इस बात को कभी न भूलिये... कि हमारे नेता जेलों मे सड़ रहे हैं; हर महीने अपनी आमदनी का एक हिस्सा परीक्षा की इस कठिन घड़ी में राष्ट्र को अर्पित कर देने के लिए अलग रख लीजिये, जब तक यह चुनौती सामने है उसके खिलाफ लड़ने के लिए अपने परिवार का एक सदस्य दीजिये।"

इसके जवाब में श्रीमती गांधी ने एक के बाद एक संविधान मे और कानूनों मे कितने ही संशोधन कराये जिनकी वजह से उनकी स्थिति इतनी मज़बूत हो गयी कि कोई उन्हे हिला नही सकता था, और उन्हे अपने आर्थिक उपायों मे कुछ सफलता प्राप्त करने का मौका मिल गया। संसद को सर्वोपरि बना दिया गया, मूल अधिकार छीन लिये गये, अदालतों से प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और लोकसभा के अध्यक्ष के चुनाव के संबंध में किसी भी मुकद्दमे की सुनवाई करने का अधिकार ले लिया गया। जब स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने श्रीमती गांधी की सरकार के इस अधिकार को स्वीकार कर लिया कि वह अदालत मे सुनवाई के बिना अपने राजनीतिक विरोधियों को गिरफ्तार कर सकती है, तो अकेले जस्टिस एच० आर० खन्ना थे जिन्होंने इसके खिलाफ आवाज उठाते हुए यह दलील दी कि हेबियस कार्पस का रिट जारी करने का अधिकार "उन लोकतांत्रिक राज्यों का एक सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है जहाँ कानून का शासन चलता है।" इस दलील के जवाब मे कि इमर्जेंसी के अंतर्गत संविधान मे जो अधिकार दिये गये हैं उनके

अनुसार यह फैसला वैध है, जस्टिस खन्ना ने कहा कि "अगर शुद्धतः औपचारिक दृष्टि से देखा जाये तो नाजी शासन के दौरान जो नरसंहार किया गया था वह भी पूरी तरह क़ानूनी था।"

श्रीमती गांधी ने कहा, "मैं और मेरे पिता उन पहले लोगों में से थे जिन्होंने उस वक़्त हिटलर और मुसोलिनी के खिलाफ़ आवाज़ उठायी थी जब इंगलैंड और अमरीका में और योरुप के बहुत-से देशों में लोग उन्हें बड़ी प्रशंसा की दृष्टि से देखते थे। मेरे कितने ही निजी दोस्त नाज़ियों के कन्सेंट्रेशन कैंपों में जान से मारे गये। इसलिए मैं इस बात को ज्यादा अच्छी तरह महसूस कर सकती हूं...।"

लेकिन जो बेशुमार अंडरग्राउंड परचे छापे जा रहे थे उनमें ठीक इसी बात पर ज़ोर दिया जा रहा था कि नाज़ियों ने भी इसी तरह डिक्टेटरशिप को संविधान के सहारे वैध ठहराया था। जून १६७६ तक आखिरी लोकतांत्रिक आदर्शों को भी दफ़न किया जा चुका था। उस साल फ़रवरी में जो चुनाव होने वाले थे उन्हें टाल दिया गया था और संसद की अवधि एक साल के लिए बढ़ा दी गयी थी। बाहर विपक्ष के जो लोग थे उन्होंने दबी ज़बान से इसका विरोध किया कि जिस संसद को जनता का समर्थन न प्राप्त हो उसे संविधान में कोई संशोधन करने का क़ानूनी अधिकार नहीं है।

निरंकुश शासन के लिए जो ये सामूहिक उपाय किये जा रहे थे उनके साथ ही प्रचार के माध्यमों पर भी पूरा नियंत्रण स्थापित कर दिया गया था। सेंसरशिप तो इमर्जेंसी के साथ ही लागू हो गयी थी और उस पर बड़ी सख्ती से अमल किया जा रहा था। लेकिन चार समाचार एजेंसियों को मिलाकर, जो उस वक़्त अलग-अलग काम कर रही थीं, एक एजेंसी बना देने का फ़ैसला एक ऐसा बुनियादी और ढांचे को सिरे से ही बदल देने वाला क़दम था, जो इमर्जेंसी उठ जाने के बाद भी—अगर कभी इमर्जेंसी हटती—सेंसरशिप हट जाने के साथ-साथ अपने आप ही खत्म नहीं हो सकता था। 'समाचार' की कल्पना इमर्जेंसी के साथ नहीं पैदा हुई, बल्कि दूसरे कई उपायों की तरह इसे भी इस दौर में व्यावहारिक रूप दिया गया जब माध्यमों की ओर से कोई भी विरोध इसकी स्थापना को रोक नहीं सकता था। अखबारों और पत्रिकाओं पर तो सिर्फ़ इतनी पाबंदी थी कि शुरू में उन्हें हर चीज़ छापने से पहले सेंसर करानी पड़ती थी और बाद में सरकार की निर्धारित की हुई मार्गदर्शक दिशाओं का पालन करना पड़ता था, लेकिन इसके बावजूद उनके हाथ में स्वतंत्र अधिकार बाकी थे जिन्हें वे अधिक अनुकूल परिस्थितियों में इस्तेमाल कर सकते थे; लेकिन प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी० टी० आई०), यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया, समाचार भारती और हिन्दुस्तान समाचार से तो उनका स्वतंत्र अस्तित्व ही छीन लिया गया था, और एक इकाई के रूप में ये शासन सत्ता का सरकारी स्वर बन गये थे।

जब अल्जियर्स में १६७३ में पहली बार गुट-निरपेक्ष जगत के अखबारों से संबंधित समस्याओं पर औपचारिक रूप से विचार-विमर्श हुआ था, उसी समय इस क्षेत्र में गुट-निरपेक्ष देशों का सही रूप प्रस्तुत करने के लिए एक उपयुक्त व्यवस्था तैयार करने के प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था। उस समय मुहम्मद यूनुस अपनी अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमरीका के विभिन्न देशों की यात्रा के दौरान समय-समय पर प्रधान मंत्री के पास इस सम्बन्ध में सूचनाएं भेजते रहते थे। ये देश बार-बार यह पूछते रहते थे कि वे किस भारतीय समाचार एजेंसी के साथ सम्पर्क स्थापित करें। यूनुस महसूस करते थे कि भारत के विस्तार

लगातार चर्चा जारी रखी। उनका यह रवैया नेशनल हेराल्ड के संपादकीय के
साथ और चुनावों के बारे मे श्रीमती गांधी की अपनी टिप्पणियो के साथ जुड़ा
हुआ था, और साथ ही इसका सम्बन्ध इस बात से भी था कि लगभग रोज़ ही
शाम को वह प्रधान मंत्री की कोठी पर मौजूद रहते थे, हालांकि वह उनके साथ
नही बल्कि संजय के साथ बैठते थे और शायद अगले दिन के लिए अपने पैंतरे और
कारंवाइयों की योजनाएं तय करते थे, जबकि धवन एक लाज़िमी विश्वासपात्र
सलाहकार की तरह वहां मंडराते रहते थे। क्योंकि किसी और मामले के बारे में
श्रीमती गांधी का अपने बेटे के साथ कोई मतभेद नही था, ज़ाहिर है इस मामले
मे भी उनका कोई मतभेद नही रहा होगा। वह संजय को इस बात की पूरी छूट
दे रही थी कि वह उनकी राजनीतिक चालों का माध्यम बने। राजनीतिक बुद्धि
उनके पास थी, संजय के पास नही। उसकी रिपोर्टों का उन पर क्या असर पड़ता
होगा इसे नज़र-अंदाज़ नही किया जा सकता, और चूंकि वह अपना काम निकालने
के लिए एक गैर-राजनीतिक आदमी की कल्पित योग्यता का सहारा ले रही थी,
इसलिए वह जान-बूझकर मुसीबत मोल ले रही थी। निम्सन्देह, कोई उनको अधो
की तरह एक निरकुश कदम से दूसरा निरकुश कदम उठाने पर मजबूर नही कर
रहा था। परिस्थिति की व्याख्या इस रूप मे करने का अर्थ होगा उनकी उस सत्ता
और उनके उस प्रत्यक्ष ज्ञान से इकार करना जिसके सहारे उन्होंने दस वर्ष तक
पूरे देश का शासन संभाले रखा।

उनके कुछ साथी ओर राजनीतिक विश्लेषण करने वाले कहते हैं, "जब भी
उनके सलाहकार अच्छे रहे हैं, उन्होने बहुत अच्छा काम किया है। उनकी अपनी
कोई बहुत उल्लेखनीय क्षमताएं नही हैं।"

लेकिन सवाल यह है कि सलाहकार चुनता कौन है? उन्होंने न केवल ऐसे
सलाहकार चुने (या ऐसे लोगों को अपने चारों ओर एक साज़िशी गरोह के रूप
मे काम करने दिया) जो उस खास दौर के तकाज़ो के लिए उन्हें उचित लगे—
अपने तकाज़ों के लिए—बल्कि उन्होंने सभी क्षेत्रों मे समरसता का ध्यान रखते
हुए ऐसा किया है। इस धारणा के विपरीत कि उन्होंने कभी कोई ऐसी टीम नही
बनने दी जिसमे सभी लोग एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर काम करें, इन्दिरा
गांधी हमेशा टीम के साथ ही काम करती रही हैं। बात बस इतनी है कि उन्होंने
सलाहकारो को या टीम को कभी बहुत दिन तक टिकने नही दिया। जब उन्हें
वामपंथियों की ज़रूरत थी तो उन्होने हर कार्य-क्षेत्र मे वामपंथी रखे; जब उन्होंने
इन लोगो को हटा देने की ज़रूरत समझी तो सभी कार्य-क्षेत्रों मे उन लोगों को
हटाकर उनकी जगह दूसरे लोग रख दिये गये। इमर्जेंसी के बाद उन्होंने अप
चारो ओर जो सलाहकार जुटाये और जिन म की टीम बनायी,

ग्वालियर की भूतपूर्व महारानी विजया राजे सिंधिया" भी उसी चक्कर का शिकार हुई—यातनाएँ, जेल, पैरोल, फिर जेल—जिसका सामना इमर्जेंसी के दौरान विपक्ष के सभी लोगों को करना पड़ा था, विशेष रूप से जनसंघ के लोगो को, जिसकी वह सदस्य थीं। वह इन्दिरा गाधी के बारे मे कहती हैं, "उनमे न केवल अहंकार है बल्कि वह बेहद बेवकूफ भी है। मैं हमेशा उनकी अनुगामी रही और मैंने हमेशा उन्हे नेता माना, लेकिन वह अपने साथियों के बीच कभी खरे और खोटे की परख नही कर पायी। शायद इसीलिए वह सिर्फ अपने बेटे पर भरोसा करती हैं।"

"आप राजनीति के क्षेत्र में है और एक माँ भी हैं। क्या आप भी अपने बेटे को इस तरह बढावा देने की कोशिश करेंगी ?"

"कभी नही। अगर उसमे इतनी योग्यता होगी तो वह खुद आगे बढ जायेगा। शायद संजय मे इतनी योग्यता नहीं थी, इसीलिए तीस बरस की उम्र में भी उसे अपनी मां के सहारे की जरूरत पड़ी।"

ग्वालियर की राजमाता, जिन्हे लोग अब भी बडी श्रद्धा और प्यार से *'राजमाता' ही कहते हैं, बहुत उत्साहमयी और अपनी धुन की पक्की औरत हैं।* उन्होंने अपने इन मूल्याकन मे ऐसे बहुत-से दूसरे लोगों की भावनाओं को भी व्यक्त किया है जो अपने छोटे बेटे के प्रति श्रीमती गाधी के रवये के पीछे खाली राजनीतिक जोड़-तोड़ के अतिरिक्त और भी कोई कारण देखते है।

"लोग कहते हैं कि उसके पास कोई ऐसा भेद है और यह कि उसने विदेश में कोई ऐसी चीज रख छोड़ी है, उनके खिलाफ कोई ऐसा सबूत है कि अगर वह उससे अपना नाता तोड लें तो वह उस भेद को खोल देगा। मुझे मालूम नही, लेकिन और क्या वजह हो सकती है कि कोई माँ इस तरह अपने बेटे की मुट्ठी में रहे ?"

एक ऐसे सृजनात्मक लेखक के दृष्टिकोण से, जो हर चीज को सत्ता की राजनीति के बाहरी ताम-झाम से परे जाकर देखने की कोशिश करता है, नाटककार बलवंत गार्गी कहते हैं, "यह एक घरेलू इंसानी नाटक है। वह हमेशा अपने बेटे के दबाव मे रही हैं। संजय के बचपन के बारे मे जो किस्से सुनने को मिलते हैं उनसे तो यही लगता है कि वह लाड़-प्यार मे इतना बिगड़ गया था कि वह जो कुछ भी कहता था माँ हमेशा मान लेती थी। वह बड़ी लापरवाही से बेहद तेज मोटर चलाता था; उसकी बिगड़े हुए नौजवानों जैसी हरकतें, उसका दंभ, उसकी विवेकहीन गैर-जिम्मेदारी की बातें, उसकी मनमानी ज़िदें—माँ यह सब-कुछ देखते हुए भी अनजान बनी रही। आखिरकार वह एक ऐसा दानव बन गया जिसने उन्हे चूस-चूसकर इतना खोखला कर दिया कि उनमे अपनी इच्छा-शक्ति रह ही नहीं गयी। मैं प्रधान मंत्री की कोठी पर अपनी पत्नी के साथ एक बार रात के खाने पर उनसे मिला था, जिस वक्त वहाँ कोई और नही था। मैंने देखा कि उनमे बेहद गंभीरता और अपार शक्ति है, पर उनकी यह सारी शक्ति जरा-सी ठेस से खत्म भी हो जाती थी। उनके पोते-पोती बार-बार आकर उनकी साड़ी खीच रहे थे और बातचीत मे विघ्न डाल रहे थे। वह बोली, 'इनकी परवाह न कीजिये, यह तो पालतू जानवरो जैसे हैं।' वह बच्चो के साथ बेहद लाड़-प्यार से पेश आती हैं, हर माँ की तरह। वह शायद अपने बेटे की हर बात बर्दाश्त कर लेंगी।"

उनके भूतपूर्व वित्त-मंत्री सी० सुब्रह्मण्यम का कहना है, "मैं तो यह कहूँगा

कि १९७५ के शुरू से उन्होंने अपने साथियों की राय पर ध्यान देना बंद कर दिया। पिछली घटनाओ पर दृष्टि डालते हुए मैं सिर्फ इमर्जेंसी लागू होने तक की शिकायत कर सकता हूँ।"

"उसके बाद ?"

"मेरी राय में उसके बाद तरह-तरह के ऐसे लोगों के हाथों में, जिन्हे वह पसद नही करती थी, या तो सचमुच ताकत आ गयी या वे समझने लगे कि उनके हाथ मे ताकत है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने चुनाव कराने का फैसला जिन वजहो से किया उनमे एक वजह यह भी थी कि वह महसूस करती थी कि शायद इन लोगो के चंगुल से छुटकारा पाने का यह उनके लिए आखिरी मौका होगा। संजय के बारे मे भी मैं अकसर उनसे कहा करता था कि वह सरकार के काम-काज मे दखल देता है, लेकिन वह हमेशा यह कहकर टाल देती थी कि 'नही, ऐसी बात नही है, ये सब मनगढंत किस्से हैं।'"

"वह उससे कुछ कह क्यो नही सकती थी ?" मैंने पूछा।

"यह माँ और बेटे के बीच की बात है, और कुछ निजी बातें भी हैं।"

"कौन-सी निजी बातें ?" उन्हे कुछ अटपटा-सा महसूस करते देखकर मैंने आग्रहपूर्वक पूछा।

"मैं बता नही सकता। मैं उन सब बातो मे जाना नही चाहता।"

"क्या कोई ऐसी बात थी जिसकी वजह से वह पूरी तरह उसकी मुट्ठी मे थी ?"

"हाँ, ऐसा ही समझिये। वह अब से बहुत पहले की बात है।"

बहुत-से दूसरे कांग्रेसियों की तरह सुब्रह्मण्यम कहते हैं कि वह भी संजय से दूर ही रहने की कोशिश करते थे। "मेरे पास कभी उसका टेलीफोन नही आया, मैंने कभी उससे बात नही की। मेरा काम उसकी माँ से ही पडता था। जो भी छोटी-मोटी झडप हुई होगी वह मिलने का वक्त तय करने या ऐसी ही दूसरी मामूली बातों के बारे में हुई होगी।" सिर्फ एक बार ऐसा हुआ था कि दो बहुत महत्वपूर्ण आदमी किसी 'टेढ़ी समस्या' के सिलसिले मे उनसे यह कहने गये थे कि वह संजय से उसके बारे मे बात कर लें। "मैंने साफ मना कर दिया," सुब्रह्मण्यम ने कहा, "अगर बात करनी होगी तो मैं उसकी माँ से बात करूँगा। मुझे मालूम नही कि इन लोगो को श्रीमती गांधी ने भेजा था या नही।"

संजय ने जो बडे-बडे सौदे पटाये उनके बारे मे लोग किस तरह बातें करते थे इसका अंदाजा दो अफसरों की आपसी बातचीत से बहुत अच्छी तरह हो जाता है। ऐसा लगता है कि उनमे से एक को संजय के किसी ठेके के सिलसिले मे पूरा सहयोग न देने की वजह से लताडा गया था।

"अरे यार, तुम भी बड़े बेवकूफ हो। तुम्हे यह तक नही आता कि ठेका देने मे हेरा-फेरी कैसे की जाती है!"

"कैसे की जाती है ?" दूसरे ने उत्सुकता से पूछा।

"बिलकुल मामूली बात है। जिस तरह आमतौर पर टेंडर मँगाये जाते हैं, उसी तरह टेंडर मँगाओ। टेंडर तुम खोलोगे। तुम जिसे ठेका दिलाना चाहते हो अगर उसका टेंडर सबसे कम दर का न हो तो [illegible] दर सबसे [illegible] उसके साथ मोल-तोल शुरू कर दो। उसमे कोई [illegible] दो। [illegible] ले[illegible] तोल करो। जिसका टेंडर सबसे कम [illegible] पत[illegible] कहकर काट सकते हो कि उसे ठेका देना [illegible]

कि उसके पास वह चीज तैयार करने के लिए आवश्यक क्षमता नही है, न पैसे का ही इंतज़ाम है। आखिर मे तुम जिसको ठेका देना चाहते हो उससे कहो कि वह सबसे कम दर वाले टेंडर के बराबर अपना टेंडर दे।"

"यह सब कुछ तो मैं जानता हूँ," दूसरे अफ़सर ने निराश होकर कहा।

"तो फिर ऐसा किया क्यों नही ?"

"मैंने कोशिश तो की थी लेकिन संजय और उनकी कंपनी अपना टेंडर घटाकर सबसे कम दर वाले टेंडर के बराबर लाने को तैयार नही थे। वे ठेका तो लेना चाहते थे लेकिन अपनी दर पर! भला यह कैसे मुमकिन था ?"

जब उद्योग-मंत्रालय में कुछ अफसरों को सताने की बात आती थी, और आम लोगों के दिमाग मे यह बात बैठ चुकी थी कि इसमें हमेशा संजय का हाथ होता था, तो श्रीमती गांधी को सब मालूम रहता था कि असलियत क्या है। संसद मे उद्योग-मंत्री टी० ए० पै को मारुति के बारे में एक तारांकित प्रश्न का उत्तर देना था। संजय ने आवश्यक जानकारी देने के लिए मंत्रालय के दफ्तर जाने से इंकार कर दिया, इसलिए एक अंडर-सेक्रेटरी और एक सेक्शन-अफसर को मारुति के कारखाने भेजा गया। दोनों ने वहाँ से वापस आकर भारी उद्योगों के डायरेक्टर कृष्णस्वामी को बताया कि उन्हे न सिर्फ कोई भी जानकारी देने से इंकार किया गया बल्कि उन्हें संजय ने गालियाँ भी दीं। कृष्णस्वामी ने यह रिपोर्ट फ़ाइल के हवाले कर दी और यह कहा कि मंत्री महोदय संसद में अपने जवाब मे यह कह दें कि "जानकारी हासिल की जा रही है बाद में कभी सदन में पेश कर दी जायेगी।" कुछ ही दिन के अंदर कृष्णस्वामी के घर पर छापा मारा गया और उन पर एक्साइज के न जाने किस कानून के तहत अपने पास आधी बोतल ह्विस्की रखने का आरोप लगाया गया! कृष्णस्वामी शराब बिलकुल नही पीते और वह बोतल वही थी जो लोग विदेश से आते समय हवाई जहाज पर से लाते है। उद्योग मंत्री पै और मंत्रालय के सेक्रेटरी मनतोष सोंधी ने बड़ी मुश्किल से उन्हे इस झंझट से छुड़ाया और पै ने श्रीमती गांधी को इसके बारे मे लिखा। इस चक्कर मे खुद सोंधी भी मुसीबत मे फँस गये। जहाँ भी वह जाते, सी० आई० डी० की एक मोटर उनके पीछे लगी रहती, और उनके खिलाफ भी किसी दूसरी बुनियाद पर आरोप लगाये गये। सोंधी पिछली बातों को याद करके कहते है, "उस साल ज़िंदगी नरक हो गयी थी।"

पै ने श्रीमती गांधी को एक पत्र लिखा था। जब स्वर्णसिंह और के० सी० पंत श्रीमती गांधी के पास सोंधी की तरफ से पैरवी करने गये तो वह कुछ भी सुनने को तैयार नही थी। उसके बाद रजनी पटेल गये और पुरानी मित्रता के नाते जितना गुस्सा दिखा सकते थे उन्होने दिखाया।

"वह बेकसूर आदमी है!" रजनी पटेल ने बड़े आग्रह के साथ कहा, 'आप उन पर झूठे इल्जाम लगवाकर उन्हे सजा नही दे सकती।"

श्रीमती गांधी ने उनकी बात तो मान ली पर साथ ही यह भी कहा, "अच्छी बात है, लेकिन उनसे यह कह दीजियेगा कि अब कोई ऐसी हरकत न करें।"

रजनी पटेल की सीधे संजय से कोई बहस नही हुई थी। लेकिन विद्याचरण शुक्ला ने उनसे संजय से मिल लेने का अनुरोध किया। शुक्ला ने अपने चिर-परिचित ढंग से संबोधित करते हुए कहा, "दादा, आपको जाकर उससे मिलना चाहिए।"

"वह महज एक दोस्त का बेटा है," रजनी पटेल ने जवाब दिया, "मैं उसको

मां से मिल लूंगा, उससे नहीं।"

लेकिन राजनीति की हवा ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि एक सार्वजनिक नेता के रूप में संजय के पहले धावे के लिए रजनी पटेल को ही उसे बम्बई आने का निमंत्रण देना पड़ा। इसके कुछ ही समय के बाद रजनी पटेल को नीचा दिखाने और बम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से उनकी भूमिका को बिलकुल घटा देने की इसलिए कोशिश की गयी कि वह वामपंथी थे; उन्होंने मनतोष सोंधी की तरफ से पैरवी की थी; और एक नया संविधान बनाने के लिए संविधान सभा बुलाने के सवाल पर उन्होंने तीन बार श्रीमती गांधी से बहुत देर तक बातें की थीं और उन्हें इस सुझाव को आगे न बढ़ाने के लिए राजी करने की कोशिश की थी। रजनी पटेल ने इन्दिरा गांधी से कहा, "यह आपके लिए राज-नीतिक आत्म-हत्या की बात होगी।" रजनी पटेल बताते हैं कि प्रधान मंत्री को यह 'गलत सलाह' देने पर संजय उनसे बेहद नाराज हो गया। और इसके शीघ्र ही बाद रजनी पटेल के खिलाफ सी० बी० आई० की जांच बिठा दी गयी, कस्टम की फाइलें खुलवायी गयीं, उनके बैंक का हिसाब-किताब जब्त कर लिया गया, और यह अफवाह फैलवा दी गयी कि वह पार्टी के पैसों में गोलमाल करते रहे हैं।

ज़ाहिर बात है कि इन्दिरा गांधी संविधान सभा बुलाने के विचार से असह-मत नहीं थीं। वरना उन्होंने इस सवाल पर रजनी पटेल के साथ इतने विस्तार से बातचीत न की होती। दूसरी तरफ, जब यशपाल कपूर ने श्रीमती गांधी को बताया कि ए० पी० शर्मा ने इस समस्या पर विचार करने के लिए साठ-सत्तर संसद-सदस्यों की मीटिंग बुलायी थी और हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की विधानसभाओं से इस विचार का अनुमोदन करवा लिया था, तो उन्होंने बिगड़कर कहा, "शर्मा कौन होते हैं यह मीटिंग करने वाले!" लेकिन पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार की विधानसभाओं ने इस विचार के पक्ष में प्रस्ताव भी पास किये, हालांकि उस समय श्रीमती गांधी अफ्रीका के दौरे पर गयी हुई थीं। इसी बीच यह मामला बहस के लिए संसदीय पार्टी की कार्य-कारिणी में उठाया गया, जहां लोगों ने यह महसूस किया कि यह सारी कार्रवाई बिलकुल बौखलाहट की हालत में की जा रही है। जब श्रीमती गांधी लौटकर आयीं तो साठे उन लोगों में से एक थे जिन्होंने उनसे जाकर इस बात पर बहस की कि इसके नतीजे क्या हो सकते हैं। श्रीमती गांधी ने कहा, "जैसे ही हवाई जहाज़ से उतरकर एयरपोर्ट पर आयी, मुझे यह बताया गया कि इस तरह के प्रस्ताव पास किये गये हैं। फिर आप मुझसे इस तरह की प्रतिक्रिया की उम्मीद कैसे करते हैं?"

साठे की दलील यह है कि इस चाल के पीछे ओम मेहता और बंसीलाल का हाथ था। और संजय का भी। इन लोगों का विचार यह था कि अगर संविधान सभा विचार-विमर्श के लिए बैठेगी तो उसमें तीन-चार साल तो लग ही जायेंगे इसलिए चुनाव नहीं हो पायेंगे। तब तक सारी ताकत युवक कांग्रेस के हाथों आ चुकी होगी और वह खुद कांग्रेस को भी हड़प कर लेगी। लेकिन अजीब ब यह है कि साठे अपने ही विश्लेषण का खंडन करते हुए कहते हैं, "हो सकता है मेरी यह बात सुनने में बहुत कड़वी लगे, लेकिन मैं समझता हूं कि संजय मे तरह का राजनीति मत अपनाने की क्षमता नहीं है। वह बहुत नेकनीयत है और उसमें आम बातों की समझ-बूझ भी बहुत है, लेकिन उसे राजन जानकारी नहीं है।" फिर वह कौन आदमी था? एक ही नतीजा निक

कि जहाँ-जहाँ संजय का नाम आता है उसकी जगह हम इन्दिरा गांधी रख दें, क्योंकि संजय उनके इस चेहरे पर—दूसरे चेहरे पर—लगी हुई नकाब थी।

बहुत दिन तक आम लोगों के मन में, और खुद कांग्रेस पार्टी में यह भ्रम बना रहा कि श्रीमती गांधी को संजय की इन दीवानेपन की हरकतों का पता नहीं था। लेकिन हम किसी भी क्षेत्र में ध्यान से देखें तो हमें उनकी पहलकदमी, उनकी जानकारी और उनकी राजनीतिक मंजूरी का सबूत मिलता है। हर जगह लगता यह है कि संजय उनके खिलाफ जा रहा है लेकिन हर जगह था यह कि दोनों समानांतर जा रहे थे। हर बार राजनीतिक मंच पर उसे आजमाइश के लिए, परिस्थिति की जानकारी के लिए इस्तेमाल किया गया। इस पुस्तक का मूल विषय यही बात है, उसके निजी घोटाले और पैसों का गोलमाल नहीं। कांग्रेस के गौहाटी अधिवेशन में जब श्रीमती गांधी ने यह कहा कि संजय पर हमला मुझ पर हमला है और दिल्ली में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की एक मीटिंग में उन्होंने यही बात दोहरायी, तब जाकर कांग्रेस के नेताओं की आँखों पर से आदर्शवादी भ्रम का परदा हटने लगा।

चंद्रजीत यादव कहते हैं, "उस वक्त लोगों ने महसूस किया कि अगर चुनाव के बल पर सत्ता फिर उनके हाथ में आ गयी तो वह और भी क्रूरता से शासन करेंगी।"

"क्या आप सचमुच ऐसा समझते हैं?"

"बहरहाल, निरंकुश शासन में उनका विश्वास और मजबूत हो गया होता और संजय और बंसीलाल छा गये होते।"

इन्दिरा गांधी जान-बूझकर देश को डिक्टेटरशाही की तरफ ले जा रही थीं, लेकिन सिर्फ उस हद तक जहाँ तक उन्हें इसके लिए मौका दिया गया। वह जो कुछ कहती थीं और उसे व्यवहार में जिस रूप में सफलता या विफलता के साथ पूरा किया जाता था, इनके बीच के हर अंतर्विरोध का यही रहस्य है। उन्होंने सरदार स्वर्णसिंह की अध्यक्षता में संविधान में संशोधनों के लिए एक कमेटी नियुक्त की, जिसका संसद में कांग्रेस के बाकी नेताओं ने समर्थन किया। लेकिन वह दूसरी संविधान सभा बुलाने के विचार को और आगे नहीं बढ़ा सकीं क्योंकि उन्होंने देखा कि पार्टी के अंदर इसका बहुत विरोध हो रहा है। उन्होंने वह धारा तो शामिल करा दी जिसमें कहा गया था कि प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और लोकसभा के अध्यक्ष के चुनावों के बारे में कोई मुकद्दमा अदालतों में न जाये लेकिन उन्होंने अपने इस कुख्यात सुझाव पर जोर नहीं दिया कि प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति और गवर्नरों को अपने पद पर आसीन रहने से पहले या उसके बाद भी किये गये किसी अपराध के लिए अदालत में फौजदारी कानून की कार्रवाई से जीवन-भर के लिए सर्वथा मुक्त रखा जाये।

इस सुझाव पर तो बेहद उत्साही मार्गरेट आल्वा भी दंग रह गयीं। यह विधेयक राज्यसभा में पेश किया गया, सदस्यों को तीन लाइन का एक आदेश दे दिया गया कि उन्हें उसके पक्ष में वोट देना है, दो भाषण हुए, सबने वोट दिया और चले आये। सभी दंग थे। इसलिए मार्गरेट आल्वा प्रधान मंत्री से मिलने गयीं। श्रीमती गांधी के बारे में हमेशा से यह धारणा रही थी कि अगर आप उनका विश्वास प्राप्त कर लें तो वह आपकी बात सुनेंगी।

"मैडम," मार्गरेट आल्वा ने प्रधान मंत्री से कहा, "मैं अभी बहुत नयी हूँ,

पास आना पडा । जिस चीज के पक्ष में हम लोगों ने वोट
...भी बहुत दु:खी है । मुझे मालूम नही कि दूसरों को आपसे
...ोगा कि नहीं...।"
...ही हो चुका है ?" श्रीमती गांधी ने बड़े भोलेपन से पूछा ।
...जल्दी-जल्दी उसके पक्ष में वोट देने पर मजबूर किया गया,
...राज़ है," मार्गरेट आल्वा ने कहा ।
...," श्रीमती गांधी ने कहा ।
...लोकसभा मे स्वीकृति के लिए भेजा ही नही गया ।

"१९ एक बार फिर जब गिरफ्तारियो से पहले चंद्रशेखर को जयप्रकाश नारायण के साथ संबंध रखने के अपराध मे संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी से निकाल देने का फैसला किया गया, तो पार्टी का संविधान इस तरह बदलवाने की कोशिश की गयी कि लोगो को कोई कारण बताये बिना ही पार्टी से निकाला जा सके। विद्याचरण शुक्ला और रघुरमैया इस सुझाव को मंजूर कराने के लिए ज़ोर लगा रहे थे। मार्गरेट आल्वा ने फिर एतराज़ किया। शुक्ला ने बाद मे मार्गरेट से पूछा, 'आपको अपनी अक़्ल का इतना सबूत देने की क्या ज़रूरत थी ? आप किस बात का आश्वासन चाहती हैं ? अगर हम चाहे तो कोई वजह बताये बिना ही आपको पार्टी से निकाल बाहर कर सकते हैं !"

इस पर मार्गरेट ने गुस्से से कहा, "तो फिर आप संविधान को ही क्यो नही उठाकर फेंक देते ? आप लोगो को यह क्यों बताना चाहते है कि आपने उसमे संशोधन किया है ?"

जहाँ कही श्रीमती गाधी को ऐसा लगता था कि बात हद से आगे बढती जा रही है, वह थोडा-सा पीछे हट जाती थी। जब ओम मेहता और रघुरमैया उनके पास यह सुझाव लेकर गये कि संसद की अवधि बढाकर सात वर्ष कर दी जाये तो उन्होंने बिगडकर कहा, "मुझे यह बात पसद नही है !" तब फैसला यह किया गया कि उसे बढाकर छ. वर्ष कर दिया जाये। "अच्छी बात है, लेकिन अगले साल मेरे पास यह कहते हुए न आइयेगा कि आप उसे बढवाकर आठ साल कर देना चाहते हैं," श्रीमती गाधी ने कहा।

अगर कांग्रेस के नेताओं ने यह फैसला कर लिया होता कि वे इस तरह धीरे-धीरे एक औरत का शासन नही स्थापित होने देंगे तो वे उसे रोक सकते थे। लेकिन इमर्जेंसी से पुराने नेताओं को बहुत गहरा आघात पहुँचा था और नये नेता उस कांग्रेस पार्टी की उपज थे जिसके अपने चुनाव कई वर्षों से नहीं हुए थे। "हमेशा कोई न कोई वजह बता दी जाती थी," चह्वाण ने कहा। "आम रवैया यह मालूम होता था कि जैसा चल रहा है चलने दो।" लेकिन बाद में चलकर जो कुछ हुआ उससे यह स्पष्ट है कि श्रीमती गांधी ने संगठन पर अपना शिकंजा उसी तरह कसा था जिस तरह बाद मे उन्होंने अपने मंत्रिमंडल को बंदी बना लिया था। पार्टी संगठन के विभिन्न पदों पर जो लोग ऊपर से बिठा दिये जाते थे, उनके बारे मे यह यकीन रहता था कि वे निजी तौर पर उनका साथ देंगे। वे सब लोग संजय का सहारा लेकर श्रीमती गांधी के बिलकुल निकट पहुँच जाना चाहते थे, लेकिन वे इतने खुशामदी हो चुके थे कि उन्होंने कभी श्रीमती गाधी को यह नहीं मालूम होने दिया कि जनता के बीच उनकी लोकप्रियता कितनी तेजी से खत्म होती जा रही है।

एक बात ऐसी थी जिसका श्रीमती गांधी को भी सचमुच पता नहीं था—

...ी के दो चेहरे

और वह यह थी कि संजय के बारे में लोग क्या सोचते हैं। उन्हें यह विश्वास करने का मौका ही नहीं दिया गया कि शुरू-शुरू में उत्सुकतावश उसके चारों ओर जो भीड़ें जमा हो जाती थीं वे घटने लगी थीं, और हर राज्य में जो बड़े-बड़े स्वागत-समारोह संगठित किये जा रहे थे उन सबकी बुनियाद पैसा, डर और इमर्जेंसी पर टिकी थी।

संजय ने विभिन्न राज्यों के अपने तूफानी दौरे १२ सितंबर १९७५ को शुरू किये जब सीताराम केसरी ने उन्हें बिहार आने का निमंत्रण दिया। केसरी ने बताया, "मैं उसे अकेले ही सदाकत आश्रम ले गया। उसके लिए उस समय कोई ऐसा खास इंतजाम नहीं किया गया जैसा बड़े लोगों के लिए किया जाता है। उसे बुलाना एक स्वाभाविक बात थी। बड़े लोगों के बेटे-बेटियों को हमेशा पुरस्कार बाँटने या परोपकार के कामों में हाथ बँटाने के लिए बुलाने की तो परंपरा रही है। और मैं उसके विचारों से भी बहुत प्रभावित था। मैं समझता था कि उस समय जिस चांडाल चौकड़ी ने श्रीमती गांधी को घेर रखा था उससे वह टक्कर ले सकता है।" जाहिर है कि केसरी का इशारा वामपंथियों की तरफ था।

"आपको तो मालूम होगा कि यह सारा सिलसिला किस तरह शुरू हुआ," धवन ने कहा। "पंजाब के मुख्य मंत्री ने उसे फाजिल्का बुलाया था। इसलिए बंसीलाल को फौरन यह सूझी कि हरियाणा में उसके लिए बहुत बड़ा स्वागत-समारोह संगठित किया जाये। दोनों में होड़ लग गयी। मैंने बंसीलाल को मना किया। मेरा मन अंदर से यह कह रहा था कि प्रधान मंत्री को इस तरह की बातें अच्छी नहीं लगती। मैं जानता हूँ कि उनका दिमाग किस तरह काम करता है।"

[illegible]

हार [illegible]

से, [illegible]

> संजय गांधी ने कहा कि युवकों को सामाजिक बुराइयों को दूर करना चाहिए।...केन्द्रीय निर्माण तथा आवास-मंत्री उनके साथ थे।...
>
> श्री संजय गांधी ने कहा कि भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए हमें किसी 'वाद' की नहीं बल्कि काम की जरूरत है।...अमुक केन्द्रीय मंत्री उनके साथ थे।...
>
> संजय गांधी ने बंगलौर में व्यावहारिक काम का अपना पाँच-सूत्री कार्यक्रम पेश किया—उनका स्वागत मुख्य मंत्री देवराज अर्स ने किया।...

आंध्र में केन्द्रीय मंत्री रघुरमैया ने संजय गांधी की इतनी भरपूर प्रशंसा की कि उनके साथी भी अटपटा महसूस करने लगे। उन्होंने कहा, "मैं नेहरू-परिवार की दो पीढ़ियों की सेवा कर चुका हूँ और मुझे बहुत खुशी होगी अगर मुझे तीसरी पीढ़ी की भी सेवा करने का मौका मिले...।"

३१ अक्तूबर १९७६ तक महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री एस० बी० चह्वाण ने बंबई में इस प्रकार का हर भ्रम दूर कर दिया था कि संजय का स्वागत केवल युवकों की आवाज के रूप में किया जा रहा था। इस अनुभवी राजनीतिज्ञ ने भी सबके स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा, "वह जनता का नेता है।"

पश्चिम बंगाल में वह कलकत्ते में केवल दस घंटे रहा और इतनी ही देर में

लोग पागलों की तरह झूम-झूमकर "संजय जिंदाबाद, संजय जिंदाबाद!" के नारे लगाने लगे। मुख्य मंत्री सिद्धार्थशंकर रे ने श्रीमती गांधी को लिखा, "यह सचमुच चमत्कार था।"

देवकांत बरुआ ने उसकी जो प्रशस्ति की वह सबसे जोरदार थी क्योंकि उसमें कुछ लोगों के साथ उसकी तुलना करके उसे तर्कसंगत बनाने की कोशिश की गयी थी।

"जब महाराजा रणजीतसिंह पंजाब के राजा बने उस वक्त उनकी क्या उम्र थी? अट्ठारह साल! जब शंकराचार्य का देहांत हुआ उस समय उनकी क्या उम्र थी? जब स्वामी विवेकानंद मरे उस समय वह कितने वर्ष के थे? उनतालीस साल! जिस वक्त अकबर ने दीने-इलाही के विचार की कल्पना की थी उस वक्त वह कितने बड़े थे? बीस बरस की उम्र को भी नहीं पहुँचे थे। इस देश में नौजवानों ने बहुत बड़े-बड़े काम किये हैं और बहुत-सी गड़बड़ियाँ बूढ़े लोगों ने पैदा की हैं।"

सच तो यह है कि श्रीमती गांधी के नजदीकी लोग उनको बेटे के बढ़ते हुए करिश्मे के बारे में इतना बढ़ा-चढ़ाकर बताते रहते थे कि ये लोग खुद उन बातों पर विश्वास करने लगे।

"आपको पुराणों की वह कहानी याद है?" सीताराम केसरी ने पूछा। "एक ब्राह्मण देवता एक बकरी का बच्चा लिये हुए कहीं जा रहे थे। पाँच डाकू उस बकरी को चुराना चाहते थे, लेकिन उन्होंने सोचा कि अगर ब्राह्मण को गाँव के पास पकड़ेंगे तो शोर मच जायेगा। इसलिए उन पाँचों ने एक-एक मील की दूरी पर डेरा जमाया। 'महाराज, क्या ले जा रहे हैं?' पहले चोर ने पूछा। 'बकरी का बच्चा है,' ब्राह्मण ने जवाब दिया। "नहीं, नहीं, यह तो कुत्ते का पिल्ला है,' चोर ने कहा। दूसरे मील पर पहुँचने पर दूसरे चोर ने खुशी से उछलकर कहा, 'पंडितजी, कितना सुंदर कुत्ते का पिल्ला है आपका!' 'नहीं,' ब्राह्मण ने हँसकर कहा, 'यह तो बकरी का बच्चा है।' जब तीसरे मील पर तीसरे चोर ने उसी तरह खुश होकर कहा, 'आप यह कुत्ते का पिल्ला हमें क्यों नहीं दे देते, बड़ा सुंदर है,' तो ब्राह्मण को बड़ा गुस्सा आया लेकिन साथ ही मन में कुछ संशय भी पैदा हुआ। चौथे मील पर चौथे चोर ने कहा, 'आप इतना सुंदर कुत्ते का पिल्ला लेकर कहाँ जा रहे हैं?' ब्राह्मण सोचने लगा कि शायद मेरा दिमाग खराब हो रहा है। पाँचवें मील पर जब पाँचवें चोर ने ब्राह्मण को पुकारकर कहा कि उसका कुत्ते का पिल्ला बहुत सुंदर है, तो उसे यकीन होने लगा कि सचमुच उसके पास कुत्ते का पिल्ला ही है, और चूँकि कुत्ते का पिल्ला उसके किसी काम का नहीं था इसलिए उसने झुँझलाकर बकरी का बच्चा उस चोर को दे दिया और अपनी राह ली। आप इन्दिराजी को दोष कैसे दे सकते हैं? उनके साथ यही हुआ। उनको विश्वास करना पड़ा कि संजय बहुत महान है।"

मध्य प्रदेश के नेता अर्जुनसिंह" बताते हैं, "मैंने विद्याचरण (वी० सी० शुक्ला) से कहा था कि संजय को इतना न चढ़ायें। अगर इन्दिराजी को कोई गलती दिखायी दे जाती तो वह उसे ठीक कर सकती थीं। मैं समझता हूँ कि बुनियादी तौर पर वह बहुत दयालु स्वभाव की, विवेकी और संवेदनशील हैं। आम कांग्रेसी समझता था कि बुराई की जड़ घर में ही है।"

इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री थीं लेकिन वह माँ भी थीं। केशवदेव मालवीय ने जब उनसे संजय की कुछ गलतियों के बारे में चर्चा की तो उन्होंने कहा था, "बेहद

प्यार है उससे।" उन दिनों एक घटना की बहुत चर्चा थी, जिसका क़िस्सा मुझे उनके मंत्रिमंडल के एक भूतपूर्व मंत्री ने बताया था, कि एक बार संजय के सामने उस संकट के बारे में बहस के दौरान, जिसकी वजह से इमर्जेंसी लागू करनी पड़ी, श्रीमती गांधी ने संजय के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "ये है वह मज़बूत हाथ जिन्होंने मुझे बचाया।" इसलिए उनका यह सोचना कोई अनहोनी बात नहीं थी कि संजय नेहरू का उत्तराधिकारी बन सकता है।

संजय की राजनीति में बढ़ती हुई भूमिका को स्वीकार करते हुए, उसकी सफलता की संभावना को बढ़ावा देने के लिए और उसके दौरों पर सरकारी मान्यता की मुहर लगा देने के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष बरुआ ने सभी मुख्य मंत्रियों को पत्र भेज दिये कि जब भी वह कहीं जाये उसे हर प्रकार की सुविधा और पूरा सम्मान दिया जाये। यह साबित करने के लिए कि वे उसकी भीड़ जुटाने की क्षमता को अच्छी तरह जानते हैं, उन्होंने कहा कि उसके लिए सुरक्षा का पूरा बंदोबस्त किया जाना चाहिए। उस समय प्रधान मंत्री के सेक्रेटेरियट ने इंटेलिजेंस ब्यूरो को जबानी आदेश दे दिये थे। चीफ सिक्योरिटी आफिसर लोवो ने विभिन्न प्रदेशों का काम देखने वाले स्पेशल ब्रांच वालों को—जो विभिन्न शहरों में इंटेलिजेंस ब्यूरो की शाखाएँ थी—आदेश भेज दिये। ये आदेश पुलिस अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिये थे। आम धारणा के विपरीत, संजय के लिए सुरक्षा की वैसी ही व्यवस्था की जाती थी जैसी कि मुख्य मंत्रियों के लिए। एक बात तो यह कि मुख्य मंत्रियों के साथ कोई 'एस्कोर्ट कार' नहीं चलती लेकिन उनके आगे पाइलट कार चलती है। प्रधान मंत्री के लिए सुरक्षा का बंदोबस्त बिलकुल अलग होता है, राष्ट्रपति के लिए की जाने वाली व्यवस्था से भी अलग।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री नारायणदत्त तिवारी एक ऐसे आदमी की बेहतरीन मिसाल थे जो बातें तो बड़ी समझदारी की करते थे लेकिन उनका आचरण १ सफदरजंग रोड की नौकरी में लगे हुए एक मुस्तैद कारिंदे की तरह ही था। वह आखिर अपनी हद से इतना आगे क्यों निकल गये?

"ए० आई० सी० सी० की तरफ से बरुआजी ने एक गश्ती चिट्ठी भेजी थी कि हम लोग संजयजी के लिए जो कुछ भी मुमकिन हो करें। इसलिए जब वह उत्तर प्रदेश आया तो हर जगह मैं उसके साथ गया। इसके बाद एक और चिट्ठी आयी कि इन्दिराजी ने कहा है कि हम लोग हवाई अड्डे पर संजय का स्वागत करने न जाया करें। लेकिन साथ ही हमसे यह भी कहा गया था कि वह बहुत बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा कर सकता है इसलिए हमें उसके साथ रहना चाहिए। खुद उसने भी एतराज किया कि उसे सरकार की कोई मदद नहीं चाहिए, फिर भी उसके लिए सब-कुछ किया जा रहा था। अखबारों में छपता था, टेलिविजन पर दिखाया जाता था। वह सब-कुछ जानती थी।"

"क्या आप समझते हैं कि यह सब-कुछ ठीक था?"

"सिद्धांत के हिसाब से देखा जाये तो शायद ठीक नहीं था, लेकिन व्यवहार में, आपको मालूम ही है—करना ही पड़ता था।"

"क्या आप डरते थे?"

तिवारीजी चुप रहे।

"क्या आपको यह नहीं मालूम था कि हर तरफ गड़बड़ी पैदा होती जा रही है, कि लोगों में नाराजगी बढ़ रही है, कि कांग्रेस नष्ट होती जा रही है?"

"भगवान के लिए आप मुझे पं या दूसरे लोगों की तरह न ..

अपने सर से दोष टालने के लिए कुछ नहीं करूँगा। मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूँगा जिससे श्रीमती गांधी की तकलीफ हो...।"

"लेकिन क्या एक वक्त ऐसा नहीं आता, जब देश या पार्टी का महत्त्व किसी भी व्यक्ति से बढ़कर हो जाता है ? आप कसौटी किस चीज को मानते हैं ?" मैंने ज़िद करके पूछा।

"वफादारी को," तिवारीजी ने सहज भाव से कहा।

ब्रह्मानंद रेड्डी ने पहले जो कुछ भी किया था उस पर वह गर्व कर सकते थे, और इमर्जेंसी के दौरान जो कुछ हुआ था उसे वह भूल जाना चाहते हैं—

"बेचारे," उनके एक सहयोगी ने कहा, "उनकी कोई हैसियत ही नहीं रह गयी थी। उन्हें श्रीमती गांधी से निजी तौर पर शिकायत है।" वह एक अनुभवी कांग्रेस की तरह इस समस्या की तह तक जाने की कोशिश करते हैं।

"पतन तो बरसों पहले ही शुरू हो गया था। जब कोई आदमी जरूरत से ज्यादा बड़ा हो जाता है, तो इसका नतीजा यह होता है कि दूसरों का नुकसान होता है। हमारे पास अखिल-भारतीय स्तर पर और राज्यों के स्तर पर ऐसी हैसियत वाले लोग होने चाहिए जो अपने बल पर नेता माने जा सकें। अगर किसी को ऊपर से नेता बनाकर बिठा दिया जायेगा तो वह केवल एक प्रशासक की तरह काम कर सकता है। लोगों को महसूस होना चाहिए कि वह उनका चुना हुआ आदमी है, तभी वह जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझेगा। हम आपस की बातचीत में तो इस पर बहस करते थे लेकिन प्रदेश कांग्रेस कमेटी में नहीं करते थे और न ही ज़ोर देकर इस सवाल को दूसरे मंचों पर उठाते थे।"

"क्यों ?"

"शायद जरूरत से ज्यादा रौब-दाब था, हो सकता है जरूरत से ज्यादा डर रहा हो, मुमकिन है जरूरत से ज्यादा भावुकता रही हो—सभी चीजें मिली हुई थीं। शायद लोग अपनी सफलताओं में मगन थे, निश्चित थे...।"

"लेकिन यह हालत तो कुछ ही दिन रही," मैंने कहा।

"अरे नहीं !" ब्रह्मानंद रेड्डी ने बड़ी चतुराई का सबूत देते हुए कहा। "यह बात बहुत दिन चली।"

"अगर आप महसूस करते थे कि कोई काम गलत किया जा रहा है तो आपने इमर्जेंसी के दौरान उसके खिलाफ आवाज क्यों नहीं उठायी ?"

"मैं क्यों अपने को ऐसी हालत में डालता कि खुद मुझे शर्मिंदगी होती ? मैं संजय गांधी से कभी मिला नहीं। मैंने कभी अपनी तरफ से बिना किसी काम के श्रीमती गांधी से मिलने की कोशिश नहीं की। मैं जो कुछ कहना चाहता था वह फ़ाइलों में दर्ज है। मैं इस झंझट में फँसना नहीं चाहता था। हो सकता है कि एक नहीं कई ओम मेहता रहे हों या कोई और हो, लेकिन उन लोगों ने मुझसे कभी कुछ करने को नहीं कहा।"

"लेकिन एक बहुत ही नाजुक दौर में देश का शासन चलाने में आपका हाथ था," मैंने कहा।

"मैंने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके बारे में मैं महसूस करता था कि वह मुझे नहीं करना चाहिए, बल्कि मैं अलग रहा," रेड्डी ने अपना तर्क दिया और उन्होंने एक बहुत ही अच्छी मिसाल दी—'मैं कीचड़ में कमल की तरह था।'"

ऐसा लगता है कि कांग्रेस के बाकी नेताओं का भी यही हाल था। फर्क सिर्फ

इतना था कि उनमें से कुछ पर धब्बे लगते जा रहे थे।

१८ जनवरी को इन्दिरा गांधी ने चुनाव कराने की घोषणा की।

अंदरूनी मजबूरी और बाहरी जरूरत दोनो ही की वजह से उन्हे ऐसा करना पड़ा। जैसा कि उनका तरीका था, उन्होंने राज्यों के मुख्य मंत्रियो, अपनी कैबिनेट के मंत्रियों या गृह-मंत्री, किसी से भी सलाह नहीं ली, यहाँ तक कि राष्ट्रपति फख़रुद्दीन अली अहमद तक से बात नही की, जैसा कि राष्ट्रपति ने ख़ुद बाद में संकेत दिया। श्रीमती गांधी ने डिक्टेटरशिप को लोकतंत्र के साथ मिला देने की कोशिश की थी। लेकिन उनको कामयाबी नही मिली। ऊपर-ऊपर शांति थी, लेकिन अंदर-अंदर तूफान उमड रहे थे। कांग्रेस को तो जैसे मूर्च्छा-सी आ गयी थी, लेकिन जनता में हलचल थी।

विनोबा भावे[11] तक जून १९७६ से इमर्जेंसी हटा लेने का अनुरोध कर रहे थे। अपने मौन-व्रत के वर्ष के दौरान इमर्जेंसी को **अनुशासन पर्व** कहकर उन्होंने उसका जो समर्थन किया था उसकी वजह से उन्हे सरकारी संत कहा जाने लगा था। सच तो यह है कि आचार्य विनोबा भावे ने श्रीमती गांधी का इस हद तक समर्थन किया था कि २५ जून १९७५ से पहले उन्होंने यह सुझाव दिया था कि वह जयप्रकाश के साथ सख्ती से पेश आ सकती है क्योंकि वह अराजकता की ओर ले जाने वाले आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। लेकिन छ महीने बाद ही ख़ुद विनोबा भावे के साथ बड़ी सख्ती का बर्ताव किया गया। उसके बाद उन्होंने इमर्जेंसी हटाने का बिलकुल ही विपरीत नारा दिया। अंडरग्राउंड छापे गये एक पर्चे में इसका बहुत सजीव चित्रण किया गया था।

> ११ जून को पुलिस ने विनोबा भावे के आश्रम पर छापा मारा और बड़ी देर तक एक-एक चीज़ की तलाशी ली। बताया जाता है कि भूदान साहित्य (उनकी पत्रिका मैत्री) की २५० प्रतियां ज़ब्त कर ली गयी। यह विनोबा भावे और उनके अनुयायियों के लिए एक चेतावनी थी कि अगले महीने जब उनकी मीटिंग हो तो वे 'मैड' (शाब्दिक अर्थ 'पागल', मैडम डिक्टेटर का संक्षिप्त रूप—अनु०) के मामलात मे टाँग न अडायें, इस तलाशी के दौरान हजारों बिफरे हुए अनुयायियों को पुलिस ने आश्रम के पास नही आने दिया।

उस समय श्रीमती गांधी सोवियत संघ की यात्रा पर गयी हुई थी। उनके लौटने पर जब सीताराम केसरी उनसे मिले तो उनको इस घटना के बारे मे बताया। श्रीमती गांधी ने कहा कि उन्हे इसके बारे में कुछ भी मालूम नही था और वह यह जानकर बहुत परेशान थी। उन्होने कहा कि राज्यों की सरकारें अपनी मनमानी करती हैं और जब लोग पूछते हैं तो कह देती हैं कि प्रधान मंत्री का आदेश है। सितंबर तक आचार्य विनोबा भावे इमर्जेंसी लागू रहने की वजह से इतने बेचैन हो उठे कि उन्होंने गो-हत्या पर पाबंदी लगाने के सवाल पर अनशन कर दिया। श्रीमती गांधी पर प्रभाव डालने की योजना के एक हिस्से के रूप मे कुछ संसद-सदस्य संजय से मिले।

"हम लोग उन्हे मरने नही दे सकते," उन लोगों ने कहा।

"कोई बूढ़ा उठकर धमकी दे दे और हम घुटने टेक दें?" संजय ने हमेशा की तरह बड़ी बेरहमी के साथ कहा। "ऐसा ही है तो हम सरकार ही क्यों न उनके हवाले कर दें। मरते हैं तो मरें!"

"उन्हें कोई बूढ़ा आदमी नहीं कहा जा सकता," संसद-सद
दिया। "इस देश में दो ही लोगों ने राज किया है—राजाओं ने
ने। अगर इनमें टक्कर हुई तो हार हमेशा राजा की ही होगी।"

"नहीं," संजय ने कहा, "उसका इंतजाम ममी कर लेंगी।"

आचार्य भावे की सेक्रेटरी निर्मला देशपांडे ने बंसीलाल का र
करने की कोशिश की, लेकिन वह टस से मस नहीं हुए। 'बहुत-से
रहते हैं। जब मोरारजी ने गुजरात में भूख हड़ताल की थी उस वक
आगे घुटने टेककर गलती की थी। अब हम दुबारा वही गलती
वाले।"

जब एक प्रतिनिधि-मंडल प्रधान मंत्री से मिलने गया तो उन्हों
व्यक्त की। सच तो यह है कि दो महीने बाद उन्होंने अपने ऊपर
से कोई बंधन लगाये बिना बड़े गूढ़ ढंग से आचार्य विनोबा भावे
संदेश भेजा। सीताराम केसरी २१ दिसंबर को उनसे मिलने सा
उनके दफ्तर गये और उन्हें बताया कि वह आचार्य भावे से मिलने
बिना यह कहे हुए कि यह बात वह खासतौर पर विनोबाजी के पास
देना चाहती है, उन्होंने कहा, "आखिर चुनावों को कब तक टा
है ?"

केसरी ने बताया, "जब मैं २३ तारीख को विनोबाजी से
उन्हें एक छोटा-सा पर्चा लिखकर—वह अभी मौन-व्रत धारण किये
सूचना दी कि चुनाव होने वाले हैं। वह अब तक इस बात से बहुत
यह बात स्पष्ट थी कि इन्दिराजी संजय से प्रभावित नहीं थी क
चुनाव बिलकुल ही नहीं चाहता था।"

"घोषणा से दो दिन पहले संजय ने मुझसे कहा था कि चुनाव
नारायणदत्त तिवारी ने कहा, "मैं भी चुनाव कराने के खिलाफ थ
नहीं कि मैं लोकतंत्र के खिलाफ हूँ, बल्कि इसलिए कि यह उसके लि
वक्त नहीं था। हमने कुछ ऐसे कदम उठाये थे, जिनके लिए जनता
बेचैन थी, लेकिन इस तरह के काम संसदीय लोकतंत्र में हो ही नह
यह बिलकुल वैसी ही बात थी जैसे कोई मरीज इलाज के लिए अ
बारह इंजेक्शन लगने हों। आप उसे आठ इंजेक्शन तो लगा दें, जिन
दर्द हो। फिर अचानक, जब सिर्फ चार रह जायें, तो आप बाकी के
मरीज की राय पर छोड़ दें। क्या वह उनके पक्ष में राय देगा ? ह
वह कहेगा, होमियोपैथी या किसी दूसरी दवा से काम चला लूंगा
तकलीफ बर्दाश्त नहीं करना चाहता। हम चुनाव के लिए
थे।"

एक ऐसी औरत के बारे में, जो जान-बूझकर बहुत बड़े-बड़े दाँव लगाकर जुआ मेलने की आदी रही हो, इस प्रकार का दृष्टिकोण केवल कल्पना पर आधारित मालूम होता है। वह अच्छी तरह जानती थी कि वह क्या चाहती है। इन्दिरा गांधी अपने काम करने के ढंग के लिए जनता की मजूरी, अपने बेटे के लिए राजनीतिक वैधता और अपने मनचाहे ढंग से शासन करते रहने का निरंतर अवसर चाहती थीं। वह अगर यह दिखा देती कि निरकुश शासन के दौर के बाद भी वह चुनाव जीत सकती हैं—जैसा कि कोई भी देश अभी तक नही कर पाया था, या उसे ऐसा करने का मौका ही नहीं मिला था—तो उन्हे अपने देश मे और विदेशो मे आलोचना का सामना न करना पडता। अगर वह जीत जाती तो वह उस गरोह से छुटकारा पा जातीं जो उनके चारो ओर जमा हो गया था, जिसे साठे खुद अपनी पैदा की हुई मुसीबत कहते है। यह कोई नयी बात न होती। ज्यों ही उनके अपने राजनीतिक तकाजो के लिए इन लोगों का कोई इस्तेमाल न रह जाता वह इनसे भी उसी तरह पीछा छुडा लेती जिस तरह उन्होने दूसरो से पीछा छुडा लिया था।

उन्होने धीरे-धीरे ढील देना शुरू कर दिया था। जयप्रकाश नारायण नवबर १९७५ मे ही छोड़ दिये गये थे, उसके बाद चरणसिंह छोडे गये, फिर बीजू पटनायक[11] और इसके बाद एक-एक, दो-दो करके दूसरे लोग भी छोडे जाने लगे। मार्च १९७६ में कांग्रेस और विपक्ष के बीच समझौते की बातचीत की कुछ चर्चा चली लेकिन कोई नतीजा नही निकला क्योंकि वह ऐसा चाहती ही नही थी। यह विपक्ष को कमजोर करने की एक चाल थी। उन लोगों का मनोबल बहुत टूटा हुआ था, हालांकि जयप्रकाश को इस बात का पूरा मौका दिया जा रहा था कि वह विपक्ष की एक पार्टी बना लेने की तरकीबें करते रहें। श्रीमती गाधी का तर्क यह था कि ये लोग कांग्रेस की संगठित ताकत को कभी चुनौती नही दे पायेंगे क्योंकि उसके पास पैसे और आज्ञाकारी कार्यकर्त्ताओं की कोई कमी नही थी।

मई १९७६ में यूनुस ने श्रीमती गांधी से कहा कि सेंसरशिप से कोई फायदा नही हो रहा है। उन्होने बात तो मान ली लेकिन हुआ कुछ नही। जुलाई मे एक बार फिर यूनुस ने इसके बारे में तर्क देते हुए एक बहुत लबा नोट तैयार करके भेजा। इस सवाल पर बहस करने के लिए एक मीटिंग बुलायी गयी जिसमे सभी संबधित अफसर मौजूद थे। विद्याचरण शुक्ला ने कहा कि कनाडा जाने से पहले वह इसके बारे मे मार्गदर्शक हिदायतें जारी कर देंगे और वहाँ से वापस लौटने पर सेंसरशिप हटा लेंगे। वापस लौटने पर उन्होने सिर्फ विदेशी पत्रकारो पर से सेंसरशिप हटायी। यूनुस ने बिलकुल साफ कह दिया कि यह तो सरासर मजाक है कि हम अपने अखबार वालो को तो सजा दें और बाहर के लोग फायदा उठायें। श्रीमती गाधी ने कहा कि वह यूनुस से सहमत हैं, लेकिन जैसा कि हमेशा होता आया था, नतीजा कुछ और ही निकला। सेंसरशिप चुनाव कराने के ऐलान के वक्त तक नही हटायी गयी।

खुफिया विभाग की रिपोर्टों के अनुसार वह २८० सीटें आसानी से जीत सकती थीं, क्योंकि फसल बहुत अच्छी होने वाली थी। ऐसी हालत में तो चुनाव करा लेना ही ठीक था। श्रीमती गाधी को जनता मे अपने भरोसे का विश्वास था; और चुनाव की चुनौती देने की एक वजह यह भी थी कि उन्हे यकीन था कि संजय जीत जायेगा। वह हमेशा से चुनाव कराने का विरोध करता आया था, लेकिन चुनाव मे खड़े होने के खिलाफ नहीं था।

फरवरी के आरंभ में जो राजनीतिक वातावरण था उसे पहचानते हुए यशपाल कपूर ने संजय से कहा, "भैया, चुनाव के लिए न खड़े होना।"

"क्यों ?" संजय ने कहा, "हद-से-हद हार ही तो जाऊँगा।"

"इसके बारे में इस तरह नहीं सोचना चाहिए। अगर पालियामेंट में आना ही चाहते हो तो हम लोग किसी उप-चुनाव में भी तुम्हें ला सकते हैं।"

"लेकिन मैं क्यों न लड़ूँ।"

"पिछली बार उन्होंने मारुति का झंझट खड़ा किया था, लेकिन उस वक्त इन्दिरा लहर थी इसलिए कुछ नहीं हुआ। इस बार वे माँ और बेटे का बखेड़ा खड़ा करेंगे और इस बार कोई लहर भी नहीं है।"

१५ फरवरी को रायबरेली जाने से पहले यशपाल कपूर ने प्रधान मंत्री से पूछा, "आपने संजय के बारे में क्या फैसला किया है ? मैंने उनसे कह दिया है कि वह चुनाव में खड़ा न हो।"

"नहीं," श्रीमती गांधी ने कहा, "वह महसूस करता है कि उसके खिलाफ इतनी बात कही जाती है, उसे उनका जवाब देने का मौका मिलना चाहिये।"

फरवरी में ही धीरेंद्र ब्रह्मचारी ने भी, जिन पर संजय को बहुत भरोसा था, उससे चुनाव में न खड़े होने को कहा।

"आप यह बात कैसे कह रहे हैं ?" जिद्दी नौजवान ने उन्हें फटकार दिया। "आपको राजनीति के बारे में क्या पता है ?"

"मैं तो वही बता रहा हूँ जो लोग कहते हैं," ब्रह्मचारी ने कहा। "अगर तुम नाराज होते हो तो मैं अपने कपड़े-लत्ते समेटकर चला जाता हूँ, मुझे क्या लेना-देना इस बात में ?"

इन्दिरा गांधी ने आखिरी वक्त पर संजय को रायबरेली वाली अपनी सीट से मिली हुई अमेठी की सीट से खड़ा कर दिया। संसद के कुछ सदस्यों की यह धारणा कि अगर संजय हार भी जाये तो श्रीमती गांधी को कोई अफसोस नहीं होगा, इस समस्या के साथ श्रीमती गांधी के लगाव के यथार्थ मूल्यांकन से नहीं उत्पन्न हुई थी बल्कि यह आदर्शवादियों का आखिरी सहारा था। वे आस लगाये थे कि वह किसी तरह अपने बेटे से अलग हो जायें ताकि उन्हें चुनाव में प्रचार के दौरान कुछ कहने को मिल जाये।

जब टिकट बाँटने का सवाल आया तो युवक कांग्रेस का पलड़ा लगातार भारी रहने के बारे में जो अनुमान लगाया जाता था वह ठीक निकला, जिसकी वजह से पुरानी पीढ़ी के नेताओं में बड़ा क्षोभ और गुस्सा पैदा हुआ। गोहाटी अधिवेशन के बाद से, जहाँ प्रधान मंत्री ने यह बात मानी थी कि युवकों ने "बाजी मार ली है," युवक कांग्रेस पार्टी के लोगों के एक बौखलाहट पैदा रही थी। टिकट देने के लिए कई कसौटियों के बारे में बहस हुई, जिनमें से सबसे ऐसी थी कि पुराने आजमाये हुए अनुभवी लोगों को हटाकर युवक कांग्रेस को बढ़ावा दिया जाये।

जब बिहार के [illegible] शर्मा [illegible] के साथ टिकट पाने में उनकी मदद [illegible] तो शास्त्री ने बड़े व्यंग्य से कहा, "मैं कुछ नहीं कर सकता। पिछली बार मैं कांग्रेस का अध्यक्ष था, एल॰ पी॰ शर्मा प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, तब भी उस वक्त मैं तुम्हें टिकट नहीं दिला पाया। अब तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ। तुम संजय को जानते हो, श्रीमती गांधी से कहो, [illegible] है, बिहार के मुख्य मंत्री [illegible] हैं, [illegible] उन लोगों से कहो। वे लोग दिला सकते हैं मैं नहीं दिला सकता।"

जगजीवनराम के धीरज का बाँध उस वक्त टूट गया जब युवक कांग्रेस ने २०० सीटें माँगी। उन्होंने महसूस किया कि बड़ी चालाकी से अगली संसद में उनके समर्थकों को उनकी वास्तविक शक्ति के अनुसार सीटें नहीं दी जायेंगी; उन्होंने यह भी महसूस किया कि हर मौके पर उनका जिस तरह अपमान किया जा रहा था वह अब बर्दाश्त के बाहर हो गया था, और यह कि अब कांग्रेस में उनके लिए कोई भविष्य नहीं था। इमर्जेंसी अभी तक लगी हुई थी। उन्होंने १ फरवरी को बड़े शांत भाव से श्रीमती गांधी से कहा कि इमर्जेंसी हटा ली जानी चाहिए। उन्होंने बात को टालते हुए धीमे स्वर में कहा कि वह गृह-मंत्रालय से इस सवाल के बारे में छानबीन करने को कहेंगी। अगले दिन जगजीवनराम ने न सिर्फ कांग्रेस छोड़ दी बल्कि वह उनके पंजे से भी निकल गये। उन्होंने बहुगुणा और नंदिनी सत्पथी के साथ मिलकर कांग्रेस की टक्कर पर कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी की स्थापना की और चुपचाप लोगों के कांग्रेस छोड़कर निकल आने की प्रतीक्षा करने लगे।

इसके बाद तो श्रीमती गांधी का इमर्जेंसी के दाँव-पेंच का पूरा किला ही ढह गया। तीन बातें फ़ौरन साफ़ नज़र आने लगीं। श्रीमती गांधी को पुराने नेताओं की मिन्नत-खुशामद करके उन्हें अपने साथ रखना था और पार्टी के मामलों में उन्हें फिर उनका उचित स्थान देना था; उन्हें खुद अपने रवैये में कुछ नरमी लानी थी; और उन्हें संजय के बारे में कुछ करना था। उस वक़्त तक सारे अखबार, जिन्होंने दुबारा अपनी आज़ादी हासिल कर ली थी, बिलकुल क़ाबू से बाहर हो चुके थे। लेकिन सच्चाई के साथ। जो खबरें वे छाप रहे थे वे ऐसा लगता था कि सीधे तवे पर से आ रही हैं—उनमें जनता के गुस्से की गर्मी थी। पहली बार इमर्जेंसी के अँधेरे पहलू पर से परदा उठ रहा था। श्रीमती गांधी की उम्मीदों के खिलाफ, विपक्ष के सारे नेता देखते-देखते मिलकर एक हो गये, बहुत बड़ी हद तक उस एकता की वजह से जो जेल में कायम हुई थी। लोग जनता पार्टी की मीटिंग में उन लोगों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए अपने-आप ही आये, जिन्होंने जेल की मुसीबतें झेली थीं। कांग्रेस की मीटिंग में भी लोग आये थे लेकिन बुझे मन से। जब जगजीवनराम ने कांग्रेस छोड़ दी तो लोगों ने महसूस किया कि वे अपना भय त्याग सकते हैं। उस दिन कांग्रेस की क़ब्र खुद गयी थी।

"मैडम," इंटेलिजेंस ब्यूरो के प्रधान डॉ० सेन ने प्रधान मंत्री को बताया, "मुझे डर है कि आप हार जायेंगी।"

अमेठी में संजय के बिलकुल शाही चुनाव-प्रचार से गाँववाले उससे इतना अधिक दूर हो गये जितना उसने सोचा भी नहीं था। मैंने एक मुस्लिम गाँव में उसे पदयात्रा करते देखा। वह घबराया हुआ लगता था और इतनी तेज़ी से चलता था कि लोग खड़े घूरते रह जाते थे। जिस दिन जगजीवनराम ने अमेठी में एक मीटिंग में भाषण दिया उस दिन संजय के लोगों और उत्तर प्रदेश पुलिस के सशस्त्र कांस्टेबुलों के बीच टक्कर हुई। जब पुलिस वाले गुस्से में आकर उसका घेराव करने गौरीगंज के रेस्ट हाउस पहुँचे, जहाँ वह ठहरा हुआ था, तो संजय के हाथ-पाँव फूल गये और उसने मदद के लिए ओम मेहता को टेलीफोन किया। इसी वक़्त सीमा सुरक्षा दल के प्रधान अश्विनी कुमार के आदमी उसे बचाने के लिए पहुँचे तो उनके साथ भी उसका बरताव कुछ ज़्यादा भलमनसाहत का नहीं था। आखिरकार श्रीमती गांधी ने **स्वामी** को वहाँ भेजा। वह अपने हवाई जहाज़ पर बैठकर वहाँ पहुँचे और किसी तरह संजय को शांत करने में सफल हुए।

चुनाव के लिए जो पैसा जमा किया गया था उसमे से कुछ तो २ कुशक रोड
चुनाव लड़ने वालों के बीच बाँट दिया गया था; वहाँ चारो तरफ बहुत मज
घेरा बाँध दिया गया था ताकि कोई आसानी से अंदर न जा सके और किसी
वहाँ की बातों का पता न चल सके। रोज १ सफदरजंग रोड से वहाँ टीन
एक डिब्बा लाया जाता था और पी० सी० सेठी राजनीतिक ज़रूरतमंदों को
घंटे तक पैसा बाँटते थे।

उसी छोटी-सी टोयोटा मोटर की मदद से यह बंदोबस्त किया जा रहा
कि आगे चलकर फिर किसी दिन लडाई जारी रखने के लिए यह पैसा सुरक्षि
रहे। इन्दिरा गांधी उन लोगों में से नहीं हैं जो आसानी से हार मान ले।

टिप्पणियाँ

१. राजनीति के क्षेत्र में आ जाने वाले पत्रकार के लिए इससे बड़े संतोष की ब
और क्या हो सकती है कि उसे सूचना तथा प्रसारण-मन्त्रालय का काम सौ
दिया जाये, जहाँ अगर आदमी चाहे तो अपनी सत्ता का उपयोग सूझ-बू
के साथ भी कर सकता है और नासमझी से उसका दुरुपयोग भी कर सक
है। लालकृष्ण अडवाणी ने यह दुःसाध्य लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। उन
जन्म कराची में (जो अब पाकिस्तान में है) १९२७ में हुआ था। उन्हों
एक पत्रकार की हैसियत से काम किया लेकिन १९४२ से १९५२ त
राजस्थान मे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठन करते रहे। १९५० मे व
जनसंघ मे आये और जल्द ही उसके उच्चतम पदों पर पहुँच गये; १९६
६७ मे वह उसके उपाध्यक्ष रहे और १९७३ मे अध्यक्ष चुने गये। १९६७-७
में वह दिल्ली की अंतरिम मेट्रोपोलिटन कौंसिल मे जनसंघ के नेता थे, जिस
बाद वह राज्यसभा के सदस्य चुने गये। जब १९७७ में जनता पार्टी ने सत्त
का भार सँभाला तो वह सूचना तथा प्रसारण के केंद्रीय मंत्री बनाये गये।
२. ए० एन० रे इस समय पैंसठ वर्ष के हैं। अप्रैल १९७३ मे सुप्रीम कोर्ट के ती
जजों, जस्टिस ग्रोवर, हेगडे और शेलात, का हक मारकर, जिनकी बा
उनसे पहले आती थी, उन्हें भारत का चीफ जस्टिस बना दिया गया। लंब
छलाँग लगाकर उनका न्याय-जगत के सर्वोच्च पद पर इस तरह पहुँच जा
विवाद का विषय बन गया। इस सर्वोच्च पद पर पहुँचने से पहले, जिस पर व
१९७७ तक रहे, वह कलकत्ता हाईकोर्ट के जज और सुप्रीम कोर्ट के जज थे
३. मुजीबुर्रहमान बांगला देश के जन्मदाता थे। पाकिस्तान में अवामी लीग
नेता की हैसियत से उन्होंने पूर्वी बंगाल के लिए अधिक स्वायत्त अधिका
प्राप्त करने के कई विफल प्रयत्न किये और अंत मे १५ मार्च १९७१ क
एकतरफा तौर पर स्वायत्त सत्ता की घोषणा कर दी। पाकिस्तानी दमन
फलस्वरूप पूरे उपमहाद्वीप में आग भड़क उठी, जिसमें भारत की विज
हुई और बांगला देश एक नया देश बन गया। केवल तीन ही वर्ष बा
अगस्त १९७५ में शेख मुजीबुर्रहमान की, जिन्हें उनके देशवासी बड़े स्नेह
बंग बंधु कहते थे, बड़ी निर्दयता से हत्या कर दी गयी, और उनके साथ ह
लगभग उनके पूरे परिवार को भी मौत के घाट उतार दिया गया।
४. पी० एन० सिंह का जन्म १९३७ में बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ था

ऐसा लगता है कि उनके भाई राजीव ने, जो दिल्ली में बैठा बड़ी चिंता से यह सब-कुछ देख रहा था, यह महसूस किया कि स्थिति को संभालने के लिए कोई सख़्त कदम उठाना होगा। वह पी० एन० धर के पास गया। अगर जनता के बीच मुँह दिखाने लायक रहने के लिए संजय को पार्टी से निकाल दिया जाये तो कैसा रहे? इसका बहुत असर पड़ेगा। प्रधान मंत्री दौरे पर थीं; धर ने उनसे संपर्क स्थापित किया। ऐसा लगता था कि वह भी इस बात से कुछ-कुछ सहमत थीं। जब वह लौटकर आयीं तो उन्हें मालूम हुआ कि संजय, ज़ाहिर है, इसके लिए तैयार नहीं है। डर इस बात का था कि अगर संजय जीत गया तो कांग्रेस के बहुत-से संसद-सदस्य यह सोचकर पार्टी छोड़ देंगे कि संसद में संजय के रहने से उनकी कोई हैसियत नहीं रह जायेगी। वोट पड़ने से तीन-चार दिन पहले इस तरह की कुछ चर्चा चली थी कि बंसीलाल को निकाल दिया जाये और संजय से कहा जाये कि वह अमेठी के चुनाव से हट जाये। लेकिन इस पर भी अमल नहीं किया गया।

इन्दिरा गांधी बौखला उठीं। उन्होंने राष्ट्रपति से, जो मलयेशिया के दौरे पर थे, वापस आ जाने को कहा। उन्हें चुनावों की घोषणा पर हस्ताक्षर करने थे। श्रीमती गांधी उनके पास फ़ौरन सलाह लेने पहुँचीं। रात के १० बजे थे और बताया जाता है कि बेगम आबिदा ने उनसे कहा कि राष्ट्रपति सोने चले गये हैं। श्रीमती गांधी ने कहा, "काम बहुत ज़रूरी है।" जब वह राष्ट्रपति से मिलीं तो, कहा जाता है, राष्ट्रपति ने उनसे कहा कि वह बच्चों जैसी बातें न करें। "हम कल बात कर सकते हैं।"

अगले दिन सुबह ६ बजे फ़ख़रुद्दीन अली अहमद का देहांत हो गया। रेल मंत्रालय के भूतपूर्व केंद्रीय राज्य-मंत्री मुहम्मद शफ़ी कुरैशी ने भाव-विह्वल होकर अपने भाषण में कहा, "वह दिल का दौरा पड़ने से नहीं मरे हैं, उनका दिल टूट गया था···।"

इन्दिरा गांधी का सोचने का ढंग अब उस हालत में पहुँच चुका था कि, मुझे पूरा यक़ीन है, अगर वह परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल पातीं तो मार्शल-ला भी लागू कर देतीं। वह जानती थीं कि नौ-सेना की भूमिका बहुत महत्त्व नहीं रखती। वायु-सेना पर ध्यान दिया जा सकता था पर वह भी सेना का इतना निर्णायक अंग नहीं था कि उनकी सत्ता को बनाये रखने में उनकी सहायता कर सकता। बुनियादी महत्त्व थल-सेना का था। बांगला देश के युद्ध के दौरान फ़ील्ड मार्शल एस० एच० एफ़० जे० मानेकशा ने यह महसूस किया था कि यह खेदजनक बात थी कि राजनीतिक नेतृत्व में कोई एकात्मक प्रणाली नहीं थी। उन्होंने मुझसे कहा था कि युद्ध के दौरान पूरा नियंत्रण प्रधान मंत्री के हाथों में रहना चाहिए। यह बात सेना के बारे में और भी सच थी क्योंकि उसकी रचना में इतनी विविधता होती है। वह जानती थीं कि जनरल टी० एन० रैना राजनीति से इतने दूर हैं कि उन्हें राजनीति के क्षेत्र में खींचकर लाना असंभव है। और एक बार अगर सेना के मुँह को खून लग गया तो उसे काबू में रखने का कोई उपाय नहीं रह जायेगा।

२० मार्च को चुनाव के पूरे नतीजे आने से पहले ही, जिनमें कांग्रेस का बिलकुल सफ़ाया हो गया, रायबरेली में स्वयं इन्दिरा गांधी की हार की ख़बर से भारतीय इतिहास की पूरी दिशा ही बदल गयी।

इन्दिरा गांधी ने दो दिन तक इस्तीफ़ा नहीं दिया। २२ मार्च को एक ख़ूबसूरत टोयोटा मोटर पर टीन के डिब्बे लादे जाते देखे गये, जिनमें शायद पैसा था।

चुनाव के लिए जो पैसा जमा किया गया था उसमें से कुछ तो २ कुशक रोड मे चुनाव लडने वालो के बीच बाँट दिया गया था, वहाँ चारो तरफ बहुत मजबूत घेरा बाँध दिया गया था ताकि कोई आसानी से अंदर न जा सके और किसी को वहाँ की बातो का पता न चल सके। रोज १ सफदरजंग रोड से वहाँ टीन का एक डिब्बा लाया जाता था और पी० सी० सेठी राजनीतिक जरूरतमदो को दो घंटे तक पैसा बाँटते थे।

उसी छोटी-सी टोयोटा मोटर की मदद से यह बदोवस्त किया जा रहा था कि आगे चलकर फिर किसी दिन लडाई जारी रखने के लिए यह पैसा सुरक्षित रहे। इन्दिरा गांधी उन लोगों मे से नही हैं जो आसानी से हार मान ले।

टिप्पणियाँ

१. राजनीति के क्षेत्र में आ जाने वाले पत्रकार के लिए इससे बड़े संतोष की बात और क्या हो सकती है कि उसे सूचना तथा प्रसारण-मत्रालय का काम सौंप दिया जाये, जहाँ अगर आदमी चाहे तो अपनी सत्ता का उपयोग सूझ-बूझ के साथ भी कर सकता है और नासमझी से उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। लालकृष्ण अडवाणी ने यह दु.साध्य लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। उनका जन्म कराची मे (जो अब पाकिस्तान मे है) १६२७ मे हुआ था। उन्होने एक पत्रकार की हैसियत से काम किया लेकिन १६४२ से १६५२ तक राजस्थान मे राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का संगठन करते रहे। १६५० में वह जनसंघ मे आये और जल्द ही उसके उच्चतम पदो पर पहुँच गये; १६६५-६७ में वह उसके उपाध्यक्ष रहे और १६७३ में अध्यक्ष चुने गये। १६६७-७१ में वह दिल्ली की अंतरिम मेट्रोपोलिटन कौंसिल मे जनसघ के नेता थे, जिसके बाद वह राज्यसभा के सदस्य चुने गये। जब १६७७ मे जनता पार्टी ने सत्ता का भार सँभाला तो वह सूचना तथा प्रसारण के केंद्रीय मत्री बनाये गये।

२. ए० एन० रे इस समय पैसठ वर्ष के है। अप्रैल १६७३ मे सुप्रीम कोर्ट के तीन जजो, जस्टिस ग्रोवर, हेगडे और शेलात, का हक मारकर, जिनकी बारी उनसे पहले आती थी, उन्हे भारत का चीफ जस्टिस बना दिया गया। लबी छलाँग लगाकर उनका न्याय-जगत के सर्वोच्च पद पर इस तरह पहुँच जाना विवाद का विषय बन गया। इस सर्वोच्च पद पर पहुँचने से पहले, जिस पर वह १६७७ तक रहे, वह कलकत्ता हाईकोर्ट के जज और सुप्रीम कोर्ट के जज थे।

३. मुजीबुर्रहमान बाँगला देश के जन्मदाता थे। पाकिस्तान मे अवामी लीग के नेता की हैसियत से उन्होने पूर्वी बंगाल के लिए अधिक स्वायत्त अधिकार प्राप्त करने के कई विफल प्रयत्न किये और अंत मे १५ मार्च १६७१ को एकतरफ़ा तौर पर स्वायत्त सत्ता की घोषणा कर दी। पाकिस्तानी दमन के फलस्वरूप पूरे उपमहाद्वीप में आग भडक उठी, जिसमें भारत की विजय हुई और बाँगला देश एक नया देश बन गया। केवल तीन ही वर्ष बाद अगस्त १६७५ में शेख मुजीबुर्रहमान की, जिन्हे उनके देशवासी बडे स्नेह से **बंग बंधु** कहते थे, बडी निर्दयता से हत्या कर दी गयी, और उनके साथ ही लगभग उनके पूरे परिवार को भी मौत के घाट उतार दिया गया।

४. पी० एन० सिंह का जन्म १६३७ मे बलिया (उत्तर प्रदेश) मे हुआ था।

हिंद मजदूर सभा के अध्यक्ष है। १९७७ मे वह जनता पार्टी के टिकट पर दिल्ली की मेट्रोपोलिटन कौंसिल के सदस्य चुने गये। वह इंडियाज अनफिनिश्ड रेवल्यूशन (भारत की अधूरी क्रांति) पुस्तक के लेखक है।

८. उत्तरी जर्मन टी० वी० के डी० आर० क्रानजूकर तथा डी० आर० शालीन को २९ सितंबर १९७५ को दिये गये एक इंटरव्यू मे।

९. जनता पार्टी की सरकार ने समाचार के काम-काज की जांच के लिए एक कमेटी बनायी है, जिसकी रिपोर्ट के आधार पर इस संस्था के भविष्य का फ़ैसला किया जायेगा।

१०. एक ठाकुर परिवार में १९१९ मे सागर (मध्य प्रदेश) मे जन्म लेने वाली इस साहसी कन्या का विवाह एक ऐसी जगह हुआ जहां इतिहास बनता था। ग्वालियर के सिंधिया शासकों का उल्लेख भारतीय इतिहास के हर पृष्ठ पर आता है। भारत के गणराज्य घोषित कर दिये जाने के बाद उनका सामंती वैभव तो समाप्त हो गया पर नाम चलता रहा। जब विजया राजे के पति महाराजा जीवाजी राव सिंधिया का देहांत हो गया तो वह चाहती तो राजसी परंपरा के अनुसार एकांत जीवन व्यतीत कर सकती थीं। परंतु उन्होंने एक तूफ़ानी वेग के साथ राजनीति के क्षेत्र मे प्रवेश किया और १९५७ में कांग्रेस की ओर से लोकसभा की सदस्य चुनी गयी। प्रगति करते-करते वह बहुत अच्छी सार्वजनिक वक्ता बन गयीं। डी० पी० मिश्रा के साथ अनबन हो जाने के कारण उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी। १९६७ में मध्य प्रदेश में विपक्ष की पहली सरकार बनाने मे उन्होंने आगे बढकर सहायता दी। वह जनसंघ की बहुत सक्रिय सदस्य बन गयीं और इसीलिए उन्हें जेल जाना पडा। उन्हे वेश्याओ और हत्या करने वाली औरतों के बीच जिस कोठरी मे रखा गया वह राजसी सुख-चैन से कोसों दूर की जगह थी, परंतु विजया राजे ने बडे धैर्य से अपनी मर्यादा पर अडिग रहकर जीवन का यह दौर भी काट दिया।

११. अर्जुनसिंह ने मध्य प्रदेश की कांग्रेस की राजनीति मे ख्याति प्राप्त की। १९६७ में वह कृषि-मंत्री, फिर योजना तथा विकास-मंत्री और अंत में १९७२ में शिक्षा-मंत्री बने। इस समय वह मध्य प्रदेश मे कांग्रेसी विपक्ष के नेता हैं।

१२. बयासी-वर्षीय विनोबा भावे महात्मा गांधी के सहकर्मी तथा शिष्य हैं। गरीबो को भूमि दिलाने के लिए उन्होने भूदान आंदोलन का नेतृत्व किया। सामाजिक दायित्व के क्षेत्र मे यह एक क्रांतिकारी विचार था। वह निःस्वार्थ सेवा के सर्वोदय आंदोलन के संस्थापक नेता भी हैं। दुबला-पतला शरीर, आंखों पर मोटी-सी ऐनक; वह नियमपूर्वक व्रत तथा तपस्या का कठोरता से पालन करते है। उन्हे एक दार्शनिक तथा विद्वान के रूप मे मान्यता प्राप्त है।

१३. विजयानंद पटनायक, जो बीजू पटनायक के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, राजनीति के क्षेत्र मे साहसी कार्यों के प्रति उत्साह रखने की ख्याति लेकर आये—वह [illegible]

शील उद्योगपति थे जब उन्होंने १९६१-६३ में उडीसा के मुख्य मंत्री के रूप मे राजनीति के क्षेत्र में एक नये पराक्रम का बीडा उठाया। १९७२ में वह राज्यसभा के सदस्य चुने गये और इस समय जनता पार्टी की सरकार मे इस्पात तथा खानों के केन्द्रीय मंत्री है। लंबा कद, शिष्ट तथा सुसंस्कृत, गतिवान और परिवर्तनशील।

परिशिष्ट : संजय गांधी की इंटरव्यू

उमा : आप शराब के शौकीन है, इसके बारे मे बहुत-से किस्से सुनने मे आते है।...

संजय : मैं तो बिलकुल पीता ही नही। शराब तो जाने दीजिये, मैं तो कोका-कोला, लिम्का, फन्टा, या इस तरह की कोई भी चीज नही पीता। इसलिए मेरी समझ में नही आता कि मेरे ऊपर पीने का इल्जाम कैसे लगाया जाता है।

उमा : आपकी रंगरेलियो के बारे मे जो अफवाहे हैं उनकी, आपके ख्याल मे, असली वजह क्या है ?

संजय : मुझे मालूम नही, क्योकि मैं तो किसी होटल मे शायद ही कभी जाता हूँ। मेरा मतलब है कि शायद साल मे कभी एक बार चला गया और सो भी किसी से मिलने। शुरू-शुरू में जब १९६७ में मैंने मारुति का काम शुरू किया था, तब मैं दिन-भर मे कम-से-कम सोलह घंटे काम करता था, कभी-कभी अट्ठारह घंटे। जब गुलाबीबाग मे मेरी वर्कशाप थी, उन दिनों मैं सुबह आठ बजे काम पर चला जाता था और आम तौर पर रात को नौ बजे लौटकर आता था—उसके बाद मैं कुछ लिखने-पढ़ने का काम करता था। मेरा मतलब है कि पाँच-छ: साल तक मैं नही समझता कि मैं किसी डिनर या किसी पार्टी मे या कहीं भी गया हूँ। इधर कुछ दिनो से मैं इतना ज्यादा काम नही करता फिर भी लगभग बारह घंटे तो करता ही हूँ। इसके बाद रंगरेलियो के लिए वक़्त ही नही बचता था।

उमा : आपकी राय मे इसकी क्या वजह है कि इस तरह की अफवाहे आपके बारे में ज्यादा फैलती है और आपके भाई राजीव के बारे मे नहीं ?

संजय : क्योंकि मैं जो कुछ कर रहा हूँ उसके बारे में ज्यादा झगड़े उठाये जा सकते हैं। अगर वे मेरे भाई के बारे मे कुछ कहना चाहे तो यही कह सकते हैं कि ज़ोर-असर की वजह से उसे नौकरी मिल गयी। खैर, ठीक है, ज़ोर-असर से नौकरी मिल गयी, उसके बाद ? कुछ नही। लेकिन मेरे बारे मे इस तरह की बातो का सिलसिला लगातार चलता रह सकता है।

उमा : आपके बारे में बचपन से ही तरह-तरह के किस्से सुनने मे आते रहे हैं, खास तौर पर वह किस्सा जिसमे यह कहा गया है कि आपके नौजवान ऊधमी दोस्तों का एक गरोह था जो सिर्फ मजे के लिए मोटरें चुराता था।

संजय : मुझ पर जिस जमाने में मोटरें चुराने का इल्जाम लगाया गया था उन दिनो मैं कश्मीर में था। मैं समझता हूँ कि मैं उससे दो महीने

पहले से वहाँ था। उसके फौरन बाद, जब तक यह अफवाह तेज़ी से फैली, तब तक मैं इंग्लैंड जा चुका था। जब मैं दिल्ली में था ही नहीं तो यहाँ मोटरें कैसे चुरा सकता था ?

उमा : लेकिन एक व्यक्ति की हैसियत से आप हमेशा बहुत गरममिजाज और जोशीले रहे हैं। क्या इसकी वजह से कभी आपका प्रधान मंत्री से, अपनी माँ से, कोई टकराव हुआ ?

संजय : मेरा माँ से कभी कोई टकराव नहीं रहा। मेरे अपने कुछ विचार हैं, उनके विचार मेरे विचारों से अलग है, लेकिन मैं नहीं समझता कि इसका मतलब टकराव है; यह तो मतभेद है, तो उसमें क्या हुआ ? मेरा मतलब है कि हजारों लोगों से मेरा मतभेद रहा है। लेकिन उसका टकराव या उस तरह की किसी चीज से क्या संबंध ?

उमा : लेकिन अपनी माँ के साथ आपके संबंध, आपकी राय मे, कैसे हैं ?

संजय : देखिये, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मैं इन्हें किस कोटि में रखूँ।

उमा : क्या अपनी माँ के साथ आपकी बहस में कभी गरमागरमी भी पैदा हो जाती है ?

संजय : कभी किसी भी बहस में कोई गरमागरमी पैदा नहीं हुई। उनके साथ मेरी कितनी ही बार बहस हुई है क्योंकि मैं यों भी बहस करने का काफी आदी हूँ। लेकिन उसमे झगड़े की नौबत कभी नहीं आती।

उमा : क्या वह आपकी बात सुनती हैं या महत्त्वपूर्ण सवालों पर आपको अपने विचार कहने का मौका देती है ?

संजय : जी हाँ, ज़ाहिर है, वह मेरे विचार से सुनती हैं। वे मेरी बात उस वक़्त भी बड़े ध्यान से सुनती थीं जब मैं पाँच साल का था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जो कुछ मैं कहता हूँ वही वह करती भी हैं।

उमा : क्या आपके संबंध दोस्ती के हैं ?

संजय : कुछ हद तक, हाँ।

उमा : आपको उनके साथ बात करने मे कोई संकोच नहीं होता ?

संजय : जी नहीं, बिलकुल नहीं।

उमा : और वह आपको अपने विचार व्यक्त करने से कभी रोकती नहीं ?

संजय : जी नहीं, कभी नहीं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं भी वही बात कहूँ जो वह कहती हैं। यह भी मुमकिन है कि मेरे भाई साहब कोई और ही बात कहते हों। यही सिलसिला बढ़ते-बढ़ते बहस का रूप धारण कर लेता है, बस इतनी बात है।

उमा : एक विदेशी पत्रकार ने यहाँ तक कहा है कि आपकी माँ आपसे डरती हैं। मैंने सुना है कि आपने उनके बारे में एक फ़ाइल खोल रखी है !

संजय : मैं समझता हूँ, यह सरासर बकवास है। उस फ़ाइल में मैं क्या रखूँगा और वह फाइल मेरे किस काम आयेगी ! इनमें से ज्यादातर अफवाहें राजनीतिक उद्देश्य से फैलायी जाती हैं। ये जनता के दिमाग में यह बात बिठा देना चाहते हैं कि शासनसत्ता के रूप में सरकार या तो इधर-उधर से सलाह लेकर चलायी जाती है या फिर हर काम बिलकुल ही मनमाने ढंग से बिना सोचे-समझे किया जाता है। मैं नहीं समझता कि कोई भी समझदार आदमी इस तरह की बातों पर ध्यान देता होगा।

उमा : क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जो लोग इस तरह की बातों पर

विश्वास करते है वे वही लोग है जो इन बातो पर विश्वास करना चाहते है ?

संजय : मैं नही समझता कि गिनती के कुछ पागलो के अलावा कोई भी इन बातों पर यक़ीन करता है, और सो भी इसलिए कि इस तरह की बाते पढने मे दिलचस्प लगती है। भारत मे कितनी माँएँ इस तरह के किस्से पर यकीन करती होंगी कि कोई बेटा इस तरह सरासर अपनी माँ की मर्जी के खिलाफ काम करे? कितने लोग इस बात को मुमकिन समझते है ?

उमा : क्योंकि वे समझते है कि सत्ता के क्षेत्र मे आचरण के मानदंड बिलकुल ही दूसरे होते है, जिस तरह पुराने साम्राज्यों के दिनो मे ऐसी रानियाँ होती थी जो हत्या कर देती थी, या ऐसे बेटे होते थे जो सिंहासन हथियाने के लिए हर तरह की जोड़-तोड़ करते थे ...।

संजय : लेकिन हमारे यहाँ राजवंशों वाली प्रणाली तो है नही। अगर इसका मतलब यह है कि कोई भी आदमी किसी पद पर पहुँचने के लिए जोड़-तोड कर सकता है तो भी मैं तो इस तरह जोड-तोड नही कर सकता। अगर मैं इस तरह की कोई हरकत करूँ भी तो यह वहाँ तक पहुँचने के बजाय वहाँ से निकल जाने का सबसे सीधा तरीका होगा।

उमा : क्या यह सच है कि आपने अपनी माँ के विरोध करने के बावजूद मारुति की योजना को आगे बढाया ?

संजय : जब मैंने मारुति को शुरू किया था, तो इतने छोटे पैमाने पर उसे शुरू किया था कि मैं नहीं समझता किसी को भी उस पर कोई एतराज हो सकता था। जब मैं किसी खास मंजिल तक पहुँचा तब तक मुझे उस योजना पर काम करते हुए पाँच साल बीत चुके थे, इसलिए उस वक़्त उस पर एतराज करने मे कोई तुक नही थी।

उमा : बात यह है कि जब लोग मारुति की चर्चा करते हैं तो उनका मतलब उस वक्त से होता है जब आपने दरअसल फ़ैक्टरी लगायी और किस तरह वह विपक्ष के आरोपों का विषय बन गयी। तो उस वक़्त क्या वह यह समझती थी कि आप अपनी इस योजना को छोड दें ?

संजय : जी नहीं, मैं नही समझता कि ऐसी बात थी। मैं इस योजना पर कई वर्ष से काम कर रहा था इसलिए यह तो बहुत मुश्किल था कि मैं उसे बीच मे ही छोड देता। और अगर मैं उसे बीच में छोड भी देता, तो उससे सिर्फ यही साबित होता कि उसमे कोई गड़बडी थी और इसीलिए मैंने उसे छोड दिया।

उमा : क्या इस योजना को चलाने मे आपको इस वजह से कोई खास सुविधाएँ मिली है कि आप प्रधान मंत्री के बेटे हैं ? ऐसी सुविधाएँ जो दूसरो को नही मिलती है ?

संजय : देखिये, लगभग तीन साल से संसद मारुति के हर पहलू के बारे में छानबीन करने की कोशिश कर रही है। अगर मैंने कोई बेजा सुविधाएँ हासिल की होती, वे दूसरों को मिलती हों या न मिलती हो, तो उन लोगों ने उनका पता जरूर लगा लिया होता और उन्हे सचमुच खूब उछाला होता।

उमा : क्या आप समझते है कि जिन लोगो से आपको काम पड़ा उन्होंने, यह जानते हुए कि आप कौन हैं, आपका काम ज्यादा जल्दी कर

दिया, या आपका अनुभव यह है कि कुछ दूसरे कारणों से आपके रास्ते में रुकावटें डाली गयी ?

संजय : देखिये, आमतौर पर, मेरा तजुर्बा यह रहा है कि उनका कोई इरादा मेरे रास्ते में रुकावटें डालने का नहीं रहता, लेकिन संसद में इस सारे झगड़े की वजह से वे मेरे लिए कुछ करते हुए डरते हैं। इसके साथ ही मेरी स्थिति को देखते हुए वे मेरे खिलाफ भी कुछ करते हुए डरते हैं, इसलिए वे हर चीज को खटाई में पड़ा रहने देते हैं !

उमा : क्या मारुति के काम में देर होने की एक वजह यह भी है ?

संजय : इससे मदद मिली...।

उमा : उसमें देर लगने में ?

संजय : जी हाँ।

उमा : कोई मिसाल ?

संजय : जैसे, सामान की मंजूरी का सवाल ले लीजिये। हमने अपना ज्यादा-तर सामान खुले बाजार में खरीदा। मेरी नजर में ऐसे बहुत कम उद्योगपति होते हैं, मेरे मतलब बड़े उद्योगपतियों से है, जिन्हें ऐसा करना पड़ता हो, जिन्हें अपनी जरूरत का सारा इमारती सामान या दूसरा सामान खुले बाजार में खरीदना पड़ा हो।

उमा : इस तरह की अफवाहें सुनने में आयी हैं कि आपने ढेरों सीमेंट और लोहे का कोटा ले लिया और फिर उसे बेच दिया क्योंकि आपको उसकी जरूरत नहीं थी।

संजय : हमने खुले बाजार से जो ढेरों सीमेंट और लोहा खरीदा है उसके बिल और रसीदें मौजूद हैं। हमने अपनी बैलेंस-शीट में दिखाया है कि हमने कुछ ऐसा लोहा जरूर बेचा जो किसी काम का नहीं रह गया था, लेकिन हमने कंट्रोल का कोई लोहा नहीं बेचा। कंपनियों में आमतौर पर यह होता है कि जो भी फालतू या बेकार लोहा होता है उसे चुपके से बेचकर मालिक पैसा खुद हजम कर जाते हैं। हमारी गलती यह थी कि हमने ईमानदारी से काम किया। हमने उसे फैक्टरी के नाम से बेचा और पैसा भी फैक्टरी के नाम में ही जमा किया। हमारी फैक्टरी बनाने की लागत के बारे में भी हर आदमी को यह ताज्जुब होता है कि वह इतनी कम क्यों है। और लागत इतनी कम होने की अकेली वजह यह है कि मैंने उसमें से कोई पैसा हजम नहीं किया। दूसरी लोगों की लागत इतनी ज्यादा इसलिए होती है कि इमारत बनाने की लागत ज्यादा दिखाकर वे बीच-बीच में लगातार पैसा अपनी जेब में डालते रहते हैं।

उमा : आपकी फैक्टरी का फैलाव बहुत बड़ा है—नौ लाख वर्गफीट। क्या योजना के लिए इतनी जगह की जरूरत थी ?

संजय : शुरू में हमने ५०,००० मोटरें बनाने की योजना बनायी थी। फिर पेट्रोल की यह सारी दिक्कत शुरू हो गयी। उसके बाद से हमने अपना कारोबार थोड़ा-बहुत दूसरी दिशाओं में बढ़ाया है। हमने सड़क कूटने वाले रोलर बनाना शुरू किया, बसों की बॉडियाँ बनाना शुरू किया और मोटरें तो थी ही। इन तीनों चीजों के लिए मिलाकर जगह मुनासिब ही है। अगर सिर्फ मोटरों की बात होती, और जितनी मोटरें हम उस वक्त बनाने जा रहे थे, तो इतनी जगह की जरूरत

नही थीं।

उमा : इस वत क्या हालत है ? आपकी मोटरें बाजार मे कब तक आयेंगी और कितनी ?

संजय : हमने उन्हें बेचना तो शुरू कर दिया है। अभी तो हमारा उत्पादन बहुत थोड़ा है। हर महीने सात-आठ मोटरें बनती हैं। अगले महीने तक पंद्रह बनने लगेंगी और फिर धीरे-धीरे हम इसे बढ़ायेंगे। आखिर में चलकर २०० मोटरें रोज बनने लगेंगी। लेकिन इस वक्त जो हालत है उसमें तो हमें इसमें देर करनी होगी। इसीलिए हमने कुछ दूसरे काम भी हाथ मे ले लिये हैं ताकि हमारे पास जो क्षमता है उसे हम दूसरे कामो के लिए भी इस्तेमाल कर सकें।

उमा . आपको पूरी तेजी के साथ आगे बढ़ने से क्या चीज रोकती है ?

संजय : एक तो है बाजार में पैसे की कमी। लोग पैसा मुश्किल से लगाते है। मोटर उद्योग मे पूंजी बहुत लगानी पड़ती है। ज्यादा आदमी काम पर लगा देने से ज्यादा काम नही होता। बैंक पैसा देने में आनाकानी करते हैं, पैसा देने वाली दूसरी सस्थाएँ आनाकानी करती हैं...।

उमा . आपको भी ?

संजय : मुझे तो और भी ज्यादा। इसके अलावा प्राथमिकता की सूची में मोटरों को बहुत नीचे रखा गया है। इसका भी हमारे ऊपर बहुत बुरा असर पड़ता है। सिर्फ़ हमी पर नही बल्कि ऐम्बैसेडर और फियट पर भी। सरकार को कोई परवाह नही है कि वे चलें या न चलें।

उमा : शुरू में तो बाजार मे एक जनता मोटर लाने की योजना पर बड़ा जोर था। इसका मतलब है कि सारी प्राथमिकताएँ गड़बड़ हो गयी हैं।

संजय : दरअसल भारत मे १०,००० रु० मे या ५,००० रु० मे जनता मोटर बिक नही सकती। लोगों की हैसियत सच पूछा जाये तो साइकिल या बस से ज्यादा की नही है।

उमा : कुछ लोग तो यह कहते हैं कि आप मोटर बनाना बिलकुल बंद कर देंगे और मोटर के पुर्जे बनाने लगेंगे।

संजय . इस वक्त तो मोटरों के बाजार की हालत बहुत बुरी है, इसलिए पुर्जे बनाना तो और भी जोखिम का काम है।

उमा : मारुति मे वह कौन-कौन-सी खास बातें हैं जिनकी वजह से वह दूसरों के मुकाबले मे बेहतर मोटर होगी ?

संजय : वह दूसरो से बेहतर मोटर नहीं है। वह सस्ती मोटर है। कम पैसे मे आपको उसमे बैठने की जगह ज्यादा मिलती है; उसमे पेट्रोल की खपत कम होती है; और जहाँ तक मुड़ने का सवाल है वह ऐम्बैसेडर और फिएट मे कम जगह मे मुड़ सकती है।

उमा : लेकिन क्या हल्की बॉडी होने की वजह से उसके उलट जाने का खतरा नही रहता ?

संजय : कही कम। इसका सेंटर ऑफ ग्रेविटी (गुरुत्वाकर्षण केंद्र) दूसरो के मुकाबले ज्यादा नीचे है, और सस्पेंशन कहीं ज्यादा आधुनिक है। ऐम्बैसेडर मे जो सस्पेंशन इस्तेमाल किया जाता है उसका डिजाइन लगभग १६२० मे चला आ रहा है। लेकिन इसके अलावा मारुति में

दूसरी मोटरों के मुकाबले कोई ऐसी चीज़ नही है जो बुनियादी तौर पर बेहतर हो।

उमा : वह दूसरों से सस्ती क्यों है ? आपने कहा है कि आप उसमें ज्यादा महँगा सामान लगाते है ?

संजय : हम ज्यादा महँगा सामान तो लगाते है, लेकिन कम सामान लगाते हैं क्योंकि मोटर का डिज़ाइन बहुत कम वजन का बनाया गया है। ऐम्बैसेडर का वज़न लगभग १२०० किलोग्राम होता है और मारुति का ६०० किलोग्राम। इसका मतलब है कि हमे ६०० किलोग्राम कम सामान का पैसा देना पड़ता है। हम उनके मुकाबले एल्युमिनियम ज्यादा इस्तेमाल करते है। एक किलो एल्युमिनियम एक किलो इस्पात से कहीं ज्यादा महँगा पड़ता है। एल्युमिनियम का भाव सचमुच बहुत चढ़ गया है। इमर्जेंसी के बाद से वह लगभग तीन-चार रुपये किलो बढ़ा है। उससे फ़ौरन पहले भी वह चार रुपये किलो बढ़ा था। इस्पात के दाम सिर्फ़ अस्सी रुपये टन बढ़े हैं, यानी आठ पैसे किलो। दरअसल, एक और बात यह भी है कि काले बाज़ार मे उसका भाव लगभग वही है जो इस वक़्त कंट्रोल भाव है, जबकि एल्युमिनियम का भाव काले बाज़ार में बहुत ज्यादा है। जब हम कोई चीज़ बनाते हैं तो हमें कुछ हद तक बाज़ार के सहारे रहना पड़ता है।

उमा : क्या मारुति में स्वतन्त्र सस्पेंशन है ?

संजय : हाँ इसमे स्वतन्त्र सस्पेंशन है। कुल मिलाकर, उसका डिज़ाइन आधुनिक है। यहाँ जो दूसरी मोटरें बनती हैं उनके डिज़ाइन १९५०-६० में बनाये गये थे। जहाँ तक इस बात का सवाल है मारुति उनके मुकाबले में बेहतर है। हमने उसे बहुत ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर चलाकर देखा है। हमने बड़ी तेज़ रफ़्तार से बहुत दूर-दूर तक चलाया है, उसे कच्ची सड़कों पर बहुत दूर तक चलाया है; उसके बाद उसे अहमदनगर ले जाया गया, वहाँ भी वह काफी अच्छी चली। हमने लगातार उसमे छः आदमी बिठाकर उसे आजमाया है। तरह-तरह के लोगो ने हमसे तरह-तरह के सवाल पूछे हैं, ख़ास तौर पर सरकारी अफ़सरो ने, जिनका हमेशा यह दावा रहता है कि वे सब-कुछ जानते है और हमें मान लेना पड़ता है कि वे सब-कुछ जानते है।

उमा : मैंने देखा है कि आपकी मोटर शोर बहुत करती है। क्या उसकी कोई ख़ास वजह है ?

संजय : सबसे बड़ी वजह यह है कि उसका इंजन हवा से ठंडा रखा जाता है; हवा से ठंडे रखे जाने वाले इंजन पानी से ठंडे रखे जाने वाले इंजनों के मुकाबले ज्यादा शोर करते हैं। यह बात फोक्सवागन जैसी मोटरों के बारे मे भी सच है, जो पश्चिमी देशों की एक बहुत आला दर्जे की मोटर है। दूसरी वजह यह है कि यह दो सिलिंडर वाली मोटर है; दो सिलिंडर वाली मोटरो मे शोर लगातार नही होता और चूँकि यह शोर रुक-रुक कर होता है इसलिए ज्यादा मालूम देता है।

उमा : क्या इस शोर को दूर करने के लिए और पैसा ख़र्च करना होगा ?

संजय : बिलकुल तो दूर नहीं हो सकता। तकनीकी वजहों से यह मुमकिन नही है।

उमा : इसमें पेट्रोल कम क्यों ख़र्च होता है ?

दूसरी मोटरों के मुकाबले कोई ऐसी चीज नही है जो बुनियादी तौर पर बेहतर हो।

उमा : वह दूसरों से सस्ती क्यों है? आपने कहा है कि आप उसमे ज्यादा महँगा सामान लगाते है?

संजय : हम ज्यादा महँगा सामान तो लगाते हैं, लेकिन कम सामान लगाते हैं क्योंकि मोटर का डिज़ाइन बहुत कम वज़न का बनाया गया है। ऐम्बैसेडर का वज़न लगभग १२०० किलोग्राम होता है और मारुति का ६०० किलोग्राम। इसका मतलब है कि हमे ६०० किलोग्राम कम सामान का पैसा देना पड़ता है। हम उनके मुकाबले एल्युमिनियम ज्यादा इस्तेमाल करते है। एक किलो एल्युमिनियम एक किलो इस्पात से कहीं ज्यादा महँगा पड़ता है। एल्युमिनियम का भाव सचमुच बहुत चढ़ गया है। इमर्जेंसी के बाद से वह लगभग तीन-चार रुपये किलो बढ़ा है। उससे फ़ौरन पहले भी वह चार रुपये किलो बढा था। इस्पात के दाम सिर्फ अस्सी रुपये टन बढ़े हैं, यानी आठ पैसे किलो। दरअसल, एक और बात यह भी है कि काले बाज़ार मे उसका भाव लगभग वही है जो इस वक़्त कंट्रोल भाव है, जबकि एल्युमिनियम का भाव काले बाज़ार में बहुत ज्यादा है। जब हम कोई चीज़ बनाते हैं तो हमे कुछ हद तक बाज़ार के सहारे रहना पड़ता है।

उमा : क्या मारुति मे स्वतन्त्र सस्पेंशन है?

संजय : हाँ इसमें स्वतन्त्र सस्पेंशन है। कुल मिलाकर, उसका डिज़ाइन आधुनिक है। यहाँ जो दूसरी मोटरें बनती है उनके डिज़ाइन १९५०-६० में बनाये गये थे। जहाँ तक इस बात का सवाल है मारुति उनके मुकाबले में बेहतर है। हमने उसे बहुत ऊबड-खाबड ज़मीन पर चलाकर देखा है। हमने बड़ी तेज़ रफ़्तार से बहुत दूर-दूर तक चलाया है, उसे कच्ची सड़कों पर बहुत दूर तक चलाया है; उसके बाद उसे अहमदनगर ले जाया गया, वहाँ भी वह काफी अच्छी चली। हमने लगातार उसमे छः आदमी बिठाकर उसे आजमाया है। तरह-तरह के लोगों ने हमसे तरह-तरह के सवाल पूछे है, खास तौर पर सरकारी अफसरों ने, जिनका हमेशा यह दावा रहता है कि वे सब-कुछ जानते है और हमे मान लेना पडता है कि वे सब-कुछ जानते है!

उमा : मैंने देखा है कि आपकी मोटर शोर बहुत करती है। क्या उसकी कोई खास वजह है?

संजय : सबसे बड़ी वजह यह है कि उसका इंजन हवा से ठंडा रखा जाता है; हवा से ठंडे रखे जाने वाले इंजन पानी से ठंडे रखे जाने वाले इंजनों के मुकाबले ज्यादा शोर करते है। यह बात फोक्सवागन जैसी मोटरों के बारे में भी सच है, जो पश्चिमी देशों की एक बहुत आला दर्जे की मोटर है। दूसरी वजह यह है कि यह दो सिलिंडर वाली मोटर है; दो सिलिंडर वाली मोटरों मे शोर लगातार नही होता और चूँकि यह शोर रुक-रुक कर होता है इसलिए ज्यादा मालूम देता है।

उमा : क्या इस शोर को दूर करने के लिए और पैसा खर्च करना होगा?

संजय : बिलकुल तो दूर नहीं हो सकता। तकनीकी वजहों से यह मुमकिन नहीं है।

उमा : इसमे पेट्रोल कम क्यों खर्च होता है?

नहीं थी।

उमा : इस वक्त क्या हालत है ? आपकी मोटरें बाजार में कब तक आयेंगी और कितनी ?

संजय : हमने उन्हें बेचना तो शुरू कर दिया है। अभी तो हमारा उत्पादन बहुत थोड़ा है। हर महीने सात-आठ मोटरें बनती हैं। अगले महीने तक पंद्रह बनने लगेंगी और फिर धीरे-धीरे हम इसे बढ़ायेंगे। आखिर में चलकर २०० मोटरें रोज बनने लगेंगी। लेकिन इस वक्त जो हालत है उसमें तो हमें इसमें देर करनी होगी। इसीलिए हमने कुछ दूसरे काम भी हाथ में ले लिये हैं ताकि हमारे पास जो क्षमता है उसे हम दूसरे कामों के लिए भी इस्तेमाल कर सकें।

उमा : आपको पूरी तेजी के साथ आगे बढ़ने से क्या चीज़ रोकती है ?

संजय : एक तो है बाजार में पैसे की कमी। लोग पैसा मुश्किल से लगाते हैं। मोटर उद्योग में पूँजी बहुत लगानी पड़ती है। ज्यादा आदमी काम पर लगा देने से ज्यादा काम नहीं होता। बैंक पैसा देने में आनाकानी करते हैं, पैसा देने वाली दूसरी संस्थाएँ आनाकानी करती हैं...।

उमा : आपको भी ?

संजय . मुझे तो और भी ज्यादा। इसके अलावा प्राथमिकता की सूची में मोटरों को बहुत नीचे रखा गया है। इसका भी हमारे ऊपर बहुत बुरा असर पड़ता है। सिर्फ हमीं पर नहीं बल्कि ऐम्बैसेडर और फियट पर भी। सरकार को कोई परवाह नहीं है कि वे चलें या न चलें।

उमा : शुरू में तो बाजार में एक जनता मोटर लाने की योजना पर बड़ा जोर था। इसका मतलब है कि सारी प्राथमिकताएँ गड़बड़ हो गयी हैं।

संजय : दरअसल भारत में १०,००० रु० में या ५,००० रु० में जनता मोटर बिक नहीं सकती। लोगों की हैसियत सच पूछा जाये तो साइकिल या बस से ज्यादा की नहीं है।

उमा : कुछ लोग तो यह कहते हैं कि आप मोटर बनाना बिलकुल बंद कर देंगे और मोटर के पुर्जे बनाने लगेंगे।

संजय : इस वक्त तो मोटरों के बाजार की हालत बहुत बुरी है, इसलिए पुर्जे बनाना तो और भी जोखिम का काम है।

उमा : मारुति में वह कौन-कौन-सी खास बातें हैं जिनकी वजह से वह दूसरों के मुकाबले में बेहतर मोटर होगी ?

संजय : वह दूसरों से बेहतर मोटर नहीं है। वह सस्ती मोटर है। कम पैसे में आपको उसमें बैठने की जगह ज्यादा मिलती है; उसमें पेट्रोल की खपत कम होती है; और जहाँ तक मुड़ने का सवाल है वह ऐम्बैसेडर और फिएट से कम जगह में मुड़ सकती है।

उमा : लेकिन क्या हल्की बॉडी होने की वजह से उसके उलट जाने का खतरा नहीं रहता ?

संजय : कहीं कम। इसका सेंटर ऑफ ग्रेविटी (गुरुत्वाकर्षण केंद्र) दूसरों के मुकाबले ज्यादा नीचे है, और सस्पेंशन कहीं ज्यादा आधुनिक है। ऐम्बैसेडर में जो सस्पेंशन इस्तेमाल किया जाता है उसका डिजाइन लगभग १९२० से चला आ रहा है। लेकिन इसके अलावा मारुति में

दूसरी मोटरों के मुकाबले कोई ऐसी चीज नहीं है जो बुनियादी तौर पर बेहतर हो।

उमा : वह दूसरों से सस्ती क्यों है ? आपने कहा है कि आप उसमे ज्यादा महँगा सामान लगाते है ?

संजय : हम ज्यादा महँगा सामान तो लगाते हैं, लेकिन कम सामान लगाते हैं क्योंकि मोटर का डिज़ाइन बहुत कम वज़न का बनाया गया है। ऐम्बैसेडर का वजन लगभग १२०० किलोग्राम होता है और मारुति का ६०० किलोग्राम। इसका मतलब है कि हमे ६०० किलोग्राम कम सामान का पैसा देना पड़ता है। हम उनके मुकाबले एल्युमिनियम ज्यादा इस्तेमाल करते है। एक किलो एल्युमिनियम एक किलो इस्पात से कहीं ज्यादा महँगा पड़ता है। एल्युमिनियम का भाव सचमुच बहुत चढ गया है। इमर्जेंसी के बाद से वह लगभग तीन-चार रुपये किलो बढ़ा है। उससे फ़ौरन पहले भी वह चार रुपये किलो बढ़ा था। इस्पात के दाम सिर्फ़ अस्सी रुपये टन बढ़े हैं, यानी आठ पैसे किलो। दरअसल, एक और बात यह भी है कि काले बाज़ार मे उसका भाव लगभग वही है जो इस वक़्त कंट्रोल भाव है, जबकि एल्युमिनियम का भाव काले बाज़ार में बहुत ज्यादा है। जब हम कोई चीज बनाते हैं तो हमें कुछ हद तक बाज़ार के सहारे रहना पड़ता है।

उमा : क्या मारुति में स्वतन्त्र सस्पेंशन है ?

संजय : हाँ इसमें स्वतन्त्र सस्पेंशन है। कुल मिलाकर, उसका डिज़ाइन आधुनिक है। यहाँ जो दूसरी मोटरें बनती हैं उनके डिज़ाइन १९५०-६० में बनाये गये थे। जहाँ तक इस बात का सवाल है मारुति उनके मुकाबले में बेहतर है। हमने उसे बहुत ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर चलाकर देखा है। हमने बड़ी तेज रफ्तार से बहुत दूर-दूर तक चलाया है, उसे कच्ची सड़को पर बहुत दूर तक चलाया है; उसके बाद उसे अहमदनगर ले जाया गया, वहाँ भी वह काफी अच्छी चली। हमने लगातार उसमे छ. आदमी बिठाकर उसे आजमाया है। तरह-तरह के लोगो ने हमसे तरह-तरह के सवाल पूछे है, खास तौर पर सरकारी अफसरो ने, जिनका हमेशा यह दावा रहता है कि वे सब-कुछ जानते है और हमे मान लेना पड़ता है कि वे सब-कुछ जानते है !

उमा : मैंने देखा है कि आपकी मोटर शोर बहुत करती है। क्या उसकी कोई खास वजह है ?

संजय : सबसे बड़ी वजह यह है कि उसका इंजन हवा से ठंडा रखा जाता है; हवा से ठंडे रखे जाने वाले इंजन पानी से ठंडे रखे जाने वाले इंजनों के मुकाबले ज्यादा शोर करते है। यह बात फोक्सवागन जैसी मोटरो के बारे में भी सच है, जो पश्चिमी देशों की एक बहुत आला दर्जे की मोटर है। दूसरी वजह यह है कि यह दो सिलिंडर वाली मोटर है; दो सिलिंडर वाली मोटरो मे शोर लगातार नही होता और चूँकि यह शोर रुक-रुक कर होता है इसलिए ज्यादा मालूम देता है।

उमा : क्या इस शोर को दूर करने के लिए और पैसा खर्च करना होगा ?

संजय : बिलकुल तो दूर नही हो सकता। तकनीकी वजहो से यह मुमकिन नही है।

उमा : इसमे पेट्रोल कम क्यों ख़र्च होता है ?

संजय : क्योंकि यह हल्की मोटर है। उसे कम बोझ ढोकर चलना पड़ता है।

उमा : [illegible]

संजय : [illegible]

वह बेहद हल्का है, लेकिन अगर आप उसे दो-तीन दिन भी चला लें और उसके बाद कोई भारी स्टीयरिंग वाली मोटर चलायें तो आपको महसूस होगा कि भारी स्टीयरिंग कितनी बड़ी मुसीबत होता है।

उमा : आप पीछे इतनी ज्यादा जगह कैसे निकाल पाये ?

संजय : वह तो डिजाइन में ही थी।

उमा : क्या डिजाइन पूरी तरह आपका तैयार किया हुआ है ?

संजय : जी हाँ।

उमा : जब आपने इस डिजाइन के बारे में सोचा तो क्या आपके दिमाग में पहले से कोई नमूना था ?

संजय : जी नहीं। मैंने तो बस एक छोटी मोटर में ज्यादा-से-ज्यादा जगह निकालने की कोशिश की है।

उमा : मोटर की क़ीमत के बारे में। मेरा खयाल है कि पहले आपने कहा था कि उसकी कीमत ८,००० रु० होगी।

संजय : जी नहीं, वह खबर गलत दी गयी है। हमने शुरू में उसकी क़ीमत १३,००० रु० बतायी थी। अब वह लगभग दुगनी इसलिए हो गयी है कि कच्चे माल और जिस तरह का कच्चा माल हम इस्तेमाल करते हैं, जैसे एल्युमिनियम, उसके दाम बेहद बढ़ गये हैं। दूसरे लोग यह बिलकुल नहीं इस्तेमाल करते। लेकिन २५,००० रु० में भी वह दूसरी मोटरों से १०,००० रुपये सस्ती रहेगी।

उमा : सड़क पर आने तक ?

संजय : जी हाँ, सड़क पर आने तक।

उमा : आपकी कंपनी में किस तरह के लोगों ने पैसा लगाया है और उसके बड़े-बड़े शेयरहोल्डर कौन लोग है ?

संजय : हमारे यहाँ कोई बड़े शेयरहोल्डर नहीं हैं। मुझे मालूम नहीं कि बड़ा शेयरहोल्डर किसे कहा जाता है। मेरे हिसाब से तो बड़े शेयरहोल्डर के पास कुल पूंजी के दो-तीन प्रतिशत से ज्यादा के शेयर होने चाहिए और हमारे यहाँ इस तरह के कोई लोग नहीं है।

उमा : आपकी कुल पूंजी कितनी है ?

संजय : [illegible]

उमा : [illegible] हो ?

संजय : मुझे दूसरे व्यापारियों से लगभग कोई सहयोग नहीं मिला है। सच तो यह है कि मुझे अपनी मोटर के लिए वे पुर्जे हासिल करने में भी, जो हमारे यहाँ नहीं बनते, कठिनाई हुई। लेकिन चूंकि यह व्यापार का मामला है इसलिए दूसरे लोग उसकी जगह लेने को हमेशा तैयार रहते हैं।

उमा : मेरा मतलब, दरअसल, उन व्यापारियो से है, जिन्होने इस उम्मीद से आपकी कपनी के शेयर खरीदे है कि आपके साथ, और आपके ज़रिये प्रधान मंत्री के साथ, उनके संबंध की वजह से उन्हें उनके अपने ख़ास कारोबार मे कुछ सुविधाएँ मिल सकेंगी।

संजय : हमारे ज्यादातर शेयरहोल्डर व्यापारी नही हैं। यही वजह है कि हमारे यहाँ इतने अधिक शेयरहोल्डर हैं और उन्हें इसकी वजह से मुसीबतें उठानी पड़ी है। एक आदमी था जिसके बारे मे मैं जानता हूँ कि उसकी आमदनी पाँच-छः सौ रुपया महीना थी। उसने हमारे यहाँ, मैं समझता हूँ, कोई एक हज़ार रुपये के शेयर खरीदे थे, जिसकी वजह से उसके घर की तीन बार तलाशी ली गयी, उसका इनकम-टैक्स का हिसाब तलब किया गया और उसके बाद एक दिन वह मेरे पास आकर मुझसे बोला, "देखिये, मैंने आपके शेयर ख़रीदे हैं और आपने मुझे किस झंझट मे फँसा दिया है!"

कुछ सरकारी अफसरों के बीच इस तरह की कोशिशें चल रही हैं, मालूम नहीं विपक्ष के नेताओं के दबाव की वजह से या किस वजह से, कि उन्होंने मारुति के खिलाफ जानकारी देने में बहुत सक्रिय भूमिका अदा की है और एक अफसर ने तो यहाँ तक हुक्म दे दिया कि मारुति में जिसने भी शेयर लिये हों उसके टैक्स के बकाये की जाँच की जाये। उन्होने जाँच की, और जिस वक़्त यह जाँच हुई उस वक़्त मैं समझता हूँ लगभग ६०० या ७०० शेयरहोल्डर रहे होंगे और इन ७०० लोगों के ज़िम्मे वह इनकम-टैक्स का जो कुल बकाया निकाल पाये वह लगभग ८६,००० रुपये था। अगर इतनी ही बडी किसी दूसरी कंपनी की तलाशी ली जाये तो मैं नहीं समझता कि उसका हिसाब-किताब इतना साफ निकलेगा।

उमा : इस योजना की जड़ काटने की कोशिशों के पीछे किसका हाथ था—आपसे मुकाबला करने वाले दूसरे व्यापारियों का, सरकारी अफसरों का, या राजनीतिक लोगों का?

संजय : मेरे विचार में दूसरे व्यापारियों का भी थोड़ा-बहुत हाथ रहा होगा, लेकिन उससे कही ज्यादा राजनीतिक लोगों का और कुछ सरकारी अफ़सरों का हाथ था।

उमा : खुद एक व्यापारी होने के नाते क्या आप यह समझते हैं कि बड़े-बड़े व्यापारी घरानों को और ज्यादा बढने से रोका जाना चाहिए और क्या आप नियंत्रित अर्थतंत्र मे विश्वास रखते हैं?

संजय : देखिये, दरअसल बात यह है कि नियंत्रित अर्थतंत्र में सिर्फ बड़े व्यापारी घरानो को बढने का मौका मिलता है क्योंकि वही लोग होते हैं जिनके पास साधन होते हैं और उनमें हर तरह के नियंत्रणों से बच निकलने की क्षमता होती है। जो छोटा आदमी होता है वह इन नियंत्रणों से बच नहीं पाता इसलिए चोट उसी पर पड़ती है!

उमा : लेकिन सिद्धांत की दृष्टि से क्या नियंत्रित अर्थतंत्र का मतलब यह नही है कि...?

संजय : मैं मानता हूँ कि उसका मतलब ठीक इसका उल्टा होता है। लेकिन व्यवहार में जो कुछ होता है वह यही है। भारत मे अगर कोई छोटा आदमी किसी चीज की शुरुआत करना चाहे तो उसके सामने बहुत-

सी मुश्किलें आती हैं, लेकिन अगर कोई बडा आदमी कोई चीज शुरू करना चाहे तो हर चीज उसके लिए पहले ही से मौजूद रहती है।

उमा : आपकी राय में इसे कैसे बदला जा सकता है ?

सजय : मैं तो कहूँगा कि अगर सारे कंट्रोल हटा दिये जायें तो वड़े व्यापारी अपने-आप खत्म हो जायेंगे। कंट्रोल लगाये रखने की हवा यही लोग बाँधते हैं। कुछ हद तक इसमें वड़े व्यापारियों का हाथ होता है और कुछ हद तक सरकारी अफसरों का क्योंकि इस तरह सरकारी अफसरों पर उन लोगों की कृपा-दृष्टि भी रहती है और उन्हें पैसा भी मिलता है।

उमा . तो क्या आप निजी उद्यम के पक्ष में हैं ?

सजय : मैं समझता हूँ कि सबसे ज्यादा तेजी से तरक्की करने का यही रास्ता है। मैं मानता हूँ कि यह बहस का सवाल है। देखिये, बात यह है कि हर आदमी समझता है कि बड़े व्यापारियो को काबू मे रखने के लिए उनकी नकेल हमारे हाथों मे है। लेकिन पिछले बीस साल मे कौन बढा है, बड़ा व्यापारी या छोटा व्यापारी ? तो फिर ये कंट्रोल किस काम के हैं ? वे बड़े व्यापारियों को और मजबूत ही कर रहे हैं। खुले आम तो वे कंट्रोल हटाने की बातें करते हैं लेकिन अंदर-ही-अंदर और ज्यादा कंट्रोल लागू करने के लिए पैसा देते हैं। हम एक ऐसी मंजिल पर पहुँच गये हैं जहां बड़े व्यापारी हमेशा यह कहते हैं—देखिये, कोई दूसरा आदमी यह काम कर नहीं सकता। जाहिर है कि कोई दूसरा नही कर सकता क्योंकि वह लाल-फीताशाही से निबट नही सकता।

उमा : क्या आप समझते हैं कि यह सब-कुछ इसलिए हुआ कि अर्थतंत्र पर केवल आधा नियंत्रण था ?

संजय : मैं समझता हूँ कि हम अपनी टैक्स की सारी आमदनी अर्थतंत्र के उस हिस्से मे झोंक रहे है जिस पर पूरा नियंत्रण है ताकि वह किसी तरह चलता रहे।

उमा : आपकी उस समाज के बारे मे क्या कल्पना है जिसमे सबके बीच बराबरी हो ?

संजय : मैं समझता हूँ कि प्राइवेट सेक्टर (निजी क्षेत्र) की कार्य-कुशलता का फायदा उठाया जाना चाहिए और सही दिशाओं मे उसका उपयोग करने के लिए दूसरे तरीके इस्तेमाल किये जाने चाहिए। आप उन्हें मजदूरी बढाने पर मजबूर कर सकते हैं। आप उन्हें मजदूरों को कंपनी मे शेयर देने पर मजबूर कर सकते है। आप लाखो दूसरे काम कर सकते है, लेकिन उनके पास विशेषज्ञता है और कड़ी मेहनत करने की उनमे जो क्षमता है वह आपको पब्लिक सेक्टर (सार्वजनिक क्षेत्र) मे कभी नही मिल सकती। पब्लिक सेक्टर कल्याणकारी योजनाओं का बोझ उठा ही नही सकता। प्राइवेट सेक्टर यह बोझ उठा सकता है, आप उसे इसके लिए मजबूर कीजिये। अगर आप उनसे कहें कि पूरे-का-पूरा अट्ठानवे प्रतिशत तुम्हें दिया जाता है (जिसमें से पचास प्रतिशत यों ही तुम सरकार को दे देते हो), तुम अडतालीस प्रतिशत कल्याणकारी योजनाओ पर खर्च कर दो, तो वे खुशी से खर्च कर देंगे। क्योंकि यह एक ऐसी चीज होगी जो उनके कब्जे में रहेगी। वे उसे देखकर कह सकेंगे कि यह काम हमने किया है। ऐसा करने

उन्हें खुशी होगी। लेकिन अगर आप उनसे कहेंगे कि तुम यह रकम हमारे हवाले कर दो, इससे हम पब्लिक सेक्टर के निकम्मेपन का नुकसान पूरा करेंगे, तो इसके लिए कौन तैयार होगा! उत्तर प्रदेश में बिजली-उत्पादन की बुरी हालत है। वहाँ बिड़ला का एक बिजलीघर है जिसका उत्पादन अपनी क्षमता का नब्बे प्रतिशत, या लगभग पच्चानबे प्रतिशत है। उससे मिला हुआ पब्लिक सेक्टर का बिजलीघर है, जिसका उत्पादन कभी छत्तीस प्रतिशत से आगे नहीं बढ़ा। मैं समझता हूँ कि वहाँ के मैनेजरों को बाहर निकालकर गोली मार दी जानी चाहिए!

उमा : आप किसी भी क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण में विश्वास नहीं करते?

संजय : नहीं, बिल्कुल नहीं। कोयले को ले लीजिये। जिस वक़्त कोयले का राष्ट्रीयकरण किया गया उस वक़्त, मैं समझता हूँ, वह पैंतीस रुपये टन के भाव से बिक रहा था। वे लोग मुनाफा भी कमाते थे। अब कोयला लगभग नब्बे रुपये टन बिकता है और फिर भी हर साल सौ करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान होता है। एक बात तो यह है कि आम नागरिकों को एक टन का दाम नब्बे रुपये देना पड़ता है और दूसरी बात यह कि उन्हें हर साल सौ करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान भरने के लिए अलग से पैसा देना पड़ता है। सारा फायदा सरकारी अफसरों को होता है।

उमा : तो फिर, आपकी राय में, आर्थिक दृष्टि से अपने पाँवों पर खड़ा होने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

संजय : देखिये, एक तरीका तो यह है कि काला-बाजार रोका जाये। इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि टैक्स कम किये जायें। जैसे पिछले साल कम किये गये थे, हालाँकि बहुत थोड़े ही कम किये गये। वित्त-मंत्रालय ने बहुत शोर मचाया कि उसे पचास करोड़ रुपये का घाटा होगा। एक साल बीत चुका है और नतीजा यह हुआ कि उन्हें नुकसान के बजाय पैंतालीस करोड़ रुपये का फ़ायदा हुआ है! समझ लीजिये कोई आदमी बहुत ज्यादा कमाता है। ठीक है, आप कह सकते हैं कि वह बहुत बेहूदा आदमी है, उसे इतना नहीं कमाना चाहिए। लेकिन अगर वह कमाता है तो वह समझता है कि उसे कमाने का हक़ है। उसे हक़ है या नहीं, यह तो बहस की बात है, इसका फैसला कभी नहीं हो सकता, लेकिन वह समझता जरूर है कि उसे इसका हक़ है। और चूँकि वह समझता है कि उसे इस बात का हक़ है इसलिए वह यह भी समझता है कि यह मुनासिब नहीं है कि वह उसका पच्चानबे प्रतिशत सरकार को दे दे; पहले टैक्स का हिसाब लगाने का जो तरीका था उसमें लोग इतना देते थे। उनकी आमदनी से भी ज्यादा टैक्स, जिसका मतलब है कि कुल मिलाकर उन्हें नुकसान होता था। मैं नहीं समझता कि अगर किसी को अपनी आमदनी से ज्यादा टैक्स देना पड़े तो वह ईमानदार रह सकता है। इस हालत में कोई भी आदमी धोखेबाज़ बन जायेगा। तो इस तरह आप लोगों को धोखा देने पर मजबूर करते हैं। इस वक़्त जो कानून है उसमें टैक्स १०६ प्रतिशत से घटकर ६८ प्रतिशत रह गया है। इस हालत में भी बहुत-से लोग कहेंगे कि हमें नुकसान तो हो नहीं रहा है, चलो दे दो। लेकिन ज्यादातर लोग

फिर भी यही कहेंगे कि हम अट्ठानवे प्रतिशत सरकार को क्यों दें। मेरा मतलब है कि वे कहेंगे कि सरकार हमारे लिए कर क्या रही है जो हम उसे ९८ प्रतिशत दे दें ? इस तरह के ज्यादातर लोग व्यापारी होते है, वे कमाते है, और वे परिस्थिति को इस तरह देखते है : जैसे कोयले की खानें थीं—सरकार ने उन्हे अपने हाथ में ले लिया, कोयले का भाव पैंतीस से बढकर नब्बे हो गया और सौ करोड़ का नुकसान ऊपर से। इसलिए वे कहते हैं कि जब हम अट्ठानवे प्रतिशत देते हैं तो उससे सरकार के निकम्मेपन की कीमत अदा की जाती है, इसलिए हम क्यों दें ?

उमा : बुनियादी तौर पर इसका मतलब है कि आप पब्लिक सेक्टर के खिलाफ है, या कम-से-कम उसके काम करने के तरीके के तो खिलाफ़ हैं ही।

संजय : मैं समझता हूँ कि पब्लिक सेक्टर को प्राइवेट सेक्टर के साथ मुकाबला करके ही काम करना चाहिए, और जहाँ वह प्राइवेट सेक्टर के साथ मुकाबला न कर पाये, वहाँ उसे चुपचाप अपनी मौत आप मर जाने देना चाहिए।

उमा : कुछ हिस्सों को सरकार चला सकती है।

संजय : सरकार क्यो चलाये ? उन्हें प्राइवेट सेक्टर को क्यों न चलाने दे और सरकार उस पर नियंत्रण रखे ? मेरा मतलब है कि सरकार उनसे कह सकती है कि इन हिदायतों की हद के अंदर रहकर काम करना है। जितने कंट्रोल चाहिए लगाइये, लेकिन उनकी जो खास जानकारी और तजुर्बा है उसका फायदा उठाइये...।

उमा : और उन्हें कुछ योजनाएँ अपनी तरफ से शुरू करने दीजिये...।

संजय : प्राइवेट सेक्टर के ज्यादातर लोगों को अगर किसी योजना के साथ अपना नाम जोड़ने का मौका दिया जाये, तो बाक़ी हर चीज़ से वे बहुत खुश रहते है। मेरा मतलब है कि जैसे टाटा के नाम से जितना कारोबार होता है वह सब टाटा की मिल्कियत तो नही है, बिड़ला के नाम से जितना कारोबार होता है उसके मालिक बिड़ला तो नही हैं। लेकिन उनके कारोबार के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है, उन्हे उनका मुनाफा मिलता है और वे खुश रहते हैं, इसलिए सब ठीक रहता है।

उमा : आपके खयाल में प्राइवेट सेक्टर को क्या-क्या करने पर मजबूर किया जाना चाहिए ?

संजय : एक तो मैं यह समझता हूँ कि वे मजदूरों को ज्यादा शेयर दे सकते हैं ताकि मजदूर यह महसूस करें कि वे भी कारखाने के मालिक हैं। अगर नुकसान होगा तो उससे मजदूर की आमदनी में भी फर्क पड़ेगा। अगर उसकी आमदनी का काफ़ी बड़ा हिस्सा उसके शेयरों से आता है और उस हालत में वह हड़ताल करता है तो उसे यह भी मालूम रहेगा कि साल के आखिर में उसे अपने शेयरों पर मुनाफा नही मिलने वाला है। इस तरह उसे अधिक उत्पादन करने में ज्यादा दिलचस्पी रहेगी। आप उसे रहने को मकान और दूसरी सुविधाएँ भी दे सकते हैं, लेकिन इन सब चीज़ों से उत्पादन बढाने का उतना जोश नही पैदा होता। अगर कंपनी के नफे-नुकसान में उसका अपना भी नफा-नुकसान हो तो उत्पादन बढाने में और कंपनी के ज्यादा मुनाफा कमाने में उसे सबसे ज्यादा दिलचस्पी रहेगी।

उमा : सरकार को इस बात का पक्का यकीन कैसे हो कि प्राइवेट सेक्टर यह सब-कुछ करेगा ? यह सब-कुछ करने के लिए उन पर दबाव डालने के क्या तरीके हो सकते हैं ?

संजय : मैं समझता हूँ कि उनसे यह बात आसानी से कही जा सकती है कि मुनाफे का इतना प्रतिशत भाग मजदूरों को शेयर की शक्ल में देना पड़ेगा।

उमा : और अगर वे न दें तो क्या होगा ?

संजय : इसके लिए कानून होगा कि उन्हें ऐसा करना पड़ेगा। करेंगे कैसे नहीं ? मेरा मतलब है कि यह सरकार का काम है कि वह कानूनों का पालन कराने का इतजाम करे।

उमा : प्राइवेट सेक्टर के विशेषज्ञों को कार्पोरेशन में मैनेजिंग डायरेक्टरों की हैसियत से लाने की योजना के बारे में आपका क्या ख्याल है ?

संजय : ज्यादातर बेईमान किस्म के लोग ही इस हैसियत से आने को तैयार होते हैं—अगर मुझे किसी कंपनी से १२,००० रुपये महीने मिलते हैं, तो मैं नहीं समझता कि इस तरह के बहुत व्यापारी होंगे जो इतने देशभक्त हों कि १२,००० रुपये छोड़कर ३,००० रुपये पर पब्लिक सेक्टर का कारखाना चलाने के लिए आयें। अगर वह यहाँ ३,००० रुपये कमाने के लिए आयेंगे तो इस बात का पक्का बंदोबस्त कर लेंगे कि जितनी कमी है वह किसी दूसरी जगह से पूरी हो बल्कि उससे भी कुछ ज्यादा मिल जाये...।

उमा : आपकी राय में पूँजी लगाने की स्थिति कैसे सुधारी जा सकती है ?

संजय : जब तक पिछली बार जैसी वित्तीय पाबंदियाँ नहीं लगायी गयी थी तब तक पूँजी लगाने की स्थिति बहुत अच्छी थी—बाजार में जब भी पूँजी की माँग होती थी तो जरूरत से ज्यादा पूँजी मिल जाती थी। इस वक्त जो कदम उठाये गये हैं उन्हीं की वजह से उत्पादन को बढ़ावा नहीं मिलता। लोग कहते हैं कि सबसे बड़ी बाधा बिजली की कमी और कर्ज में कटौती की है। मैं समझता हूँ कि कर्ज में जो कटौती की गयी है उसमें उन उद्योगों के लिए ढील दी जा सकती है जो कारखानों में कोई माल तैयार करते हैं; व्यापारियों के लिए इसमें ढील देने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जमाखोरी ज्यादातर व्यापारी ही करते है। दरअसल अभी हाल में इस बात का पता लगाने के लिए छानबीन की गयी थी कि सबसे ज्यादा जखीरेबाजी कौन करता है और पता यह चला कि सबसे ज्यादा जमाखोरी करनेवाली सब कंपनियाँ सरकारी हैं। क्योंकि उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती, और अगर नुकसान भी हो जाये तो उनका क्या जाता है, उन्हें रत्ती-भर भी परवाह नहीं होती।

उमा : आपकी राय में कीमतें कैसे कम की जा सकती हैं ?

संजय : उत्पादन। अगर उत्पादन बढ़ेगा तो कीमतों का गिरना लाज़िमी है। योरप और अमरीका में लोग जमाखोरी क्यों नहीं करते ? इसलिए कि अगर मैं किसी एक छाप की चीज छिपाकर रखना शुरू करूँ तो दूसरी छाप की वही चीज सारे बाजार में छा जायेगी और पहली छाप की चीज को कोई पूछेगा नहीं। यही एक हालत है जिसमें क़ीमतें सचमुच काबू में रखी जा सकती हैं। और किसी भी हालत में

कीमतों को सचमुच काबू में नहीं रखा जा सकता।

उमा : क्या आप समझते हैं कि आम नागरिक जो अवसर चाहता है वे लोकतंत्र के ढाँचे के अंदर रहकर मिल सकते हैं?

संजय : मैं लोकतंत्र पर विश्वास रखता हूँ, लेकिन लोकतंत्र का मतलब यह नहीं है कि देश में जो कुछ है उसे बर्बाद करने की सबको आजादी है। लोकतंत्र का मतलब होता है देश को बनाने की आजादी।

उमा : इस देश को बनाने में क्या चीज रुकावट डालती है?

संजय : जैसे, मिसाल के लिए—फौज को उकसाना कि वह हुक्म न माने, छात्रों से कहना कि वे पढ़ाई छोड़कर उपद्रव करें, बसें जलायें, खिड़कियाँ तोड़ें, रेलगाड़ियाँ चलने में गड़बड़ी पैदा करें। इससे किसी चीज में मदद नहीं मिलती।

उमा : क्या आप ऐसी व्यवस्था पसंद करेंगे जिसमें विपक्ष को इतना भी मौका न मिले?

संजय : भारत में, सच पूछा जाये तो, अब तक एक ही पार्टी की प्रणाली रही है। अगर वह पार्टी—कांग्रेस—हर जगह छायी रही है और हटायी नहीं जा सकी है तो इसकी बुनियादी वजह यह है कि विपक्ष बेहद गैर-जिम्मेदार है। मैं बहुत-से ऐसे लोगों को जानता हूँ जो कांग्रेस को इसलिए वोट देते हैं कि वे कहते हैं कि देखिये, हम कम्युनिस्ट तो हैं नहीं इसलिए हम कम्युनिस्टों को तो वोट देंगे नहीं, और बाकी सब निकम्मे लोगों का गरोह है, इसलिए हम उन्हें भी वोट नहीं देंगे, इसलिए हमारे पास कांग्रेस को वोट देने के अलावा और कोई चारा ही नहीं है। अगर कोई दूसरी जिम्मेदार पार्टी होती तो मैं समझता हूँ कि बहुत-से लोग उसे वोट देते।

उमा : आपकी राय में इस तरह की जिम्मेदार विपक्ष की पार्टी किस वजह से नहीं पनप पाती?

संजय : विपक्ष की पार्टियों के सदस्यों की वजह से! मिसाल के लिए, जब स्वतंत्र पार्टी बनी थी तो कुछ लोगों ने सोचा था, यह कांग्रेस की जगह लेनेवाली एक अच्छी पार्टी है, बहुत-से लोगों ने उसे वोट भी दिये, लेकिन बाद में उन्हें पता चला कि यह कितना बड़ा धोखा है, यह विदेशियों की खड़ी की हुई पार्टी है। ज्योंही लोगों को इस बात का पता चला, स्वतंत्र पार्टी चरमराकर बैठ गयी।

उमा : क्या आप मानते हैं कि पार्टी की बुनियाद उसके कार्यकर्ताओं पर होनी चाहिए?

संजय : जी हाँ, बिलकुल होनी चाहिए। क्योंकि कांग्रेस में एक सबसे बड़ी अड़चन यही है कि उसमें नेता तो बहुत-से हैं लेकिन ऐसे लोग काफी नहीं हैं जो कुछ काम करने के लिए सबसे निचले स्तरों तक जा सकें। मैं समझता हूँ कि पार्टी में सबसे ज्यादा महत्त्व काम करने वाले या कार्यकर्ता का होता है, उसे आप कोई भी नाम दे दें। कांग्रेस में अगर किसी आदमी की सबसे कम परवाह की जाती है तो वह कार्यकर्ता है, जबकि दरअसल वह पार्टी की बुनियाद है।

उमा : जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी की बुनियाद उनके कार्यकर्ताओं पर है। आप कांग्रेस को नये साँचे में किस तरह ढालना चाहेंगे?

संजय : मैं यह नहीं मानता कि जनसंघ की बुनियाद उसके कार्यकर्ताओं पर

है। मैं जानता हूँ कि दिल्ली में वह किस तरह काम करता है। दिल्ली मे तो वह पक्षपात पर पनपने वाली पार्टी थी। उसने लोगो के साथ पक्षपात किया और उसी पर अपनी बुनियाद क़ायम की। इन्हे कार्यकर्त्ता नहीं कहते। कम्युनिस्टों के पास कुछ कार्यकर्त्ता शायद हों जो सचमुच काम करते हों, लेकिन अगर आप उन सभी लोगों को देखें जो कम्युनिस्ट पार्टी मे है, बड़े-बड़े नेताओं को—और उन्हे भी जो इतने बड़े नेता नहीं है—तो मैं नही समझता कि आपको कही भी उनसे ज्यादा पैसे वाले और उनसे ज्यादा भ्रष्ट लोग मिलेंगे।

उमा : फिर कार्यकर्त्ता से आपका क्या मतलब है? वह काम करने वाला जिसे पार्टी पैसे देती हो?

संजय : जी नही, पैसे लेकर काम करने वाला नही, बल्कि सच्ची लगन से काम करने वाला। मैं समझता हूँ कि कार्यकर्त्ता को उसके काम के लिए कुछ मान्यता मिलनी चाहिए, और नेताओं को बढ़ावा देने के बजाय, जो ऊपर से थोप दिये जाते हैं, कार्यकर्त्ताओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। कार्यकर्त्ता जहाँ होता है वही रह जाता है, उसे ऊपर आने का मौका ही नही मिलता।

उमा : जिसका मतलब यह है कि आप ऐसी व्यवस्था चाहते है जिसमे कार्यकर्त्ता आगे चलकर नेता बन जाये?

सजय : जी हाँ, मैं यही चाहता हूँ, ताकि काम करने वाले के दिल में भी कुछ पाने की, कुछ हासिल करने की, कही पहुँचने की उमंग बनी रहे। मौजूदा व्यवस्था में, कांग्रेस के बाहर भी, पूरी भारतीय व्यवस्था मे, कार्यकर्त्ता हमेशा कार्यकर्त्ता ही बना रहता है और नेता शुरू से ही नेता होता है और आखिर तक नेता ही बना रहता है। यही इस पूरी व्यवस्था की खराबी है।

उमा : अगर आपको एक कांग्रेसी की हैसियत से, काम करने के ढंग का एक बिलकुल ही नया ढाँचा तैयार करने का मौका मिले तो...?

संजय : मैं कांग्रेस पार्टी का मेंबर नही हूँ...।

उमा : लेकिन अगर आपको मौका मिलता तो क्या आप बहुत-से लोगो को नाराज किये बिना यह काम कर सकते थे?

संजय : बहुत-से लोग नाराज तो जरूर होगे—जाहिर बात है कि अगर कार्यकर्त्ता तरक्की करके नेता बन जायेंगे, तो नेताओ को उनके लिए जगह खाली करनी पड़ेगी। कहीं भी कोई भी नेता जो कुछ उसके हाथ लग चुका है उसे छोड़ने को तैयार नही होगा। हर आदमी यही चाहता है कि जो कुछ उसके पास है उससे वह चिपका रहे। बहुत-से लोग आदर्श के बारे में सोचते है, उसकी बात करते हैं, फिर अचानक वे महसूस करते हैं कि जो कुछ उनके पास है उसमे, उनके अपने छोटे-से साम्राज्य मे उस आदर्श की वजह से बाधा पड़ेगी। जब तक वे सिर्फ़ इसकी बातें करते हैं तब तक वे अपने को सुरक्षित समझते हैं।

उमा : आपने १९७१ में एक तरह से राजनीति के क्षेत्र में कदम रखा था, कुछ चुनाव का प्रचार करना, कुछ भाषण देना और गदी बस्तियों मे काम करना। उसके बाद फिर कुछ दिन के लिए छोड़ दिया। ऐसा क्यों?

संजय : मैं अपनी मोटर के काम मे लगा रहा।

उमा : अब आप फिर पहले से कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे हैं। क्या उसकी वजह यह है कि मोटर की योजना आगे नही बढ़ पा रही है?

संजय : जी नही। जिस तरह १९७१ में कुछ काम करने की जरूरत थी और इसलिए मैंने किया। जब काम पूरा हो गया तो मैंने छोड़ दिया। इसलिए अब चूंकि फिर कुछ काम करने की जरूरत पड़ी है तो मैं फिर करूंगा और जब काम पूरा हो जायेगा तो छोड दूंगा।

उमा : इसका मतलब है कि बुनियादी तौर पर आपको राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है?

संजय : बुनियादी तौर पर मुझे दिलचस्पी है, लेकिन मैंने कुछ दूसरे कामों की जिम्मेदारी ले रखी है और उन्हें मुझे पूरा करना है।

उमा : मोटर?

संजय : जी हां, मोटर।

उमा : क्या आप समझते है कि जिन लोगों के हाथ में सत्ता हो उनके बच्चों को उनके इस मैदान से बिलकुल अलग रहना चाहिए?

संजय : मैं नही समझता कि किसी आदमी को अपनी रिश्तेदारी की वजह से किसी भी मैदान से दूर रहना चाहिए। कोई आदमी कोई भी काम इसलिए करता है कि उसे उस काम के प्रति स्वाभाविक रुचि होती है या वह इस काम को बहुत अच्छी तरह कर सकता है या इसलिए कि उसे उस काम से दिलचस्पी होती है। असली कसौटी किसी के साथ उसकी रिश्तेदारी नही बल्कि यह होनी चाहिए कि उसमें उस काम को करने की कितनी क्षमता है।

उमा : अपनी शादी के बाद भी आप अपनी फैक्टरी में इतने ही घंटे काम करते है?

संजय : जी हां।

उमा : और अब भी आप दूसरे लोगों के बीच उठते-बैठते नही, लोगों से मिलते-जुलते नही?

संजय : जी नही।

उमा : लेकिन क्या इसकी वजह से, जिसे मैं कहूंगी, आपकी जिंदगी बिलकुल तपस्वियों जैसी नही होती जा रही?

संजय : अपना-अपना सोचने का ढग है।... मैं किसी तपस्वी से कभी मिला नही हूं, इसलिए मैं दरअसल बता नही सकता!

जुलाई २६

संजय गांधी की इंटरव्यू

श्रीमती उमा वासुदेव को संजय गांधी ने 'सर्ज' के लिए जो इंटरव्यू दी थी उसके बारे में पी० टी० आई० और यू० एन० आई० दोनों ही की भेजी गयी खबरें रात को पौने नौ बजे रद्द करके वापस ले ली गयी हैं, हालांकि कुछ अखबार उसे छाप भी चुके थे।

श्री गांधी ने खुले कारोबार को बढ़ावा देने की पैरवी की थी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की कड़ी आलोचना की थी।

• •



त्रिलोचन :

जन्म : 20 अगस्त 1917, चिरानीपट्टी, कटघरापट्टी, सुल्तानपुर, उ० प्र० ।

शिक्षा : बी० ए० तथा एम० ए० (पूर्वार्द्ध) अंग्रेजी साहित्य में ।

आज, जनवार्ता, समाज, प्रदीप, चित्ररेखा, हंस और कहानी आदि पत्रिकाओं और समाचार पत्रों का सह-सम्पादन कर चुके हैं ।

1952-53 में गणेशराय नेशनल इण्टर कालेज जौनपुर में अंग्रेजी के प्रवक्ता ।

1970-72 के दौरान विदेशी छात्रों को हिन्दी, संस्कृत और उर्दू की शिक्षा ।

कुछ वर्ष उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की द्वैभाषिक कोश (उर्दू-हिन्दी) परियोजना में कार्य ।

सम्प्रति : अध्यक्ष, मुक्तिबोध पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०) ।

प्रकाशित कृतियाँ :
- धरती (कविता संग्रह : 1945, दूसरा संस्करण : 1977).
- गुलाब और बुलबुल (ग़ज़लें और रुबाइयाँ : 1956).
- दिगन्त (सॉनेट : 1957)
- ताप के ताए हुए दिन (कविता संग्रह : 1980)
- शब्द (कविता संग्रह : 1980)
- उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
- अरघान (कविता संग्रह : 1984)

पता : सी-50, वीरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003